पुराण साहित्य एवं श्रीमद्भागवत

त्रिभुवननाथ शुक्ल

परम भागवत

गोलोकवासी पूज्य पितृचरण

पंडित यादवनाथजी शुक्ल

की

पुण्य स्मृति में



भूमिका

भारतीय साहित्य में श्रीमद्भागवत महापुराण एक अत्यन्त माहात्म्यशाली ग्रंथ रत्न है। ज्ञान वैराग्य और भक्ति की त्रिवेणी रूप इस ग्रन्थ ने केवल भारतीय-साहित्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। 'भागवत' शब्द हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से ही एक अहिंसात्मक, समन्वयात्मक, उदार धर्म-मत एवं तदनुयायी भक्त के अभिधान में व्यवहृत होता आया है। श्रीमद्भागवत समस्त प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृत वाङ्मय के तत्त्वज्ञान एवं साधना का एक अद्भुत समन्वयात्मक एवं परिपूर्ण रूप प्रस्तुत करता है। एक सर्वमान्य, निर्विशिष्ट भक्ति-धर्म की संहिता के रूप में तो इसका स्थान महत्त्वपूर्ण है ही, कृष्ण-भक्ति के सबसे शक्तिशाली प्रतिपादक के रूप में समस्त संस्कृत-साहित्य किंबहुना समस्त भारतीय वाङ्मय में इसका स्थान सर्वोपरि है। मध्ययुगीन समस्त भारतीय भक्ति-साहित्य श्रीमद्भागवत से प्रभावित हुआ है किन्तु विशेष रूप कृष्ण-भक्ति-साहित्य का अन्तरंग और बहिरंग तो श्रीमद्भागवत के अन्तस्तत्त्व एवं बाह्य वस्तुतत्त्व से पूर्णतया अनुरंजित है। समस्त भारतीय भाषाओं, और अँग्रेजी फ्रेंच, फारसी आदि अनेक अभारतीय भाषाओं में इस पुराण के अनुवाद इसकी लोकप्रियता एवं व्यापक प्रभाव के प्रमाण हैं। प्रमुख भारतीय भाषाओं—बँगला असमिया, उड़िया गुजराती, मराठी तेलुगु, तमिल कन्नड़, मलयालम हिन्दी, उर्दू, सिन्धी और कश्मीरी में इसके अनुवाद बहुत पहले से होते आ रहे हैं। हिन्दी में इसके समग्र एवं आंशिक पद्यगद्यानुवादों की संख्या शताधिक है। मध्ययुग से आज तक भक्ति-क्षेत्र में श्रीमद्भागवत का प्रभाव अक्षुण्ण है। विक्रम की पन्द्रहवीं सोलहवीं शती तक यह ग्रन्थ अपनी ख्याति एवं लोकप्रियता की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। भक्ति और भागवत पर्यायवाची शब्द हो गए थे और 'पढ़िए गुनिए भगति भागवत' कहकर उसकी महत्त्वध्वनि की घोषणा की जाती थी।

अन्य प्रादेशिक भारतीय भाषाओं के साहित्य की बात सद्यः छोड़कर पहले राष्ट्र-भाषा हिन्दी के ही मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य को लीजिए। इस साहित्य की प्राणभूता भावना के स्वरूप का विचार करने पर शीघ्र ही अनुभव हो जाता है कि इस साहित्य का अध्ययन श्रीमद्भागवत निरपेक्ष नहीं हो सकता। हिन्दी के दो महान् कवियों—सूर और तुलसी को तत्त्वतः समझने के लिए श्रीमद्भागवत का ज्ञान कितना आवश्यक है, यह सुधीजनों को अविदित नहीं है। कृष्ण-साहित्य के निम्बार्क-सम्प्रदायानुयायी कवि,

राधावल्लभीय कवि, वल्लभ-सम्प्रदाय के अष्टछाप-कवि, चैतन्य-सम्प्रदायानुयायी कवि स्वामी हरिदास प्रवर्तित सखी-सम्प्रदायानुयायी कवि और इनके अतिरिक्त सम्प्रदाय-मुक्त स्वच्छन्द कृष्ण-भक्त कवियों को श्रीमद्भागवत ने बहुत व्यापकता एवं गहराई से प्रभावित किया है।

हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव किन रूपों में, किन माध्यमों एवं प्रक्रियाओं द्वारा व्यक्त हुआ है यह एक अत्यन्त उपादेय एवं महत्त्वपूर्ण अध्ययन का विषय है, जिसकी आवश्यकता के विषय में दो मत नहीं हो सकते। विगत पच्चीस तीस वर्षों में हिन्दी-भक्ति-साहित्य पर अनेक विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से बहुत उपादेय शोध कार्य किया है। सम्बद्ध शोध-ग्रन्थों में श्रीमद्भागवत की भी आनुषंगिक चर्चा है। इन ग्रन्थों का उद्देश्य भिन्न है। इनमें न तो हिन्दी-भक्ति-काव्य को प्रभावित करने वाले भागवतीय तत्त्वों का वैज्ञानिक वर्गीकरण है, न भागवत का शास्त्रीय एवं तात्त्विक विवेचन। एक विस्तृत धरातल पर श्रीमद्भागवत के साथ कृष्ण-भक्ति-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन भी अभी तक अपेक्षित है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में इसी दिशा की ओर अग्रसर होने का प्रयास किया गया है।

विषयाभिमुखता की रक्षा के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध का क्षेत्र चौदहवीं से सत्रहवीं शती तक के हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य से सीमित रखा गया है। इसी काल-सीमा में रचित हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य पर श्रीमद्भागवत के प्रभाव का संक्षेप में निरूपण किया गया है, क्योंकि इसी काल-सीमा में हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ, समर्थ और प्रतिनिधि कृष्ण-भक्त कवि हुए हैं। इनमें से अधिकतर या तो किसी प्राचीन या तत्कालीन वैष्णव आचार्य के द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय में दीक्षित थे, या श्रीहितहरिवंश जी अथवा हरिदास जी आदि की भाँति स्वतः ही किसी कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। अनेक कृष्ण-भक्त कवि सम्प्रदाय में दीक्षित होकर भी प्रकृत्या साम्प्रदायिक लघु सीमा से मुक्त थे अथवा मूलतः ही स्वच्छन्द भक्तिधारा के प्रवाहक थे। इन सभी प्रकार के कवियों पर श्रीमद्भागवत का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। वैष्णव आचार्यों में श्री मध्वाचार्य, श्री वल्लभाचार्य श्री चैतन्यदेव आदि ने अपने सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत का परम प्रामाण्य स्वीकार किया है। श्रीवल्लभाचार्य ने तो अपने सम्प्रदाय में प्रस्थानत्रयी के साथ श्रीमद्भागवत को भी सम्मिलित करके प्रस्थान-चतुष्टय की घोषणा और स्थापना की। उन्होंने श्रीमद्भागवत को व्यास की समाधि भाषा कहकर इसका लोकोत्तर दिव्यत्व प्रतिपादित किया है। भागवत के वाक्य 'पोषणं तदनुग्रहः' के आधार पर ही श्रीवल्लभाचार्य का सम्प्रदाय 'पुष्टि-सम्प्रदाय' कहलाता है। यह श्रीमद्भागवत के असाधारण महत्त्व का प्रमाण है।

जब वैष्णव आचार्यों ने श्रीमद्भागवत को अपना प्रमुख उपजीव्य बनाया तो उनके सम्प्रदायों में दीक्षित हिन्दी-कृष्ण-भक्त-कवियों के लिए भी श्रीमद्भागवत का आधार अनिवार्य हो गया। इस प्रकार हिन्दी-कृष्ण-काव्य पर श्रीमद्भागवत के प्रमुख प्रभाव का माध्यम आचार्य-परम्परा है। इन आचार्यों ने श्रीमद्भागवत पर अनेक टीकाओं व्याख्याओं, सन्दर्भों एवं निबन्ध-ग्रन्थों का प्रणयन किया है जो सम-सामयिक एवं परवर्ती

हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के प्रेरणास्रोत और मार्ग दर्शक हुए। विशेष कर श्रीवल्लभाचार्य एवं महाप्रभु चैतन्यदेव के सम्प्रदाय में प्रणीत भागवत-साहित्य के परिचय के बिना हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य का अध्ययन निश्चय ही अपूर्ण रहता है। इसीलिए प्रस्तुत प्रबन्ध में प्रमुख वैष्णव-सम्प्रदायों में श्रीमद्भागवत की मान्यता और उसके वर्णित भागवत-साहित्य का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है।

विषय का विश्लेषण करने पर हम उसके स्वतन्त्रतः दो भाग कर सकते हैं। एक भाग श्रीमद्भागवत के अध्ययन से सम्बद्ध होगा और दूसरा श्रीमद्भागवत से प्रभावित हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य से। श्रीमद्भागवत का अध्ययन स्वयं अपने आप में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। यह ग्रन्थ भक्ति शास्त्र की सर्वोच्च महिमा होने के साथ ही साथ अतिशय गूढ़ दार्शनिक ज्ञान और मनोहारिणी काव्य-गरिमा का भी आकर है। मैं अपने कैशोर्य से ही पिता जी से 'विद्या भागवतावधिः', 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' जैसी उक्तियों के साथ ही 'भक्त्या भागवतं शास्त्रम्' जैसी परस्पर विरोधी सी प्रतीत होने वाली उक्तियाँ भी सुना करता था। श्रीमद्भागवत का ज्ञान केवल वैयाकरण होने मात्र से नहीं होता, उसके लिए भगवद्भक्ति का वरदान अनिवार्य है। अपने पिताजी के जीवन-क्रम से मुझे इस सत्य का साक्षात्कार हुआ; वे अनन्य कृष्णभक्त थे। श्रीमद्भागवत का पाठ उनके दैनन्दिन स्वाध्याय का अनिवार्य अनुष्ठान था। वे श्रीमद्भागवत के मर्मज्ञ व्याख्याता थे। उनकी भागवत-कथा आज भी लोगों को स्मरण है। कृष्ण जन्माष्टमी को पिता जी भागवत के कृष्ण-जन्म-प्रसंग का गद्गद भाव से पाठ करते और शरद्-पूर्णिमा को रास-पंचाध्यायी का। 'गोपी-गीत' उन्हें अतिशय प्रिय था, और उसे हम बालकों को उन्होंने कंठस्थ करा दिया था। इस प्रकार श्रीमद्भागवत के प्रति कैशोर्य का यह श्रद्धामय आतंक आगे चल कर जिज्ञासा में और थोड़ा सा अर्थानुसंधान होने पर उसके प्रति अनुराग में परिणत हो गया। अन्ततः १९६१ ई० में अलीगढ़ विश्वविद्यालय से 'मध्ययुगीन हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव' शीर्षक से शोधप्रबन्ध प्रस्तुत करने पर मुझे पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। शोध के प्रारंभिक दो तीन वर्षों तक तो मैं श्रीमद्भागवतार्णव में निराधार डूबता उतराता रहा। श्रीमद्भागवत की अनेक संस्कृत हिन्दी टीकाएँ देखीं, किन्तु संग्रह त्याग का विवेक न हुआ। तब श्रीमद्भागवत के अनेक मर्मज्ञ विद्वानों एवं भक्तों से प्रत्यक्ष विचार विमर्श किया। अपने विवेच्य विषय के लिए मुझे जिस निर्विकल्प दृष्टि और स्पष्ट दिग्दर्शन की आवश्यकता हुई थी वह मुझे वृन्दावन में पूज्यपाद स्वामी अखण्डानन्द जी सरस्वती और बम्बई में बालकृष्ण मन्दिर (मोटा मन्दिर) शुद्धाद्वैत पीठ के आचार्य श्रद्धेय गोस्वामि श्री दीक्षित जी महाराज से प्राप्त हुए। इन दोनों महानुभावों के प्रकाण्ड पाण्डित्य ने जहाँ मुझे ज्ञान का आलोक प्रदान किया, वहाँ अपने अगाध वात्सल्य से मेरे हृदय को स्निग्ध कर दिया। इन्होंने अपने विशाल पुस्तकालयों से अनेक दुर्लभ ही नहीं, अलभ्य ग्रन्थ मुझे दिए। इन महानुभावों के उपकार को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। अतः इनके प्रति मौन प्रणति पुरस्सर श्रद्धा व्यक्त करता हूँ। ब्रज भूमि में परम कृष्ण भक्त श्री द्वारकादास जी परीख (अब स्वर्गीय) से मैंने श्रीमद्भागवत की परम प्रेम भक्ति के श्रीवल्लभ सम्प्रदायानुमोदित

स्वरूप को उन्होंने किंचित् समझने का प्रयास किया । श्रीमद्भागवत विषयक विवेचन के द्वारा यहाँ इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है, कि पुराण-साहित्य में यह महापुराण मूर्धन्य है और इसके विषय में इसकी यह उक्ति यथार्थ ही है –

निम्नगानां यथा गङ्गा देवानामच्युतो यथा ।
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा ॥

जहाँ श्रीमद्भागवत की कृष्ण-लीला सम्बन्धी कथावस्तु और उसमें वर्णित विभिन्न पौराणिक विषय कृष्ण-भक्ति-साहित्य का उपजीव्य बनते रहे हैं, वहीं उसका दार्शनिक पक्ष और व्यावहारिक भक्ति-पद्धति पूरे हिन्दी भक्ति-साहित्य एवं समस्त चिन्ता में अनुप्राणित करते आए हैं । अतः श्रीमद्भागवत के प्रतिपाद्य तत्त्व-ज्ञान एवं भक्ति-दर्शन को हृदयंगम करना अनिवार्य है । बौद्धिक एवं भावना दोनों से श्रेष्ठ और प्राप्तव्य वास्तव वस्तु ब्रह्म का स्वरूप क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर श्रीमद्भागवत के आधार पर जानकर ही भक्ति-काव्य की मूल चेतना को समग्रता से समझा जा सकता है । श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान् में भक्ति-योग ही मनुष्य का परम धर्म है

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥

यह भक्ति स्वरूप क्या होकर भी किस प्रकार अधिकारी और पात्रभेद से अनेकरूप हो जाती है यह अध्ययन का महत्त्वपूर्ण विषय है । भक्ति के वैज्ञानिक विवेचन के लिए श्रीमद्भागवत की भक्ति-पद्धति का अध्ययन आवश्यक है । हिन्दी-भक्ति-साहित्य में केवल भागवतीय-भक्ति के प्रतिपादन के लिए ही अनेक बड़े ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है । इसीलिए श्रीमद्भागवत के दार्शनिक तत्त्वज्ञान एवं भक्ति-पद्धति का संक्षिप्त विवेचन इस ग्रंथ में एक पृथक् अध्याय में किया गया है ।

हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य का मध्ययुगीन काल में भागवतीय तत्त्वों का वैज्ञानिक वर्गीकरण और तुलनात्मक-विवेचन इस प्रबन्ध का केन्द्र-बिन्दु एवं मौलिक भाग है । इन तत्त्वों को दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है—

१ — सामान्य और [illegible] । सामान्य तत्त्वों में भक्ति के वे मूल और सार्वजनीन सिद्धान्त आते हैं, जो निर्गुण-सगुण सभी भक्तों की आधार भूमि है—यथा, भगवत्स्तुति, भगवन्नाम महिमा, गुरु-महिमा, सत्संग आदि । उदाहरण के लिए जहाँ सूर, तुलसी आदि सगुण भक्त भगवान के नाम की अपार महिमा और अमोघ शक्ति का स्थापन करते हैं वहीं कबीर जैसे निर्गुण-भक्त भी उसका अनुमोदन उतने ही सबल शब्दों में करते हैं । इस प्रकार नाम-माहात्म्य का तत्त्व एक सामान्य भक्ति-तत्त्व है, जो समस्त मध्ययुगीन हिन्दी-भक्ति-साहित्य का ही नहीं [illegible] समस्त मध्ययुगीन भारतीय-भक्ति-साहित्य का एक प्रमुख वर्ण्य विषय है । श्रीमद्भागवत में भगवन्नाम का अपार माहात्म्य वर्णित है यह सर्वविदित है । यहाँ मेरा अभिप्राय यह कभी नहीं है कि इन सभी समस्त सामान्य भक्ति-सिद्धान्त हिन्दी अथवा

अन्य प्रादेशिक भारतीय भाषाओं के भक्ति-साहित्य में केवल श्रीमद्भागवत से ही प्राप्त हैं, अपितु तात्पर्य यह है कि श्रीमद्भागवत मध्यकाल का सबसे समर्थ भक्ति-शास्त्र होने के कारण सामान्य भक्ति-तत्त्वों के लिए भी भक्त कवियों का प्रधान उपजीव्य रहा है।

प्रमुखतया कृष्ण-भक्ति-काव्य को ही प्रभावित करने वाले भागवतीय तत्त्वों को विशिष्ट तत्त्वों की श्रेणी में रखा गया है। इन तत्त्वों को हम चार मोटे मोटे शीर्षकों में अन्तर्भुक्त कर सकते हैं--

१. श्रीकृष्ण की विविध लीलाएँ
२. श्रीकृष्ण की रूप माधुरी
३. श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व और
४. श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम

इन चार मुख्य शीर्षकों में विभक्त तत्त्वों में भी अनेक अवान्तर उपतत्त्व समाविष्ट हैं—यथा, विविध कृष्ण लीलाओं के अन्तर्गत ही वृन्दावन, यमुना, गोकुल, गोवर्धन, गौएँ, गोपबालक, नन्द, यशोदा आदि तत्त्वों का अन्तर्भाव है क्योंकि वस्तुतः ये सब कृष्ण की लीला के विधायक उपकरण हैं। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पूर्वोक्त चार प्रमुख शीर्षकों में वर्गीकृत भागवतीय 'विषयों' में ही समस्त भारतीय-कृष्ण-भक्ति-साहित्य का समावेश हो जाता है। अतः ग्रन्थ में इन विषयों का वैज्ञानिक और शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन किया गया है और उनके आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक स्वरूपों के स्पष्टीकरण का भी प्रयत्न किया गया है। भागवतीय तत्त्वों के इस प्रकार वर्गीकरण एवं अनुसन्धान का हिन्दी में कदाचित् यह प्रथम प्रयास है। इसमें मेरा उद्देश्य यह रहा है कि हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य के अध्येता के समक्ष श्रीमद्भागवत के प्रभावक तत्त्वों का एक स्पष्ट मानचित्र उपस्थित हो जाए, जिसके आधार पर वह अपने अध्ययन क्षेत्र का सर्वेक्षण निर्भ्रान्त रूप से कर सके।

श्रीमद्भागवत कृष्ण-लीला का सबसे वृहद् और लोक-विश्रुत आकर ग्रन्थ है। गर्ग-संहिता, ब्रह्मवैवर्तपुराण आदि ग्रन्थ निश्चय ही परवर्ती हैं। महाभारत, हरिवंश पुराण, विष्णु-पुराण आदि पूर्ववर्ती समस्त ग्रन्थों में श्रीकृष्ण की जो लीलाएँ वर्णित हैं, उनका पूर्ण विकसित, उपबृंहित, ललित एवं उदात्त रूप केवल श्रीमद्भागवत में ही प्रकट हुआ है। अतएव भागवतीय कृष्णलीलाओं का—जिनका गान हिन्दी-कृष्ण-भक्त-कवियों का प्राणस्पन्दन ही है, सूक्ष्म अध्ययन परमावश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। अतः ग्रन्थ में श्रीमद्भागवत की समस्त कृष्णलीला का—विशेषकर दशमस्कन्धीय कृष्ण लीला का संक्षेप में एक धरातल पर सर्वेक्षण किया गया है, जिससे कि हिन्दी-कृष्ण-भक्त-कवियों द्वारा गीत कृष्णलीला का भागवतीय लीला-भावना के साथ तुलनात्मक अध्ययन हो सके। बीज रूप में सन्निहित छोटी से छोटी कृष्णलीला का भी अनुसन्धान किया गया है, क्योंकि जो लीला देखने में एक छोटी सी बालचेष्टा मालूम होती है, उसमें एक अद्भुत, सार्वभौम, मानवीय जीवन-रस भरा रहता है, जिसका उद्घाटन भारतीय भक्त-कवियों ने अपनी दिव्य

प्रतिपादित किया है। उदाहरण के लिए हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य में महाकवि सूरदास नन्ददास और परमानन्ददास के नाम प्रस्तुत किए जा सकते हैं। श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण की अलौकिक रूप माधुरी, श्रीकृष्ण के परब्रह्मत्व और श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य और अलौकिक प्रेम के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।

मध्यकालीन भक्ति-काव्य को प्रभावित करने वाले भागवतीय तत्त्वों का अनुसंधान एवं स्वरूप-प्रकाशन ही प्रस्तुत प्रबन्ध का लक्ष्य है, इसीलिए ग्रन्थ में श्रीमद्भागवत का आधार लिया गया है। साहित्य-समीक्षा का एक सुविचारित सिद्धान्त सामने आ जाने पर केवल हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य ही क्या, किसी भी भारतीय-भाषा के कृष्ण-भक्ति-काव्य पर इसके प्रयोग का प्रश्न रह जाता है, जो केवल कुछ चुने हुए उदाहरणों के द्वारा भी सम्पन्न किया जा सकता है। मुझे आशा है कि इस शोध के द्वारा समस्त भारतीय भक्ति साहित्य के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त होगा।

हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-काव्य के विशाल भण्डार में इतने सम्प्रदायानुयायी, और सम्प्रदायमुक्त कवियों द्वारा रचित सामग्री संचित है और उनकी रचनाओं पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव इतने गहन और विविध रूपों में पाया जाता है कि कवियों की बड़ी से बड़ी संख्या के आधार पर भी इसका निरूपण करना एक दुष्कर कार्य है। ऐसी स्थिति में प्रधान-सम्प्रदाय-निर्वहण-स्थापन में प्रवृत्त, प्रख्यात और प्रतिनिधि कवियों का चयन ही मुझे समीचीन लगा और श्रीमद्भागवत के साथ उन्हीं की रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन का मार्ग निर्देश मैंने यथा-शक्ति किया है। जहाँ तक हो सका है 'नामूलं लिख्यते किंचिन्नानपेक्षितमुच्यते' के सिद्धान्तानुसार ग्रन्थ को लघुतम आकार देने की चेष्टा की गई है। इसके अतिरिक्त मौलिकता, निर्दोषिता तथा समग्रता का दावा करना 'सर्वस्तु सर्वं नहि वेद कश्चित्' जैसे शाश्वत-सत्य की अवहेलना होगी। मानव में अल्पज्ञता नैसर्गिक है। मैं इसका अपवाद नहीं हूँ।

हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का भक्ति-साहित्य—विशेषकर कृष्ण-भक्ति काव्य, श्रीमद्भागवत का कितना ऋणी है, इसमें इसके लोक-साहित्य में कितने मंगल विधायक और आनन्दनिस्यन्दि तत्त्वों का शुभागमन हुआ है, इस जिज्ञासा को लेकर चलने वाले साहित्य-पथिक का यह अल्प-प्रयास कुछ सम्बल बन सकेगा, उसके पथ को कुछ और प्रशस्त कर सकेगा, उसमें गन्तव्य के प्रति कुछ और सात्त्विक इच्छा जगा सकेगा, इसी आनन्दमय आशा और विश्वास से मैं यह कृति भारतीय-मनीषा को अर्पित करता हूँ।

अन्त में एक बात और। आज जिस भावात्मक एकता की आवश्यकता का अनुभव फिर से हमारे राष्ट्र की चेतना में हुआ है, उसकी पूर्ति श्रीमद्भागवत महापुराण और इससे प्रभावित समस्त भारतीय-भक्ति-साहित्य शताब्दियों पहले से करता आ रहा है। बीज और अंकुर अनादि काल से मौजूद हैं वे काल के कभी प्रचण्ड और कभी मंथर थपेड़ों से मूर्छित से हो गए हैं उनको अपने आत्माभिमान के सुधासिंचन से पुनर्नवीन करना है, तभी भारतवर्ष को अपनी स्वरूपोपलब्धि होगी। यह प्रयास इस महान् उद्देश्य की पूर्ति में कुछ सहायक होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

यह ग्रन्थ मेरे शोध प्रबन्ध का प्रायः अविकल रूप है जो श्रद्धेय गुरुवर डा० हरवंशलाल शर्मा के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया था। मेरे प्रति यह उनके सहज-स्नेह का फल है। उनके प्रति प्रणति-निवेदन करना मेरा पुनीत कर्तव्य है। भक्ति-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् श्री डा० दीनदयालु जी गुप्त एवं श्री डा० मुंशीराम जी शर्मा 'सोम' का आशीर्वाद मेरी इस साहित्य-यात्रा का सम्बल रहा है। मैं उनके प्रति विनम्र कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। अनेक अपरिहार्य अड़चनों और अन्धड़ों के कारण — जिनका यहाँ उल्लेख करना न आवश्यक है, न उपादेय, इस ग्रन्थ का प्रकाशन ५-६ वर्ष बाद हो सका है। प्रसिद्ध साहित्यकार (अब स्वर्गीय) श्रद्धेय श्री उदयशंकर भट्ट ने, जिनका मुझे अगाध और निर्विकल्प स्नेह-वात्सल्य प्राप्त था, बहुत पहले ही इस ग्रंथ के दिल्ली में प्रकाशन की सारी व्यवस्था कर दी थी, किन्तु मेरी ही मूढतापूर्ण त्वरा इसके विलम्ब से प्रकाशित होने का कारण बन गई। अस्तु।

इस प्रयास को पूर्ण करने में मुझे सर्वाधिक कायिक-वाचिक-मानसिक साहाय्य अपने पूज्य अग्रज दादाजी (श्री चिरंजीलाल जी शुक्ल) से प्राप्त हुआ है, जिनका स्नेहमय अंकुश मुझ जैसे आलसी और प्रमादी व्यक्ति को यहाँ तक घसीट लिवा लाया, वे शिरसा प्रणम्य हैं। मेरे विद्यार्थि सहयोगी बन्धुवर डा० प्रेमस्वरूप गुप्त न केवल समय-समय पर मेरी बौद्धिक और हार्दिक सहायता करते अपितु इस ग्रंथ की टंकित प्रति प्रस्तुत करने में उनका कोमल शरीर भी निरालस्य होकर सबल हो जाता था। उनको मैं अपने प्रेम का ही प्रतीक मानता हूँ। हैं भी वे प्रेमस्वरूप ही। अतः उन्हें शाब्दिक धन्यवाद न दूँगा। भाई साहब पं० मथुरानाथ जी शुक्ल ने अपने सुभाषित-संग्रह से अनेक उदाहरण और पिता जी के पुस्तकालय से अनेक सहायक ग्रंथ मुझे प्रदान किए। उन्होंने ग्रन्थ की टंकित प्रति के शुद्धीकरण में भी पूर्ण सहयोग दिया। इसे मैं उनका वात्सल्यमय प्रसाद समझता हूँ। भाई साहब डा० गोवर्धननाथ जी शुक्ल का स्नेह भी मेरा सम्बल रहा। अपने सहयोगी बन्धु डा० कैलाशचन्द्र भाटिया की सन्निकटता से मैं निरन्तर उत्साह एवं प्रेरणा प्राप्त करता रहा, और सन्दर्भ ग्रंथों की उपलब्धि में उनकी सहायता से मेरा कार्य निर्विघ्न चलता रहा। इन्दौरस्थ अपने प्रिय बन्धु श्री कृष्णकिशोर जी द्विवेदी के पुस्तकालय से मुझे शुद्धाद्वैत-सम्प्रदाय की दुर्लभ सामग्री समय-समय पर प्राप्त होती रही। इन सभी बन्धुओं के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। श्रद्धेय बन्धुवर डा० रामसुरेश जी त्रिपाठी के विलक्षण वैदुष्य और दुर्लभ पुस्तक संग्रह से भी मैं बहुत लाभान्वित हुआ हूँ। अतः उनके प्रति सादर आभार व्यक्त करता हूँ। उन सभी ज्ञात अज्ञात लेखकों और विद्वानों का भी मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिनकी रचनाओं से मैंने सहायता ली है।

मैं इस ग्रन्थ के प्रकाशक पं० बद्रीप्रसाद शर्मा और मुद्रक पं० करणसिंह शर्मा भी धन्यवाद के पात्र हैं जिनके सक्रिय सहयोग के फलस्वरूप यह पुस्तक आपके हाथों में है। नींव के पत्थर सदृश, प्रेस के वे कम्पोजीटर और प्रूफरीडर भी बधाई के पात्र हैं जो अपने पर्याप्त परिश्रम से मुद्राराक्षसत्व की उपाधि से आंशिक मुक्ति पा गए हैं, किन्तु जिनकी सृष्टि में मुद्रण की त्रुटियों का अत्यन्ताभाव कभी नहीं होता।

आज के इस अवसर, अविश्वास तथा असन्तोष के युग में जब अधिक और उत्तरोत्तर [illegible] की आस कोई विशेष व्यक्तित्व-व्यवस्था में मुझे किसी अचिन्त्य-शक्ति के निरन्तर से अभिभूत रखा है। मेरी मनोकामना यही है कि [illegible] की ही [illegible] प्राप्त नहीं [illegible] कि विविध अपनी सृष्टि को [illegible]

श्रीकृष्ण
मेरिस रोड, अलीगढ़
महाशिवरात्रि,
२०२२ वि०
१९६६ ई०

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पृष्ठ संख्या

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

प्रथम अध्याय

पुराण साहित्य एवं श्रीमद्भागवत

भारतीय वाङ्मय और उसका दृष्टिकोण

भारत और उसकी संस्कृति की प्रमुखता का रहस्य उसके विपुल पुरातन संस्कृत-वाङ्मय में निहित है। इस युग में सम्प्रदायों का जो हल्ला हुआ है फिर भी, जब विश्व-मानव को अकस्मात् एक आत्मिक अभाव की अनुभूति होती है, तब अनेक भिन्न भौतिक प्रयत्नों से ऊबकर आज का प्रगतिशील मानव वैज्ञानिक कभी असन्तुष्ट होता है तो अपनी आध्यात्मिक बुभुक्षा की निवृत्ति के लिए वह भारत के पुरातन वाङ्मय की ओर उन्मुख होता है। यहाँ भी सर्वप्रथम उसका ध्यान निःसंदेह रूप से पुरातन भारतीय-वाङ्मय की ओर ही केन्द्रित होता है, क्योंकि भारतवर्ष ही वह देश है जहाँ सर्वप्रथम ऋषियों ने सुदूर काल में वेद मन्त्रों के रूप में ज्ञान-समृद्ध होकर संसार को ज्ञान दिया, और विश्व ने अपना आलोक ग्रहण किया।[1] प्रायः यह आक्षेप किया जाता है कि प्राचीन भारतीय साहित्य केवल आध्यात्मिक है, उसमें इहलौकिक जीवन को सफलतापूर्वक यापन करने के लिए कोई निर्देश नहीं। यह सत्य हो सकता है, किन्तु यह आक्षेप समीचीन नहीं। बहुत पहले ही भारतीय मनीषा ने 'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि स धर्मः' कहकर अपनी सामञ्जस्य नीति की घोषणा कर दी है। भारतीय ऋषियों के सामने जीवन का एक निश्चित उद्देश्य था जिसे वे अपने दृष्टि-पथ से कभी ओझल नहीं होने देते थे। वह उद्देश्य था पुरुषार्थ चतुष्टय का सम्पादन। लौकिक जीवन को सुचारु रूप से बिताकर नैष्कर्म्य और निर्विकल्प अवस्था तक पहुँचकर स्वरूप में अवस्थान करना जीव का परम लक्ष्य है। इस उद्देश्य को निरन्तर सामने रखकर निर्मित समस्त उच्चकोटि का भारतीय वाङ्मय प्रधानतया अध्यात्म प्रवण है। अभ्युदय और निःश्रेयस का स्पष्ट समन्वय करता हुआ यह वाङ्मय स्पष्ट रूप से किसी अलौकिक तत्त्व की ओर इंगित कर रहा है—

'तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'[2]

अर्थात् उसी परम-पुरुष को जानकर मनुष्य मृत्यु को तर सकता है। कल्याण का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

वैदिक साहित्य से लेकर पौराणिक साहित्य तक इसी विलक्षण तत्त्व का अत्यन्त विस्तृत किन्तु सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

---

१ एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः। मनुस्मृति—अ० २, श्लो० २०

२ शुक्ल यजुर्वेद, पुरुष सूक्त ३. १८

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के ज्ञान के लिए ब्राह्मण ग्रंथों का अध्ययन अनिवार्य है। ब्राह्मणों के अनन्तर आरण्यक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। वानप्रस्थ आश्रम में अरण्य-वासी आर्य यज्ञों के रहस्यों एवं गूढ़ दार्शनिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आरण्यकों का अध्ययन करते थे। इन्हीं आरण्यकों से आगे चलकर उपनिषदों का विकास हुआ जो भारतीय अध्यात्मतत्त्व को प्रकाशित करने वाले तेजस्वी रत्न-भाण्डागार है। उपनिषदों में मानव जीवन एवं जगत् के जटिलतम प्रश्नों पर विचार किया गया है, और समाधान प्रस्तुत किया गया है। उपनिषदों का प्रमुख उद्देश्य ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन है। इनमें वेद का निचोड़ या सार होने के कारण इन्हें वेदान्त भी कहा जाता है। ब्रह्म, जीव और जगत् की व्याख्या, इनका परस्पर सम्बन्ध और ब्रह्म जीवैक्य प्रतिपादन में भारतीय ऋषियों की ऋतम्भरा प्रज्ञा का पूर्ण उत्कर्ष इन उपनिषदों में हमें पुञ्जीभूत रूप में मिलता है। वैसे तो उपनिषदों की संख्या सौ से ऊपर है किन्तु मुख्य उपनिषद् ग्यारह है। (१) ईश, (२) केन, (३) कठ (४) प्रश्न (५) मुण्डक (६) माण्डूक्य (७) तैत्तिरीय, (८) ऐतरेय, (९) छान्दोग्य, (१०) बृहदारण्यक और (११) श्वेताश्वतर। प्राचीनता विशालता एवं वर्ण्य विषय की गुरुता के कारण छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषद् बहुत प्रसिद्ध है।

वैदिक साहित्य की विशाल राशि एवं उसमें वर्णित कर्मकाण्ड को संक्षेप में हृदयगम करने के लिए भारतीय मनीषियों ने सूत्र-साहित्य का सूत्रपात किया। परिमित से परिमित शब्दों में अपरिमित अर्थ का बोध कराने वाले वाक्यों और वाक्यांशों का सर्जन हुआ। इसी लिए इन्हें 'सूत्र' कहा गया। सूत्र साहित्य चार भागों में विभक्त हुआ। (१) श्रौतसूत्र, (२) गृह्यसूत्र, (३) धर्मसूत्र तथा (४) शुल्वसूत्र, श्रौतसूत्रों में वैदिक कर्मकाण्ड का विवेचन है। गृह्य सूत्रों में गृहस्थ व्यक्ति के लिये कर्त्तव्य कर्मों का विधान है। धर्मसूत्रों में सामाजिक कर्त्तव्यों का निरूपण है और शुल्व सूत्रों में यज्ञवेदियों की निर्माण-क्रिया आदि विषयों का वर्णन है।

वैदिक साहित्य कालान्तर में दुरूह से दुरूहतर होता गया और भारतीय मनीषी भी उसके अर्थ का स्पष्टीकरण करने के लिए अनवरत प्रयत्नशील रहे। वेद के विविध विषयों एवं अंशों का सुव्यवस्थित अध्ययन करने के लिए छै वेदाङ्गों का आविष्करण हुआ। ये है--(१) शिक्षा, (२) कल्प, (३) व्याकरण, (४) छन्द, (५) ज्योतिष और (६) निरुक्त। इन छै विषयों का सम्यक् ज्ञाता ही षडङ्ग वेदाध्यायी कहलाता था। व्याकरण वेद का मुख, ज्योतिष् नेत्र, निरुक्त श्रोत्र, कल्प हाथ, शिक्षा नासिका तथा छन्द वेदों के चरण कहलाये। वेदों के शुद्ध उच्चारण की शिक्षा देने के लिए 'शिक्षा' का निर्माण हुआ। भाषा के उच्चारण का वैज्ञानिक-विवेचन प्रस्तुत करने वाले ये प्रथम ग्रंथ है। इन्हें 'प्रातिशाख्य' भी कहा जाता है। पृथक्-पृथक् वैदिक संहिताओं के पृथक्-पृथक् प्रातिशाख्य है। कर्मकाण्ड का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कल्पसूत्रों का प्रणयन हुआ। पूर्वोक्त श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र एवं धर्मसूत्र ही कल्पसूत्र कहलाते हैं। व्याकरण का उद्देश्य शब्द-रूपों और धातुरूपों का शुद्ध ज्ञान प्राप्त कराना है। पाणिनि का अष्टाध्यायी व्याकरण विश्वविश्रुत है किन्तु पाणिनि से भी पूर्व ब्राह्मण ग्रन्थों के काल में ही व्याकरण-विचार

होने लगा था। पाणिनि के पूर्ववर्ती शाकटायन, स्फोटायन, गार्ग्य, इन्द्र आदि वैयाकरणों के ग्रंथ दुर्भाग्य से अब उपलब्ध नहीं रहे। छन्द शास्त्र से छन्दोबद्ध वैदिक मंत्रों के विविध छन्दों का ज्ञान होता था। ऋक् प्रातिशाख्य में इस शास्त्र का वर्णन है। पिंगलाचार्य के छन्दः सूत्र में वैदिक के अतिरिक्त लौकिक छन्दों का वर्णन भी है। ज्योतिष् के द्वारा यज्ञों के शुभ मुहूर्त्त का ज्ञान होता है। ज्योतिष् का प्राचीनतम ग्रंथ लगध मुनि का 'वेदांग ज्योतिष्' है। निरुक्त ग्रन्थों में वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति प्रदर्शित की गई है। यास्क का 'निरुक्त' इस विषय का प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

वैदिकोत्तर साहित्य — वैदिक साहित्य में जहाँ संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि की गणना होती है वहाँ वैदिकोत्तर साहित्य में रामायण आदि महाकाव्य, महाभारत आदि इतिहास ग्रंथ तथा श्रीमद्भागवत आदि पुराण ग्रंथों का परिगणन होता है। किन्तु यह समस्त साहित्य अपनी आत्मिक-स्फुरणा एवं बाह्य अवयव-सन्धान के लिए पूर्णतया वैदिक साहित्य पर ही अवलम्बित है। परवर्ती निखिल भारतीय वाङ्मय वेदोक्त सिद्धान्तों के भाष्य रूप में ही प्रकाशित हुआ। इस परवर्ती साहित्य ने जनसाधारण को वेदोक्त दुरूह ज्ञान एवं गहन अध्यात्म तत्त्वों को हृदयंगम कराने का कठिन और महत्त्वपूर्ण कार्य किया। भारतीय संस्कृति, सभ्यता और साहित्य को अत्यन्त गहराई से प्रभावित करने वाले विश्वविश्रुत ग्रंथ रामायण और महाभारत का परिचय देना अनावश्यक है। एक तीसरा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ श्रीमद्भागवत पुराण है जिसने मध्यकालीन भारतीय समाज की चिन्ता-धारा को बहुत प्रभावित किया।

वास्तव में यदि हम स्थूल विश्लेषण ही करें तो हमें यह स्पष्ट होते विलम्ब न लगेगा कि वैदिकोत्तर भारतीय-जीवन को अत्यन्त गहराई और व्यापक रूप से प्रभावित करने वाले तीन महान् तेजस्वी ग्रंथ हैं—(१) आदि कवि वाल्मीकि का रामायण, (२) महर्षि व्यास का महाभारत और (३) श्रीमद्भागवत पुराण। ये तीनों ग्रंथ ही वे अक्षय कोष और प्रभविष्णु धाराएँ हैं जिनसे ईसा की प्रथम सदी से आज तक के अधिकांश भारतीय साहित्य का बहिरंग और अन्तरंग अनुप्राणित है। वह अधिकांशतः अपने देह के सर्जन और आत्मा के अभिज्ञान के लिए उपर्युक्त ग्रंथत्रयी का ही मुखापेक्षी है। इसकी आधार शिला पर ही हमारे साहित्य का विशाल प्रासाद खड़ा है और यह ग्रंथत्रयी ही हमारे साहित्य के एक विशाल भाग की एकमात्र उपजीव्य है। महाभारत तो आधे से भी अधिक भारतीय साहित्य को व्याप्त किए हुए है।

प्रत्येक देश काल में कुछ ऐसी विभूतियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनकी प्रखर-प्रतिभा से निखिल जगत् आलोकित हो उठता है, जिनकी दिव्य भारती विश्व संस्कृति को युग-युगों तक प्रभावित करती रहती है। वे मनीषी अपनी दिव्य लेखनी से जिस चिरन्तन साहित्य का सर्जन करते हैं उसे पराजित अथवा अभिभूत करने की शक्ति किसी मानव-प्राणी में नहीं होती।

आदि कवि वाल्मीकि के रामायण को विश्व का आदि काव्य होने का गौरव प्राप्त है। महर्षि वेदव्यास का महाभारत विश्व का सबसे बृहद् ग्रंथ तथा विश्वकोष होने की

महिमा से मण्डित है[1]। इसी प्रकार ज्ञान वैराग्य भक्ति की त्रिवेणी के संगम रूप श्रीमद्भागवत पुराण ने भी विश्वसाहित्य में एक अनन्य माहात्म्य-शाली स्थान प्राप्त कर लिया है[2]।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इसी सुविख्यात श्रीमद्भागवत को केन्द्र मानकर हिन्दी के पूर्व मध्यकालीन कृष्णभक्ति साहित्य पर इसके व्यापक प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। श्रीमद्भागवत का [illegible] भक्ति साहित्य पर ही [illegible] प्रभाव पड़ा है और यह [illegible] की आवश्यकता नहीं है। इस विषय पर [illegible] है इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते।

श्रीमद्भागवत [illegible] में एक विशिष्ट साहित्य-कोटि का ग्रंथ है जिसे हम पुराण-साहित्य [illegible] हैं। [illegible] साहित्य में पुराणों का क्या [illegible] यह [illegible] महत्वपूर्ण प्रश्न है। अतः यहाँ [illegible] पुराण [illegible] संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

पुराण साहित्य — पुराणों का [illegible] रचना तिथि, नाम, विषय, उनकी संख्या आदि आज भी विद्वानों के लिये विवाद विषय बने हुए हैं। पुराण साहित्य पर जिन विद्वानों ने कुछ लिखा है उनमें भी परस्पर मतभेद है। अतः यह विषय अब भी पृथक् रूप से स्वतन्त्र अध्ययन एवं गवेषणा की अपेक्षा रखता है। वास्तव में पुराण साहित्य भारत के अतीत गौरव की [illegible] अमूल्य निधि है। इसमें हमारी सभ्यता और संस्कृति के निर्माण [illegible] है। पुराण-साहित्य को [illegible] के वेदों से भी प्राचीन बताया गया है[3]। यद्यपि यह कथन अत्युक्ति है, तथापि इससे पुराण साहित्य का महत्व अवश्य प्रकट होता है।

पुराण शब्द का अर्थ—'पुराण' शब्द का सामान्य अर्थ तो 'पुराना' ही है, संस्कृत के कोषकारों ने इसका यह अर्थ ग्रहण भी किया है[4]। इसके अतिरिक्त एक विशेष सिक्के को भी पुराण कहा जाता था[5]। साहित्य में एक विशिष्ट कोटि के साहित्य को

1. [illegible] (महाभारत [illegible] अध्याय [illegible], श्लोक [illegible])
2. [illegible] (श्रीमद्भागवत [illegible])
3. [illegible] (मत्स्यपुराण, अ० [illegible] श्लोक [illegible]) [illegible] उनके मुख से वेद निकले।
4. [illegible] शास्त्री [illegible] १९२६ ई० [illegible] लि० सा० [illegible]
5. [illegible]

पुराण नाम से अभिहित किया गया है।[1] पुरातन या प्राचीन होने से इस साहित्य को पुराण कहते हैं यह भी आंशिक रूप में सत्य है किन्तु पुराण और भी कारणों से पुराण कहलाता है। यास्क ने कहा है कि 'जिसमें पुरानी वस्तु भी नवीन हो जाती है उसे पुराण कहते हैं[2]। अमर कोष व्याख्या में कहा गया है कि पहले हुआ अथवा पहले होकर भी नवीन या पहले की भूत भविष्यत् अर्थों का कथन करने वाला शास्त्र पुराण कहलाता है[3]। पद्म पुराण में भी यही अर्थ स्वीकार किया गया है।[4] इससे ज्ञात होता है कि पुराण शब्द का अर्थ केवल 'पुरातन' नहीं है अपितु पुराने भी तथा वर्तमान कहने वाला तथा अनागत (भविष्यत्) का कथन करने वाला साहित्य पुराण है। भविष्य पुराण का अस्तित्व इसका साक्षी है।

यह तो निर्विवाद है कि ऐतिहासिक दृष्टि से पुराण अमूल्य निधि है और भारतीय इतिहास, सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से पुराणों का बड़ा महत्त्व है।[5] भारत के प्राचीन साहित्य में इतिहास और पुराण शब्द एक साथ प्रयुक्त मिलते हैं।[6] किन्तु पुराणों में जिस प्रकार की असम्भव और अविश्वसनीय घटनाओं का उल्लेख है उससे उन्हें ऐतिहासिक मानना आज के बुद्धिवादी युग में सम्भव नहीं है। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि पुराणों की शैली अतिशयोक्ति पूर्ण, आलङ्कारिक और रूपकात्मक है, उसके मूल में जाकर ही हम ऐतिहासिक तथ्यों तक पहुँच सकते हैं। अनेक विद्वानों ने पुराणों का ऐतिहासिक मूल्यांकन किया है। रामकृष्णदास जी की मान्यता है कि पुराण-साहित्य एक समय सर्वत्र ऐतिहासिक वाङ्मय था और पुराण तथा इतिहास शब्द समानार्थक थे।[7] वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों का स्वयं को इतिहास बताना तथा महाभारत का स्वयं को पुराण बताना यह सिद्ध करता है कि इतिहास और पुराण शब्द प्राचीनकाल में समानार्थक थे। पुराणों में असम्भव और अविश्वसनीय घटनाओं का प्रवेश उनमें साम्प्रदायिकता आ जाने से हुआ है। ब्रह्मवैवर्त तथा विष्णु पुराण में आई हुई पुराणों की परिभाषा[8] में सर्ग (महाभूतों की सृष्टि का वर्णन) प्रतिसर्ग (प्रलय और उसके बाद पुनः सृष्टि) वंश (वंशावलियों का वर्णन) मन्वन्तर (कल्पान्तरों तथा मन्वन्तरों का वर्णन) तथा वंशानुचरित (वंशों के प्रधान महापुरुषों के चरित्र का वर्णन) ये पाँचों लक्षण पुराणों की ऐतिहासिकता का ही बोध कराते हैं।

---

१ पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥ याज्ञवल्क्य स्मृति १-३।

२ पुराणं कस्मात् पुरा नवं भवति (निरुक्त ३।१९।२४)

३ पुराभवं यद्वा पुरा अपि नवं यद्वा पुरा भवमतीतानागतार्थी कथयति (अमरकोष बड़ी संस्क०)

४ पुरा परम्परां वष्टि पुराणं तेन वै स्मृतम्, पद्मपुराण ५।२।५३।

५ डा० हरवंशलाल शर्मा : सूर और उनका साहित्य, पृ० १६६ प्रथम संस्करण

६ इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। महाभारत आदि पर्व अ० १
तथा—इतिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेदम्, छान्दोग्य उपनिषद् ७-१-२

७ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्॥ विष्णुपुराण—३-६-२४

८ 'पुराण-इतिहास'—रामकृष्णदास श्री वेङ्कटेश्वर समाचार बम्बई २२-१०-५४ का अंक।

महिमा से मण्डित है[1]। इसी प्रकार ज्ञान वैराग्य भक्ति की त्रिवेणी के संगम रूप श्रीमद्भागवत पुराण ने भी विश्वसाहित्य में एक अनन्य माहात्म्यशाली स्थान प्राप्त कर लिया है[2]।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इसी ग्रन्थ रत्न श्रीमद्भागवत को केन्द्र मानकर हिन्दी के पूर्व मध्यकालीन कृष्णभक्ति साहित्य पर इसके व्यापक प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। श्रीमद्भागवत का [illegible] भक्ति साहित्य पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा है और यह इतना अधिक स्पष्ट है कि [illegible] ज्ञात कराने की आवश्यकता नहीं है। इस विषय का [illegible] अध्ययन [illegible] है इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते।

श्रीमद्भागवत पुराण-साहित्य के उस विशिष्ट साहित्य-कोटि का ग्रंथ है जिसे हम पुराण-साहित्य [illegible] से अभिहित करते हैं। भारतवर्ष के साहित्य में पुराणों का क्या महत्त्व है और उनमें श्रीमद्भागवत का क्या स्थान है यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। अतः यहाँ पहले पुराण साहित्य के विषय में संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

पुराण साहित्य — पुराणों का तारतम्य, उनका निर्माण काल, विषय, उनकी संख्या आदि आज भी विद्वानों के लिये विवाद्य विषय बने हुए हैं। पुराण साहित्य पर जिन विद्वानों ने कुछ लिखा है उनमें भी परस्पर मतभेद है। अतः यह विषय अब भी पृथक् रूप से स्वतन्त्र अध्ययन एवं गवेषणा की अपेक्षा रखता है। वास्तव में पुराण साहित्य भारत के प्राचीन गौरव की [illegible] अमूल्य निधि है। इनमें हमारी सभ्यता और संस्कृति के निर्माता ऋषियों का संकलित प्रयत्न [illegible] है। पुराण-साहित्य की [illegible] के वेदों से भी प्राचीन [illegible] है[3]। यद्यपि यह कथन अत्युक्ति है, तथापि इससे पुराण साहित्य का महत्त्व अवश्य प्रकट होता है।

पुराण शब्द का अर्थ — पुराण शब्द का सामान्य अर्थ तो पुराना होता है। संस्कृत के कोशकारों ने इसका यह अर्थ ग्रहण भी किया है[4]। इसके अतिरिक्त एक विशेष [illegible] को भी पुराण कहा जाता था[5] [illegible] में एक विशेष कोटि के साहित्य को

1. [illegible] अध्याय ६२, श्लोक ५३
2. [illegible] श्रीमद्भागवत १२, १३, १६
3. [illegible] मत्स्यपुराण, अ० ५३ श्लोक ३। [illegible] उनके मुख से वेद निकले।
4. [illegible] संस्क० १९२५ ई० [illegible] व्याख्याकार भानु दीक्षित नि० सा० [illegible]
5. [illegible]

पुराण नाम से अभिहित किया गया है।[1] पुरातन या प्राचीन होने से इस साहित्य को पुराण कहते हैं यह भी व्यावहारिक रूप में सत्य है किन्तु पुराण और भी कारणों से पुराण कहलाता है। यास्क ने कहा है कि 'जिसमें पुरानी वस्तु भी नवीन हो जाती है उसे पुराण कहते हैं[2]। अमर कोश व्याख्या में कहा गया है कि पहले हुआ अथवा पहले होकर भी नवीन या पहले हुए भूत भविष्यत् अर्थों का कथन करने वाला शास्त्र पुराण कहलाता है[3]। पद्म पुराण में भी यही अर्थ स्वीकार किया गया है।[4] अतः ज्ञात होता है कि पुराण शब्द का अर्थ केवल 'पुरातन' नहीं है अपितु पुराने को तथा वर्तमान कहने वाला तथा अनागत (भविष्यत्) का कथन करने वाला साहित्य पुराण है। भविष्य पुराण का अस्तित्व इसका साक्षी है।

विद्वानों का विचार है कि ऐतिहासिक दृष्टि से पुराण अमूल्य निधि है और भारतीय इतिहास सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से पुराणों का बड़ा महत्व है।[5] भारत के प्राचीन साहित्य में इतिहास और पुराण शब्द एक साथ प्रयुक्त मिलते हैं।[6] किन्तु पुराणों में जिस प्रकार की असम्भव और अतिरंजित घटनाओं का उल्लेख है उससे उन्हें ऐतिहासिक मानना आज के बुद्धिवादी युग में सम्भव नहीं है। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि पुराणों की शैली अतिरञ्जित पूर्ण, आलंकारिक और रूपकात्मक है, उसके मूल में जाकर ही हम ऐतिहासिक तथ्यों तक पहुँच सकते हैं। अनेक विद्वानों ने पुराणों का ऐतिहासिक मूल्यांकन किया है। रामकृष्णदास जी की मान्यता है कि पुराण-साहित्य एक समय सर्वथा ऐतिहासिक वाङ्मय था और पुराण तथा इतिहास शब्द समानार्थक थे।[8] वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों का स्वयं को इतिहास बताना तथा महाभारत का स्वयं को पुराण बताना यह सिद्ध करता है कि इतिहास और पुराण शब्द अर्वाचीनकाल में समानार्थक थे। पुराणों में असम्भव और अविश्वसनीय घटनाओं का प्रवेश उनमें साम्प्रदायिकता आ जाने से हुआ है। ब्रह्मवैवर्त तथा विष्णु पुराण में आई हुई पुराणों की परिभाषा[7] में सर्ग (महाभूतों की सृष्टि का वर्णन) प्रतिसर्ग (प्रलय और उसके बाद पुनः सृष्टि) वंश (वंशावलियों का वर्णन) मन्वन्तर (कल्पान्तरों तथा मन्वन्तरों का वर्णन) तथा वंशानुचरित (वंशों के प्रधान महापुरुषों के चरित्र का वर्णन) ये पाँचों लक्षण पुराणों की ऐतिहासिकता का ही बोध कराते हैं।

---

१ पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥ (याज्ञवल्क्य स्मृति १-३)
२ पुराणं कस्मात् पुरा नवं भवति (निरुक्त ३। १९। २४)
३ पुरातनं यत्र पुरा अभिनवं यद्वा पुरा अतीतानागतौ अर्थौ अवति (अमरकोश बड़ी संस्क०)
४ पुरा परम्परां वष्टि पुराणं तेन वै स्मृतम् (पद्मपुराण १। २। ५३)
५ डा० हरवंशलाल शर्मा : सूर और उनका साहित्य, पृ० १६६ प्रथम संस्करण
६ इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। महाभारत आदि पर्व अ० ५
तथा—इतिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्। छान्दोग्य उपनिषद् ७-१-२
७ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ विष्णुपुराण—३-६-२४
८ 'पुराण-इतिहास'—रामकृष्णदास श्री वेंकटेश्वर समाचार बम्बई २२-१०-५४ का अंक।

किन्तु आज 'पुराण' और 'इतिहास' समानार्थक शब्द नहीं माने जाते। अब हम 'इतिहास' से उस साहित्य को ग्रहण करते हैं, जो पुरातन के वास्तविक इतिवृत्त का वर्णन करता है। 'पुराण' से हमारा तात्पर्य उस साहित्य से होता है जो अंशतः या पूर्णतया ऐतिहासिक इतिवृत्त से भिन्न होकर अध्यात्म के रहस्यों का उद्घाटन करता है। पुराण में जो पुरानी वस्तु नवीन करके दिखाई जाती है वह है निगमागम उपनिषद् आदि का तत्वज्ञान। पुराण अपने दृष्टिकोण से इसी पुरातन तत्वज्ञान की व्याख्या करता है। विद्वानों का मत है कि पुराणों में ऐतिहासिक और भौगोलिक प्रवृत्ति से स्थूल प्रतीक ही पुराणों में वर्णित देवी देवताओं के चरित्र और अन्य अनेक घटनाओं के रूप में हमें प्राप्त हैं। वे हमारे ग्रन्थों के सूक्ष्म तत्वों के स्थूल रूपक हैं। ऋषियों ने गहन आध्यात्मिक तत्व को हृदयगम कराने के लिए काल्पनिक और ऐतिहासिक घटनाओं तथा दृष्टान्तों का प्रयोग किया है। महाभारत में कहा गया है कि पुराणों में दिव्य कथाएं एवं परम बुद्धिशाली महापुरुषों का वर्णन है।[1] अतः ज्ञात होता है कि पुराण साहित्य वह महान् साहित्य है जो वेद, उपनिषद्, स्मृति आदि के अति गहन और दुरूह तत्वज्ञान को दृष्टान्त, कथा, उपाख्यान आदि माध्यमों के सहारे बड़े आकर्षक, सरल और रोचक ढंग से हमें समझाता है।

अंग्रेजी भाषा का Mythology शब्द हमारे 'पुराण' शब्द का कुछ बोध कराता है। Mythology से तात्पर्य है, सभ्यता के आरम्भिक काल की समस्त कथाओं, दन्तकथाओं और परम्परा का सामूहिक अध्ययन। सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी, सभी मान्यताएँ देवताओं और दिव्यपुरुषों की उत्पत्ति, आदि-कालीन इतिहास आदि सभी बातों का समावेश Mythology में हो जाता है। इस शब्द का मूल ग्रीक भाषा का Mythus अथवा Mythos शब्द है।[2] अंग्रेजी का Myth शब्द प्राचीनतम मान्यताओं के आधार पर कल्पित या असत्य (मिथ्या) कहानियों का बोधक है।[3] सर जॉ० डब्ल्यू० कावस तथा प्रो० मैक्समूलर का मत है कि Myth सूर्य आदि प्राकृतिक शक्तियों के कार्य का मानवीकरण है जो सृष्टि के आदिकाल में किया गया था।[4] किन्तु अन्य विद्वानों का इसमें मतभेद है। श्री Andrew Lang का विचार है कि Myth का मूलाधार बर्बर जातियों की मनोवृत्ति ही है।[5]

हम देखते हैं कि Mythology और पुराण में अनेक समताएँ तथा विभिन्नताएँ हैं। विभिन्नता के उदाहरणस्वरूप कहा जा सकता है कि पुराणों में Mythology की भाँति असत्य और कल्पित कथा कहानियों को [illegible] करने का आग्रह नहीं पाया जाता।

पुराणों का रचना काल

जैसा कि कहा जा चुका है पाश्चात्य विद्वान् Mythology अथवा पुराण को

१ महाभारत आदि पर्व [illegible]

२ The New Popular Encyclopaedia, Edited by Charles A Vol, 9 page 401

३ Chamber's Twentieth Century Dictionary. page 60. Oxford Dictionary page 51[illegible].

४ Contributions to the science of mythology. Maxmuller. and Cocks tales of ancient Greece and Mythology of Aryan nations.

५ Andrew Lang Custom and Myth (London 1884)

पुरातन विश्व सभ्यता के आदिकाल की समस्त घटनाओं, दन्तकथाओं और परम्पराओं का अध्ययन मानते हैं। न्यू पॉपुलर इनसाइक्लोपीडिया में लिखा है कि यद्यपि समस्त विश्व के आदिम मानव वर्गों में इस प्रकार की पुराण कथाएँ और विश्वास पाए जाते हैं, तथापि ऐसी सामग्री भारतवर्ष, मिस्र, प्राचीन यूनान, रोम और स्केण्डेनेविया के निवासियों में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है।[1] इस कथन से यह भी स्पष्ट हो ही जाता है कि पाश्चात्य विद्वान् भी पौराणिक साहित्य का अस्तित्व मानव-सभ्यता के आदिकाल से स्वीकार करते हैं। भारतीय महर्षिगण भी पुराण साहित्य को विश्व के प्राचीनतम साहित्य वेद से भी प्राचीन मानते हैं—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥

मत्स्य पुराण ५३–३

शतपथ ब्राह्मण में वेदों के समान ही इतिहास और पुराणों को भी परमात्मा का निःश्वास बताया गया है—

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ॥

शतपथ ब्राह्मण १४-५।४।१०

छान्दोग्य उपनिषद् में पुराण का सादर उल्लेख किया गया है।[2] अथर्ववेद में चारों वेदों के साथ पुराण को भी परिगणित किया गया है। इसमें कथित नारद के प्रति श्लोक किसी पुराण के संवाद से उद्धृत सा ज्ञात पड़ता है।[3] बृहदारण्यक उपनिषद् में आया है कि वेदों के साथ पुराण भी महद्भूत से निःसृत हुआ है।[4] अतः यदि हम पुराण की उत्पत्ति भी वेदों के साथ ही मानलें तो इनकी प्राचीनता स्वतः सिद्ध हो जायगी। किन्तु जैसा पहले कहा जा चुका है कि पुराणों में वेद, स्मृति आदि की नवीन व्याख्या की गई है, पुराण को वेद के समान प्राचीन अथवा उसका समकालीन नहीं माना जा सकता, किन्तु साथ ही पुराण की प्राचीनता भी निर्विवाद है। यह बात अवश्य है कि हम पुराण का जो विकसित, परिवर्धित और परिवर्तित रूप आज देख रहे हैं वह अपने मूलरूप में न रहा हो।[5] किन्तु कुछ विद्वान् पुराण साहित्य का अस्तित्व काफी विकसित रूप में वैदिक युग में भी मानते हैं। वे अपने मत का आधार वेद और उपनिषद् में पुराण का उल्लेख मानते हैं। ऐसे विद्वानों में श्रीयुत व्रजरत्नदास उल्लेखनीय हैं। उन्होंने अपने एक लेख में कहा है — 'पुराण साहित्य की वैदिक काल में सत्ता ही सिद्ध नहीं होती, बल्कि यह भी प्रकट होता है कि उसका कितना समादर था। किसी नये साहित्य का यह पद नहीं हो

१ New popular Encyclopaedia Vol. 9 p. 401
२ छान्दोग्य उपनिषद् ३. ४. १.
३ अथर्ववेद ११. ७. २४.
४ बृहदारण्यक २. ४. १०
५ सूर और उनका साहित्य (डा० हरवंशलाल शर्मा) पृ० १६४

सकता।[1] शतपथ ब्राह्मण में पुराण को वेद के समकक्ष कहा गया है तथा उसके नित्य-पाठ का विधान किया गया है।[2]

पुराणों का मूलस्रोत—यह सम्भव ज्ञात पड़ता है कि अपने बीज रूप में पुराण वैदिक युग में भी विद्यमान थे क्योंकि पुराणों में प्राचीन आख्यायिकाएँ हैं, उनका मूल चारों वेदों की संहिताओं में, ब्राह्मणों और उपनिषदों में भी है।[3] वेदोक्त तत्त्वज्ञान और कर्मकाण्ड [illegible] करना पुराणों का उद्देश्य माना ही गया है, [illegible] उपनिषद् [illegible] वैदिक साहित्य को पुराण का मूल-स्रोत [illegible] विद्वान् पुराणों का [illegible] ईसवी ३०० से ८०० तक [illegible] है। [illegible] पुराणों ने आधुनिक रूप में विकास हुआ है किन्तु [illegible] पुराण का अस्तित्व था, यह एक बात असंदिग्ध है। [illegible] धर्मग्रन्थों में पुराणों के श्लोक उद्धृत मिलते हैं। गौतम धर्म सूत्र और आपस्तम्बीय धर्म सूत्र इसके प्रमाण हैं। इन सूत्रों का रचनाकाल [illegible] ६०० ई० पू० तथा ४०० ई० पू० स्वीकार कर लिया है।[5] महाभारत का रचनाकाल इनका परवर्ती माना जाता है।

भारतीय पुराणों की संख्या —

मत्स्य पुराण से पता चलता है कि पहले एक ही पुराण था किन्तु वह अत्यन्त विस्तृत था—

पुराणमेकमेवासीत् तदा कल्पान्तरेऽनघ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥

मत्स्य पुराण अ० ५३, श्लो० ३

वैदिक साहित्य में भी 'पुराण' शब्द का प्रयोग एकवचन में ही हुआ है— यथा—

१—ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।

अथर्ववेद ११. ७. २४

२—इतिहासस्य च वै पुराणस्य च [illegible] च [illegible] प्रियं धाम भवति य एवं वेद।

अथर्ववेद १५. १. ६. १२

३—[illegible] पुराणं वेदः [illegible] किंचित्पुराणमाचक्षीतैवमेवाध्वर्युः।

शतपथ ब्राह्मण १३. १४. ३. १३

४—[illegible] धर्मसूत्र [illegible] में भी पुराण शब्द का प्रयोग एक-वचन में ही हुआ है।

---

१ [illegible] १९५४ ई०
२ [illegible]
३ [illegible] तस्मै मुक्तिर्वै।
४ [illegible]
५ Sacred Books of The East Series, Vol. 14 (Buhler)

पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतिहासः ।
—अर्थशास्त्र अधि० १ अध्याय ५ प्रकरण २

इस शब्द का बहुवचन में सर्वप्रथम प्रयोग आश्वलायन गृह्यसूत्र में हुआ है।[1] अनुमान होता है कि प्रारम्भ में समस्त पुराण साहित्य का संकलन एक ही पुरातन पुराण संहिता में रहा होगा, जैसा कि स्वयं पुराणों के पूर्वोक्त कथन से भी प्रमाणित होता है। पुराणों में उल्लेख है कि वेदों का सम्पादन करने के पश्चात् व्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा तथा कल्पशुद्धि का संकलन कर पुराण संहिता की रचना की। विष्णु पुराण में पुराण संहिता के विषय में कहा गया है कि पुराणार्थविशारद भगवान् वेदव्यास ने आख्यान उपाख्यान गाथा और कल्प शुद्धि के साथ साथ पुराण संहिता लिखी। व्यास ने यह संहिता अपने एक सूत शिष्य लोमहर्षण को प्रदान की। लोमहर्षण के छः शिष्यों में से काश्यप, अकृतव्रण और सावर्णि नामक तीन शिष्यों ने मूल संहिता के आधार पर एक एक पुराणसंहिता और लिखी। पूर्वोक्त मूल संहिता और पश्चाल्लिखित तीन संहिताएँ, इस प्रकार कुल चार संहिताओं का सार लेकर यह प्रस्तुत पुराण संहिता (विष्णु पुराण) लिखी गई है।

बहुत प्राचीन काल से ही पुराणों की संख्या अठारह चली आती है। इन अठारह पुराणों के अतिरिक्त अठारह ही उपपुराण भी हैं। ये सभी पुराण और उपपुराण आज भी उपलब्ध हैं। प्रायः सभी पुराणों में अठारह पुराणों की नामावली दी गई है। निम्नलिखित श्लोक में भी संकेतात्मक रीति से पुराणों का नामोल्लेख किया गया है—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते ॥

इस पद्य का विस्तार करने से हमें अठारह पुराणों की निम्नांकित नामावली प्राप्त होती है—

(१) मत्स्य, (२) मार्कण्डेय, (३) भागवत, (४) भविष्य, (५) ब्रह्म, (६) ब्रह्माण्ड, (७) ब्रह्मवैवर्त, (८) वायु अथवा शिव, (९) विष्णु, (१०) वराह, (११) वामन, (१२) अग्नि, (१३) नारद, (१४) पद्म, (१५) लिंग, (१६) गरुड, (१७) कूर्म तथा (१८) स्कन्द।

पुराणों का वर्गीकरण - स्कन्दपुराण में विभिन्न देवताओं के प्राधान्य और माहात्म्य की दृष्टि से रखकर पुराणों के चार वैष्णव, शैव, शाक्तादि भेद किये गये हैं। कहा गया है कि शिव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिंग, वराह, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, वामन तथा ब्रह्माण्ड—ये दस पुराण शिव से सम्बद्ध हैं तथा इनमें कुल तीन लाख श्लोक हैं। विष्णु, भागवत, नारद तथा गरुड़—ये चार पुराण विष्णु से सम्बद्ध हैं। ब्रह्म तथा पद्म—ये दो पुराण ब्रह्मा से सम्बद्ध हैं। अग्निपुराण अग्नि से तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण सूर्य से

१ आश्वलायन गृह्यसूत्र ३.६

सम्बद्ध हैं।[1] किन्तु इसी पुराण के केदार खण्ड में पुराणों का वर्गीकरण एक अन्य प्रकार से किया गया है। वहाँ कहा गया है कि 'अठारह पुराणों में से दस में शिव का, चार में ब्रह्मा का, दो में विष्णु का तथा दो में देवी का माहात्म्य गान किया गया है।[2] कुछ विद्वानों की सम्मति है कि पद्म तथा वराह पुराण विष्णु से, अग्नि पुराण शिव से, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य तथा वामन पुराण ब्रह्मा से सम्बद्ध हैं। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान् वायु पुराण तथा शिव पुराण को एक ही पुराण मानते हैं। कुछ अन्य विद्वान् वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण को एक ही पुराण मानते हैं। श्री पार्जीटर महोदय को दूसरा मत मान्य है। इसी प्रकार पुराणों की नामावली में परिगणित भागवत पुराण में कुछ लोग श्रीमद्भागवत को ग्रहण करते हैं और कुछ लोग देवीभागवत को। वास्तव में यह एक विवादग्रस्त विषय है कि 'भागवत' नाम से पुराणों की अष्टादश संख्या के अन्तर्गत श्रीमद्भागवत को गिना जाए या देवीभागवत को। इस विषय का युक्तियुक्त विवेचन आगे किया जायगा।

पुराणों का प्रतिपाद्य विषय

उपर्युक्त वर्गीकरण तथा विभिन्न पुराणों के वर्ण्य विषय का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि पुराण किसी धार्मिक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते तथा विभिन्न प्रकार के आचारों का निरूपण करते हुए नैतिक शिक्षा प्रदान करते हैं। पुराणों में विभिन्न देवताओं की उपासना का निरूपण किया गया है और उसी के सामञ्जस्य स्तुति, भक्ति, पूजा, व्रत, उत्सव, तीर्थयात्रादि का वर्णन किया गया है। पुराणों में त्रिमूर्ति के सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से अपनाते हुए त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र) का एकत्व स्वीकार किया गया है।

समस्त पुराण ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का उद्घोष करते हुए उसी को सृष्टि का आदिकारण मानते हैं। अनेक देवता उसी एक ईश्वर की शक्ति हैं। पुराणों में बहुदेव वाद का प्रतिपादन किया गया है। सभी देवताओं को पुराणों में बराबर महत्त्व और शक्ति का आगार समझा गया है। किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि पुराण किसी धार्मिक सम्प्रदाय का प्रतिपादन करने के कारण किसी एक ही विशिष्ट देवता का अत्यन्त प्रतिपादन सम्पूर्ण अस्तुत्येन न करते हैं और उसी देवता की भक्तिमय उपासना का [illegible] हैं। यद्यपि वे सभी देवताओं में पूज्य-बुद्धि का समर्थन करते हैं।

1. [illegible] भविष्यं च द्विजोत्तमाः।
[illegible] वाराहं स्कान्दमेव च।
[illegible] भवनं च मुनीश्वराः।
[illegible] कौर्मं स्कान्दं संज्ञकम्।
[illegible] वैष्णवं तथा [illegible]।
[illegible] पुराणं च गारुडं वैष्णवं विदुः।
[illegible] इत्येते शैवं, [illegible]।
[illegible]।

—स्कन्दपुराण, शिवरहस्य, शम्भव खण्ड।

2. [illegible] शिवः।
[illegible] देवी तथा हरिः॥ स्कन्द पुराण केदार खण्ड

में भी भृगुद्वारा त्रिदेव परीक्षा के उपाख्यान द्वारा विष्णु का ही सर्वोच्चत्व निरूपित किया गया है।[1] पुराणों के पूर्वापर [illegible] से स्पष्ट है कि विशिष्ट विशिष्ट देवताओं की महत्ता का प्रतिपादन पुराणों का लक्ष्य है। पुराणों के नामों से भी इस बात की पुष्टि होती है। किन्तु पुराणों में किसी अन्य देवता की अवहेलना या उसकी उपासना का निषेध भी नहीं किया गया है। अतः ज्ञात होता है कि पौराणिक धर्म बहुदेववादी (Polytheistic) होते हुए भी एक ही ब्रह्म की सर्वव्यापकता का समर्थक (Pantheistic) है। जिस पुराण में जिस देवता की महत्ता और उपासना का प्रतिपादन है उस पुराण में उसी देवता को सृष्टि के आदिकारण ब्रह्म का सर्वोच्चपद दिया गया है।

कालान्तर में जब अर्वाचीन वैदिक देवता कठिन उपासना पद्धतियों के कारण अपने व्यक्तित्व को एक दूसरे में विलीन कर चले तो विभिन्न उपासना पद्धतियों की उपादेयता और मनुष्य के ऐहिकामुष्मिक कल्याण में उनके योगदान के सम्बन्ध में गम्भीर चिन्तन का सूत्रपात हुआ। उपनिषदों में ब्रह्म, जीव और जगत् के सम्बन्ध में विचार कर अनेक समस्याओं को जन्म दिया गया तथा अनेक मनीषियों ने अपने-अपने समाधान भी प्रस्तुत किये। उपनिषद्-साहित्य के अन्तर्गत स्पष्ट स्वीकार किया गया है कि एक ही सर्वोच्च शक्तिमयी सत्ता अपने आपको विभिन्न रूपों में व्यक्त करती है और वही इस समस्त प्रपंच को व्याप्त करके स्थित है।[2] उपनिषदों का यही विचार परवर्ती साहित्य में विकसित और पल्लवित हुआ और पुराणों में उसने अवतारवाद का रूप ग्रहण कर लिया। भगवान् के इन विभिन्न शक्तिमय रूपों में पूज्यबुद्धि का संचार हुआ और इसीसे उस रागात्मक तत्त्व का जन्म हुआ जिसे हम 'भक्ति' के नाम से पुकारते हैं। यद्यपि भक्ति के तत्त्व-बीज खोजने पर वैदिकसाहित्य में भी उपलब्ध हो जाते हैं, किन्तु एक दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में भक्ति का चरम विकास पुराणों में ही हुआ जिसका सर्वोच्च निदर्शन श्रीमद्भागवत पुराण है। अतः हम कह सकते हैं कि पुराणों का प्रधान प्रतिपाद्यविषय भक्ति द्वारा परब्रह्म की प्राप्ति है। यहाँ तक कि श्रीमद्भागवत तो भक्ति को मोक्ष से भी अधिक महत्त्व प्रदान करता है।[3] श्रीमद्भागवत में भक्ति केवल साधन ही नहीं साध्य के रूप में ग्राह्य है।[4]

१ तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः।
भूयांसं श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम्॥
धर्मः साक्षाद्यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम्।
ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद्यशश्चात्ममलापहम्॥ (श्रीमद्० १०. ८६. १५–१६)

२ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत्
ईशावास्योपनिषद् १

३ नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत।
भक्तिं परां भगवति लब्धवान्पुरुषेऽव्यये॥ श्रीमद्भा० १२. १०. ६

४ न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥ श्रीमद्भा० ११. १४. १४

अपनी सर्वांगपूर्णता के कारण श्रीमद्भागवत सबसे अधिक लोकप्रिय हुआ और इसे पुराणों में सर्वश्रेष्ठ कहा गया।[1]

सर्वाधिक व्यापक, प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय पुराण श्रीमद्भागवत—पुराण साहित्य का इतना महत्त्व एवं संक्षिप्त परिचय देने के अनन्तर यह समीचीन प्रतीत होता है कि हम सबसे अधिक विख्यात, व्यापक, लोकप्रिय एवं प्रभविष्णु पुराण श्रीमद्भागवत की ओर विवेचनात्मक दृष्टि प्रक्षेप करें। श्रीमद्भागवत ने मध्यकालीन कृष्ण-भक्ति-साहित्य ही नहीं, समस्त भक्ति साहित्य को—यहाँ तक कि निर्गुण भक्ति, सगुण–राम भक्ति–साहित्य को भी अत्यन्त व्यापक रूप से प्रभावित किया है। हिन्दी भक्ति साहित्य ही नहीं श्रीमद्भागवत ने बँगला, असमिया, उड़िया, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि अन्य भारतीय भाषाओं के भक्ति साहित्य को भी अत्यन्त गम्भीर और व्यापक रूप से प्रभावित किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "भक्ति के नवीन आन्दोलन ने अनेक लौकिक जन-आन्दोलनों को शास्त्र का रास्ता पकड़ा दिया और भागवत पुराण का प्रभाव बहुत व्यापक रूप से पड़ा।"[2] गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीमद्भागवत की भक्ति के आदर्श को स्वीकार कर अपने अमर भक्ति ग्रंथ रामचरितमानस की रचना की। रामचरितमानस में अनेक स्थल श्रीमद्भागवत के छायानुवाद हैं। तात्त्विक दृष्टि से तो श्रीमद्भागवत का बड़ा ही स्पष्ट एवं व्यापक प्रभाव रामचरितमानस पर पड़ा है। प्रस्तुत प्रबन्ध का विवेच्य विषय हिन्दी कृष्णभक्ति साहित्य पर ही श्रीमद्भागवत का प्रभाव निरूपण है, अतः कृष्णभक्तीतर साहित्य की चर्चा प्रकृत नहीं है। श्रीमद्भागवत की प्रभविष्णुता के दिङ्मात्रप्रदर्शन के लिए उक्त चर्चा की गई है।

श्रीमद्भागवत और देवी भागवत—

जब हम वेदव्यास कृत अठारह पुराणों का परिगणन करते हैं तो 'भागवत' नाम से पुराणों में एक ही पुराण गिना जाता है। किन्तु आज लोक में 'भागवत' नाम से दो पुराण प्रसिद्ध हैं, एक श्रीमद्भागवत तथा दूसरा देवीभागवत। अतः व्यास कृत अठारह पुराणों में श्रीमद्- भागवत पुराण सम्मिलित किया जाए, यह एक विचारणीय प्रश्न है। स्कन्द, पद्म तथा कूर्म आदि पुराणों में श्रीमद्भागवत ही अष्टादश पुराणों के अन्तर्गत [illegible] है।[3] स्कन्द पुराण के श्रीमद्भागवत माहात्म्य में आया है कि श्रीमद्भागवत की [illegible] करने के लिये वहाँ अनेक स्थान, तीर्थ, ऋषिमुनि आए थे वहाँ वेद, वेदान्त [illegible] ग्रंथ और विग्रह धारण करके आए थे। अन्यान्य पुराणों के आगमन प्रसंग में वहाँ [illegible] पुराणों की गणना की गई है क्योंकि अठारहवाँ पुराण तो श्रीमद्भागवत ही श्रोतव्य था।[4] इसी पुराण में एक अन्य स्थान पर आया है कि सत्यवतीसुत व्यास को सत्रह पुराण

1. [illegible] यथा [illegible] यथा।
[illegible] यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा। १२।१३।१६
2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० १७
3. [illegible]
[illegible] — स्कन्दपु० श्रीमद्० माहात्म्य।
[illegible]
[illegible] — पद्मपुराण श्रीमद्० माहात्म्य।

संहिता की रचना की।[1]

सर्ग, प्रतिसर्ग आदि पाँच लक्षण तो अल्प पुराणों के लक्षण हैं। महापुराणों में दस लक्षण पाये जाते हैं।[2] श्रीमद्भागवत में सर्ग, विसर्ग, स्थान आदि दस लक्षण हैं। श्रीमद्भागवत में कहा भी गया है—

तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणम्।
प्रोक्तं भगवता प्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत्॥
अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥[3]

पद्म पुराण में कहा गया है कि भागवत में तीनसौ बत्तीस अध्याय हैं।[4] किन्तु श्रीमद्भागवत में तीनसौ पैंतीस अध्याय हैं, अतः श्रीमद्भागवत अठारह पुराणों के अन्तर्गत नहीं है किन्तु श्रीमध्वाचार्य और श्रीवल्लभाचार्य ने अघासुर, वत्सहरण आदि की कथा के तीन अध्याय प्रक्षिप्त माने हैं, अतः श्रीमद्भागवत में तीनसौ बत्तीस ही अध्याय मानकर उन्होंने उसे क्रमकृत अठारह पुराण के अन्तर्गत माना है। किन्तु द्वात्रिंशत् त्रिशतञ्च पद का अर्थ शाकपार्थिव समास से तीन सौ पैंतीस भी हो सकता है, और गोपाल भट्टाचार्य का यही मत है।[5] अतः इसी कारण श्रीमद्भागवत अष्टादशत्व से अपदस्थ नहीं हो सकता।

शाक्त लोगों का मत है कि श्रीमद्भागवत महापुराण नहीं है किन्तु वे लोग भी अठारह पुराणों में परिगणित 'भागवत' नामक पुराण के सम्बन्ध में एक मत नहीं हैं। कुछ लोग कहते हैं कि भगवती (दुर्गा) के जन्म और चरित का वर्णन करने के कारण 'कालिकापुराण' ही भागवत पुराण है। कुछ लोग देवीभागवत पुराण को भागवत-पुराण के नाम से अठारह पुराणों में सम्मिलित करते हैं। प्राचीन निबन्ध-साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि वास्तव में श्रीमद्भागवत पुराण ही अठारह पुराणों के अन्तर्गत परिगणित

१ दशसप्तपुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः
नाप्तवान् मनसा तोषं भारतेनापि भामिनि।
चकार संहितामेतां श्रीमद्भागवतीं पराम्॥

२ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पंच लक्षणम्॥
एतदल्पपुराणानां लक्षणं कथयामि ते।
दशाधिकं लक्षणं च महतां परिकीर्तितम्॥

ब्रह्मवैवर्त पुराण, कृष्णखण्ड चरमाध्याय।

३ श्रीमद्भागवत २. ९. ४३ तथा २. १०. १

४ द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखाः
श्रीमद्भाग० श्रीधर कृत भावार्थदीपिका में उद्धृत। १ १. ७

५ श्रीमद्भागवत टीपनी व्याख्या पृ० २ (वृन्दावन से प्रकाशित सं० १६६०)

है। उड़ीसा के प्रसिद्ध निबन्धकार नरसिंह वाजपेयिन् ने 'लक्ष्मीधर' का मत उद्धृत कर कालिकापुराण का निराकरण किया है।[1]

श्रीमद्भागवत और देवीभागवत के वर्ण्य-विषय को देखने से भी यही पता चलता है कि श्रीमद्भागवत ही अठारह पुराणों के अन्तर्गत है। श्रीमद्भागवत में कहीं देवीभागवत की चर्चा नहीं है और न पुराण गणना में कहीं भी उसके साथ प्रतिद्वन्द्विता का भाव ही व्यक्त है, किन्तु इसके विपरीत देवीभागवत में श्रीमद्भागवत का स्पष्ट उल्लेख करते हुए उसे उपपुराणों में लिया गया है और देवीभागवत को महापुराणों में।[2]

अलबेरूनी (१०३० ई०) ने अपने भारत-वर्णन में पुराण-सूची में 'वासुदेव-भागवत' का नामोल्लेख किया है। 'भागवत' के 'वासुदेव' विशेषण से स्पष्ट हो जाता है कि अलबेरूनी का तात्पर्य श्रीमद्भागवत से ही है क्योंकि इसमें वासुदेव श्रीकृष्ण का ही आद्योपान्त माहात्म्य विद्यमान है और 'वासुदेव' शब्द 'वैष्णव' का समानार्थक भी है।[3]

मत्स्यपुराण में भागवत का लक्षण इस प्रकार दिया गया है कि "जिस पुराण में गायत्री को अधिकृत कर धर्म का सविस्तर वर्णन है, जो वृत्रासुर के वध-वर्णन से युक्त है, जिसमें सारस्वत-कल्प के नर-श्रेष्ठों का वृत्त है, उस पुराण को लोक में 'भागवत' कहा जाता है।[4] किन्तु वर्तमान श्रीमद्भागवत पुराण में ये लक्षण कुछ घटित होते हैं कुछ नहीं। श्रीमद्भागवत के आद्यन्त में गायत्रीपद 'धीमहि' प्रयुक्त हुआ है[5] और वृत्रवध भी इसमें वर्णित है[6] किन्तु इसमें सारस्वतकल्प के स्थान पर पाद्मकल्प का उल्लेख है।[7] इससे अनुमान होता है कि भागवत का एक प्राचीन रूप रहा होगा जिसमें से कुछ अंश वर्तमान श्रीमद्भागवत में सुरक्षित रह गया है। कुछ पुराणों में इसी प्राचीन भागवत का उल्लेख है।[8]

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि अठारह पुराणों में श्रीमद्भागवत

---

१. [illegible]
[illegible]
[illegible] नित्याचार प्रदीप
[illegible] भाग १ पृ० ५२२, १९२८-३६ ई०)
२. [illegible]
३. [illegible] Alberuni's India P 131
४. [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
मत्स्यपुराण (बंगवासी संस्क० ५३. २०-२१)
५. [illegible]
६. [illegible]
७. [illegible]
८. [illegible] कूर्मपुराण [illegible]

देवीभागवत पुराण में अधिक प्राचीनता एवं महत्त्व प्रमाणित करती है।

श्रीमद्भागवत का रचनाकाल श्रीमद्भागवत की अतिशय लोकप्रियता एवं प्रसिद्धि ने इसके रचनाकाल के अनुसंधान की ओर अनेक देशी और विदेशी विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है। श्रद्धालु हिन्दुओं और वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टिकोण सम्पन्न अनुसन्धाताओं के मत में हजारों वर्षों का अन्तर है। श्रद्धालु पौराणिक हिन्दू श्रीमद्भागवत को महाभारत के तुरन्त बाद की रचना मानते हुए इसे लगभग पाँच हजार वर्ष पुराना ग्रंथ मानते हैं[1] और अधिकतर आधुनिक विद्वानों का मत है कि यह एक अत्यन्त परवर्ती रचना है जो ९ वीं शताब्दी ईसवी से अधिक पहले की नहीं है।[2] कुछ विद्वान् श्रीमद्भागवत को १३ वीं शताब्दी की रचना मानते हैं। इनमें विल्सन, मेकडॉनल्ड, कोलब्रुक तथा बर्नाफ उल्लेखनीय हैं। इनके भ्रान्तमतों का निराकरण हो चुका है।[3] बल्लालसेन (१०५० ई०) ने अपने ग्रंथ 'दानसागर' (इण्डिया ऑफिस, एम०एस० फोल ३९७) में एक भागवत पुराण का उल्लेख किया है। उनकी स्थापना है कि 'मैंने भागवत से इसलिए कोई उद्धरण ग्रहण नहीं किया कि उसमें 'दान' विषय पर कोई प्रकरण नहीं है।

"भागवतं च पुराणं ब्रह्माण्डं चैव नारदीयं च।
दानविधिशून्यमेतत्त्रय इह न निबद्धमवधार्य॥"

वास्तव में वर्तमान श्रीमद्भागवत में दान विषय पर कोई प्रकरण है भी नहीं। हाँ, देवीभागवत में इस विषय पर नवमस्कन्ध का उन्नीसवाँ अध्याय है। अतः बल्लालसेन का तात्पर्य उक्त श्लोक में शाक्त देवीभागवत से न होकर वैष्णव श्रीमद्भागवत से है। उन्होंने स्पष्ट नामोल्लेखपूर्वक 'कालिकापुराण' के कई श्लोक अपने ग्रंथ 'दानसागर' में उद्धृत किये हैं।[4] बल्लालसेन के कथन से जहाँ एक ओर श्रीमद्भागवत का अठारह पुराणों में परिगणित भागवतत्व सिद्ध होता है वहाँ उसके रचनाकाल की उत्तर-सीमा का अवधारण भी हो जाता है। पहले कहा जा चुका है कि अधिकतर विद्वान् इसे ९०० ई० से परवर्ती नहीं मानते। सम्भावना इससे भी पूर्ववर्ती होने की ही है। सर इलियट आर्थर रोज लिखते हैं—

---

१ श्री अखण्डानन्द सरस्वती का लेख 'श्रीमद्भागवत का रचनाकाल' कल्याण: भागवताङ्क पृ० २६

२ (अ) श्री सी० वी० वैद्य का लेख—जर्नल ऑव बॉम्बे ब्रांच ऑव रायल एशियाटिक सोसाइटी १९२८ ई०, पृ० १६४

(आ) भण्डारकर—वैष्णविज्म, शैविज्म एंड माइनर रिलीजस सिस्टम्स पृ० ४९

(इ) पार्जीटर—ऐंशियण्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन पृ० ८०

(ई) फर्कुहर—आउटलाइन्स ऑव दी रिलीजस लिट्रेचर ऑव इंडिया पृ० २३१

(उ) विंटरनित्ज—इंडियन लिट्रेचर—जिल्द १ पृ० ५५६

३ श्री आर० सी० हज्रा—न्यू इंडियन एंटिक्वेरी १९३८-३९ भाग १ पृ० ५२२

४ वही, पृ० ५२४

"Hindus are by no means in accord as to its age or authorship, but as Alberuni mentions it, it can hardly have been written after 900 A. D. and must be due to a community of singers in the Tamil Country."[१]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है 'पुराण' अपने मूलरूप में काफी प्राचीनकाल से विद्यमान थे किन्तु शंकराचार्य (८०२ ई०) के समय उन्हें प्रमाणकोटि में माना जाने लगा था। रामानुजाचार्य (११३० ई०) के समय में पुराणों की भारी मान्यता हो गई थी। शंकराचार्य और रामानुजाचार्य ने अपने दार्शनिक ग्रंथों में विष्णुपुराण के अंश प्रमाण रूपमें उद्धृत किये हैं। विद्वानों का मत है कि श्रीरामानुजाचार्य श्रीमद्भागवत से अपरिचित न थे।[२] बेलवलकर आदि कतिपय आधुनिक विद्वान् गोविन्दाष्टक को शंकराचार्य की प्रामाणिक कृति मानते हैं और श्री जीवगोस्वामी (१६वीं शताब्दी ई०) का भी यही मत है। गोविन्दाष्टक के आधार पर तो यहाँ तक कहा जा सकता है कि शंकराचार्य भी श्रीमद्भागवत से परिचित थे।[३] श्रीमद्भागवत में बलराम की तीर्थयात्रा का वर्णन है।[४] किन्तु जहाँ उसमें पृथूदक, [illegible] आदि अनेक छोटे-छोटे तीर्थों का उल्लेख है, वहाँ जगन्नाथपुरी जैसे प्रमुख तीर्थ की चर्चा ही नहीं है। किन्तु शंकराचार्य ने पुरी में अपना मठ स्थापित किया था। अतः सहज ही अनुमान होता है कि श्रीमद्भागवत की रचना पुरी की स्थापना से बहुत पूर्व हो चुकी थी।

श्रीमद्भागवत में तमिल वैष्णवों का उल्लेख है[५] तथा हूण, पुलिन्द, पुल्कस, यवनादि विदेशियों के वैष्णव मत स्वीकार कर लेने का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा
आभीरकंका यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः।[६]

तथा—

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमाया
स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः।[७]

भारतवर्ष के प्राचीन राजनीतिक इतिहास से विदित होता है कि भारत पर हूणों के [illegible] आक्रमण ४५० ई० से प्रारम्भ हो गये थे।[८] अतः श्रीमद्भागवत का रचनाकाल [illegible] पश्चात् ही मानना समीचीन है।

१ [illegible] रिलिजन [illegible] भाग १२, पृ० १६[illegible]
२ [illegible] दि भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट १४, १९३२-३३, पृ० १८६
३ [illegible] १९६८ ई० पृ० २२३
४ [illegible] १७-२० तथा अध्याय ७९
५ [illegible] ११.५.३८-४०
६ [illegible] २.४.१८
७ [illegible] २.७.४६
८ [illegible] की पुरानी सभ्यता (डॉ० बेनीप्रसाद) द्वि० संस्क० पृ० २९०

वर्णित है। इस प्रकार महाभारत के उपरान्त रचित महाभारत के परिशिष्ट रूप हरिवंश पुराण में भी श्रीकृष्ण-चरित सांगोपांग वर्णित है। इसका रचनाकाल लगभग ४०० ई० है। श्रीमद्भागवत अवश्य ही हरिवंश पुराण के बाद की रचना है क्योंकि इसमें श्रीकृष्ण चरित्र का गौरव एवं विस्तार से वर्णित है। श्रीकृष्ण-चरित के इतने विकास और विस्तार में अवश्य ही एक या दो शताब्दियों का समय लगा होगा। अतः श्रीमद्भागवत को हम छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध (लगभग ५५० ई०) की रचना मान सकते हैं। यही तिथि इसके रचना काल की पूर्व सीमा का अवधारण करती है। यह भी सहज ही अनुमेय है कि जिस प्रकार अन्य पुराणों में से कुछ अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी कालान्तर में प्रक्षिप्त हो गए उसी प्रकार श्रीमद्भागवत में भी वर्तमान रूप तक पहुँचने में कुछ परिवर्धन अवश्य हुआ होगा।

श्रीमद्भागवत के रचयिता —

भारतीय परम्परा वेदव्यास को श्रीमद्भागवत का रचयिता मानती है। सभी पुराणों के रचयिता वेदव्यास हैं।[1] व्यास के नाम के साथ तीन भिन्न अभिधान जुड़े हुए हैं— (१) वेदव्यास, (२) बादरायण व्यास तथा (३) कृष्णद्वैपायन व्यास। कुछ विद्वान् इन तीनों को अलग-अलग व्यक्ति मानते हैं किन्तु अधिकतर लोग तीनों को एक ही व्यक्ति मानते हैं। प्राचीन भारतीय परम्परा में सर्वदा निर्विकल्प भाव से तीनों को एक ही व्यक्ति माना गया है और उन्हीं को महाभारत, ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भागवत आदि अठारह पुराणों का कर्ता माना गया है। श्रीमद्भागवत के रचयिता के रूप में हमें तीनों नाम एक ही व्यक्ति के लिए प्रयुक्त मिलते हैं—यथा

१—वेदव्यास—

मरीचे शृणु वक्ष्यामि वेदव्यासेन यत्कृतम्।
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं वेद सम्मितम्॥[2]

२—बादरायण व्यास—

स वै मह्यं महाराज भगवान्बादरायणः।
इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेद सम्मिताम्॥[3]

३ कृष्णद्वैपायन व्यास—

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
अधीतवान्द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम्॥

---

१ वेदव्यासस्तु धर्मात्मा वेदशास्त्रविशारद् कुरू।
प्रोक्तवान्सर्वधर्माणि पुराणेषु महीपते॥ बृहन्नारदीयपुराण ९. १०५

२ नारदीय पुराण से भागवततत्त्व विमर्श में उद्धृत।

३ श्रीमद्भाग० १२. ४. ४१

तथा—

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुण्ठमेधसे।
यत्पादाम्बुरुहध्यानात्संहितामध्यगामिमाम्।[1]

तथा

वेदेषु श्रीमद्भागवताख्यः शास्त्रचूडामणिः। × × तत्—
प्रणेता प्रथमत एवाचार्यचूडामणिः श्रीकृष्णद्वैपायनः।[2]

पुराणों के रचयिता वेदव्यास को केवल 'व्यास' भी कहा गया है और 'सत्यवतीसुत' नाम से भी पुराणों में बहुमान के साथ उनका उल्लेख है—यथा—

मितद्रुत्वादिह वृत्तीनां मनुष्याणां हिताय च।
परीक्षिच्छुकसंवादो योऽसौ व्यासेन वर्णितः॥८॥
ग्रंथोऽष्टादशसाहस्रः सोऽसौ भागवताभिधः।
कलिग्राहगृहीतानां स एव परमाश्रयः॥९॥[3]

सत्यवती सुत—

अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
नाप्तवान् मनसा तोषं भारतेनापि भामिनि॥
चकार संहितामेतां श्रीमद्भागवतीं पराम्॥[4]

तथा—

एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्मकर्म च।
भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन्व्यासः सत्यवतीसुतः॥[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीमद्भागवत को वेदव्यास की ही रचना माना गया है। कुछ लोगों का कहना है कि श्रीमद्भागवत बोपदेव (तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विद्यमान) की रचना है। किन्तु यह मत सर्वथा भ्रमपूर्ण है। बोपदेव से पूर्व ही आनन्द-तीर्थ (मध्वाचार्य) ने श्रीमद्भागवत के धार्मिक एवं दार्शनिक महत्त्व पर एक ग्रंथ 'भागवत तात्पर्य निर्णयः' लिखा है।[6] मध्वाचार्य का स्थितिकाल तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। यदि मध्वाचार्य बोपदेव के समकालीन भी रहे हों तब भी विद्वानों में प्रसिद्ध इस श्लोक से श्रीमद्भागवत के बोपदेवकृत होने का खण्डन होता है—

बोपदेव कृतार्थे च बोपदेवपुरातनैः।
अस्य टीका. कृताः सम्यग्हनुमच्चित्सुखादिभिः।

अर्थात् श्रीमद्भागवत को बोपदेव कृत मानने पर बोपदेव से पूर्व हुए हनुमान् और

---

1. श्रीमद्भागवत० १. १. ८, तथा १२. १. ३।
2. श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत—श्रीमद्भागवतसारार्थदर्शिनी टीका, १. १. १
3. स्कन्दपुराण २ वैष्णवखंड श्रीमद्भागवत माहात्म्य अध्याय ४, श्लोक ८, ९
4. पद्मपुराण।
5. श्रीमद्भागवत० १. ६. १
6. श्री टी० आर० कृष्णाचार्य द्वारा सम्पादित 'सर्वमूलम्' में संगृहीत (बम्बई)

के मूलपाठ आदि की समस्याएँ मध्वाचार्य के समय में ही उठ खड़ी हुई थीं।[2] अनुमान होता है कि तेरहवीं शताब्दी में साम्प्रदायिकता के कारण श्रीमद्भागवत को अपने प्राचीनत्व से अपदस्थ करने के लिए उसे तत्कालीन पंडित बोपदेव की कृति बताया गया। किन्तु वास्तव में पंडित बोपदेव ने लगभग ८०० श्लोकों में श्रीमद्भागवत का दार्शनिक विवेचन करते हुए 'भागवतमुक्ताफल' नाम का एक ग्रंथ लिखा था। इस ग्रंथ को केवल 'मुक्ताफल' भी कहा जाता है। इसमें उन्नीस अध्याय हैं। इस ग्रंथ पर हेमाद्रि (जो बोपदेव के समकालीन थे) की एक टीका भी है जिसका नाम 'कैवल्यदीपिका' है।[3]

बोपदेव का दूसरा प्रसिद्ध ग्रंथ है 'हरिलीला'। इस ग्रंथ में एक सौ तिरेसठ श्लोकों में श्रीमद्भागवत की अनुक्रमणिका लिखी गई है। हरिलीला पर भी हेमाद्रि ने 'विवेक' नामक टीका लिखी है। हरिलीला के मूलपाठ का आरम्भ इस श्लोक से होता है—

श्रीमद्भागवतस्कन्धाध्यायार्थादि निरूप्यते ।
विदुषा बोपदेवेन मन्त्रिहेमाद्रितुष्टये ॥

हेमाद्रि ने अपनी टीका का आरम्भ यों किया है—

नमः कृष्णाय नित्यैकसच्चिदानन्दमूर्तये ।
जगत्सर्गविसर्गादि साक्षिणेऽनन्तशक्तये ॥१॥

जयन्ति बोपदेवस्य वाचो विबुधसंमता ।
घनसारोज्ज्वलाभासः क्षीरोदस्येव वीचयः ॥२॥

श्रीमद्भागवतस्यानुक्रमणी तद्विनिर्मिता ।
हरिलीलाभिधानेयं यथाबुद्धि विविच्यते ॥३॥[4]

इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी के हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथों की सूची में 'हरिलीला' की एक अन्य प्रति का उल्लेख है जिसमें एकसौ सत्तर श्लोक हैं। इस ग्रंथ के अन्त में जो श्लोक हैं उनसे तो स्पष्ट ही हो जाता है कि बोपदेव श्रीमद्भागवत के कर्त्ता नहीं हैं, प्रत्युत केवल प्रसिद्ध श्रीमद्भागवत पुराण की अनुक्रमणिका लिख रहे हैं—

---

१ काशी के गवर्नमेंट संस्कृत कॉलिज के पुस्तकालय में श्रीमद्भागवत की एक अत्यन्त प्राचीन हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। म० म० कविराज गोपीनाथ जी का मत है कि यह प्रति बोपदेव के जन्म से भी पूर्व १२ वीं शताब्दी की है। (देखिये कल्याण भागवतांक में उक्त प्रति के पृष्ठ चित्र एवं कविराज का लेख पृ० ५८)

२ न्यू इंडियन एंटिक्वेरी भाग १, १९३८-३९, पृ० ५२५

३ Descriptive Catalogue of the Sanskrit and Prakrit Mss in the Library of the University of Bombay 1944, Book I vol I and II, *parts I to III* No 1303,

४ उपर्युक्त पुस्तक सूची क्रमांक १३०४

इति भागवतस्यानुक्रमणीरमणी कृता ।
विदुषा बोपदेवेन विद्वत्केशवसूनुना ॥१७६॥
हरिर्लीलेति नाम्नेदं हरिभक्तैर्विलोकिता ।
यस्याः विलोकनादेव हरौ भक्तिर्विवर्धते ॥१७७॥[1]

उपर्युक्त कथन में स्वयं बोपदेव अपने श्रीमद्भागवत के कर्ता होने का प्रतिवाद कर रहे हैं, फिर भी आश्चर्य है कि बोपदेव को श्रीमद्भागवत का रचयिता मानने का प्रवाद चल पड़ा !

पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि श्रीमद्भागवत की रचना नवीं शताब्दी में तामिल प्रान्त के भक्तों ने की है। सर [illegible] ने लिखा है × × It (श्रीमद्भागवत) Can hardly have been written after 900 A.D. and must be due to a Community of singers in the Tamil Country.[2]

वेदव्यास का ऐतिहासिक व्यक्तित्व अनिर्णीत होने के कारण पुराणों के कर्त्ता का निःसंदिग्ध निश्चय करना एक जटिल समस्या है। स्वयं श्रीमद्भागवत एकाधिक व्यासों का उल्लेख करता है। कुछ विद्वानों का मत है कि व्यास एक व्यक्तित्व नहीं अपितु एक परम्परा है। प्राचीन काल से ही व्यासपीठ पर बैठकर कथा प्रवचन करने वाले को व्यास नाम से अभिहित किया जाता रहा है। किन्तु भारतीय पौराणिक परम्परा बताती है कि वेद व्यास ने वेदों का विभाग किया, पुराण संहिता का निर्माण किया, वेदों का अर्थ निर्णय करने के लिए ब्रह्मसूत्रों का निर्माण किया और ब्रह्मसूत्र के भाष्य रूप में उन्होंने श्रीमद्भागवत की रचना की —

वेदांश्च प्रविभज्य स्वशिष्येभ्यः प्रदाय च ।
इतिहासं तदन्तस्थं समुद्धृत्य मनीषया ।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ।
तदर्थानां निर्णयाय ब्रह्मसूत्रमकल्पयत् ॥
तद्भाष्यरूपं पुराणं भागवतं च विदुर्बुधाः ॥[3]

एक स्थान पर श्रीमद्भागवत को श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री सार्वभौम भट्टाचार्य तथा प्रकाशानन्द सरस्वती के प्रति ब्रह्मसूत्र का 'अकृत्रिम भाष्य' बताया है और श्रीमद्भागवत को स्वयं सूत्रकार बादरायण व्यास की रचना स्वीकार किया है।[4] बादरायण व्यास के ब्रह्मसूत्र 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' सूत्र से प्रारम्भ होते हैं और श्रीमद्भागवत का प्रारम्भ 'जन्माद्यस्य यतः' से

1. Catalogue of the Sanskrit and Prakrit in the Library of the India office. vol II Part II by A. B. Keith. पुस्तकांक-३३
2. Encyclopaedia Britannica IV Edition vol XII page 162
3. [illegible] ११. २९. २८
4. गरुडपुराण (स्कन्द प्रकरण)
5. श्रीभागवतसन्दर्भ की भूमिका पृ० २०,
(प्रकाशित-बालकृष्ण शुद्धाद्वैत महासभा सूरत १९४१)

एक अन्य स्थान पर श्रीमद्भागवत को व्यास ने स्वयं ब्रह्मसूत्रों का अर्थ, महाभारत का तात्पर्यनिर्णायक तथा गायत्री का भाष्य बताया है

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः ।
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ श्रीमद्भागवताभिधः ।।[1]

विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों में—जिनमें रामानुज, निम्बार्क, मध्व, चैतन्य तथा वल्लभ-सम्प्रदाय उल्लेखनीय हैं, निर्विकल्प रूप से व्यास को ही श्रीमद्भागवत का रचयिता माना गया है। इन सम्प्रदायों में वेदव्यास, व्यास, कृष्णद्वैपायनव्यास तथा बादरायण व्यास सभी को एक ही व्यक्ति माना गया है।

एक ही कर्ता की रचना—

श्रीमद्भागवत एक ही व्यक्ति की रचना होने के लक्षणों से युक्त है। इसकी सुश्रृङ्खलित शैली एवं संगठित रचना-विधान को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है। सारे ग्रंथ में पूर्वापर सम्बन्ध बना हुआ है। उदाहरणार्थ तृतीयस्कन्ध अध्याय बारह में वर्णित परमाणु से लेकर परार्द्ध पर्यन्तकाल और चारों युगों के प्रमाण का हवाला द्वादशस्कन्ध के चौथे अध्याय में दिया गया है[2] तथा विष्णुपार्षद जयविजय के बारम्बार जन्म का वृत्तान्त जो तृतीय स्कन्ध अध्याय १५, १६, १७ में वर्णित हुआ है, उसका हवाला दशमस्कन्ध अध्याय चौहत्तर में दिया गया है।[3] इस प्रकार के पूर्वापर प्रसंगों की संगति अन्य स्कन्धों में भी है।[4] यदि हम ब्रह्मसूत्रों के कर्ता और श्रीमद्भागवत के कर्ता बादरायण व्यास को एक ही व्यक्ति मानें, जैसा कि श्री चैतन्य महाप्रभु का भी मत है तो हमें पता चलेगा कि ब्रह्मसूत्रों की भाषा और श्रीमद्भागवत की भाषा में बहुत साम्य है। ब्रह्मसूत्रों के अनेक सूत्र श्रीमद्भागवत में ज्यों के त्यों मिलते हैं।[5] इससे भी श्रीमद्भागवत के एक ही कर्ता की कृति होने का प्रमाण मिलता है।

श्रीमद्भागवत का आकारप्रकार एवं वर्ण्यविषय

श्रीमद्भागवत वर्तमानकाल में जिस रूप में प्राप्त है, उसका वह रूप भी पर्याप्त प्राचीन है और तेरहवीं शताब्दी से वह अपने वर्तमान रूप में आचुका था इस बात की पुष्टि

---

1 गरुडपुराण—से उपर्युक्त तत्त्वविमर्श पृ० १० पर उद्धृत।

2 कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्धावधिर्नृप ।
कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ श्रीमद्भाग० १२. ४. १

3 वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहु विस्तरम् ।
वैकुण्ठवासिनोर्जन्म विप्रशापात्पुनः पुनः ॥ श्रीमद्भाग० १० ७४ ४०

4 श्रीमद्भागवत षष्ठ स्कन्ध प्रथम अध्याय श्लोक १–४ तथा द्वादश स्कन्ध अ० १ श्लोक २

5 ब्रह्मसूत्र का "जन्माद्यस्य यतः" सूत्र तथा श्रीमद्भाग० का प्रथम श्लोक
जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतः—

श्रीमद्भागवत की नारदीय पुराण में दी हुई विषयानुक्रमणी
तात्पर्यनिर्णय' तथा श्री श्रीधर स्वामी की श्रीमद्भागवत
स्पष्टतया हो जाती है। तेरहवीं शती में वोपदेव पंडित ने 'हरि
श्रीमद्भागवत की जो अनुक्रमणिका दी है वह भी वर्तमान श्री
सूची के अनुसार ही है। अतः हमारे आलोच्य काल में श्रीमद्

---

१. तत्र तु प्रथमे स्कन्धे सूतर्षीणां समागमः।
व्यासस्य चरितं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च॥१॥
पारीक्षितमुपाख्यानमितीदं समुदाहृतम्।
परीक्षिच्छुकसंवादे सृतिद्वयनिरूपणम्॥२॥
ब्रह्मनारदसंवादेऽवतारचरितामृतम्।
पुराणलक्षणं चैव सृष्टिकारणसम्भवः॥३॥
द्वितीयोऽयं समुदितः स्कन्धो व्यासेन धीमता।
चरितं विदुरस्याथ मैत्रेयेणास्य संगमः॥४॥
सृष्टिप्रकरणं पश्चाद् ब्रह्मणः परमात्मनः।
कापिलं सांख्यमप्यत्र तृतीयोऽयमुदाहृतः॥५॥
सत्याश्चरितमादौ तु ध्रुवस्य चरितं ततः।
पृथोः पुण्यतमाख्याने ततः प्राचीनबर्हिषः॥६॥
इत्येष तुर्यो गदितो विसर्गस्कन्ध उत्तमः।
प्रियव्रतस्य चरितं तद्वंश्यानां च पुण्यदम्॥७॥
ब्रह्माण्डान्तर्गतानां च लोकानां वर्णनं ततः।
नरकस्थितिरित्येष संस्थाने पंचमो मतः॥८॥
अजामिलस्य चरितं दक्षसृष्टिनिरूपणम्।
वृत्राख्यानं ततः पश्चान्मरुतां जन्म पुण्यदम्॥९॥
षष्ठोऽयमुदितः स्कन्धो व्यासेन परिपोषणे।
प्रह्लादचरितं पुण्यं वर्णाश्रमनिरूपणम्॥१०॥
सप्तमो गदितो वत्स वासनाकर्मकीर्तने।
गजेन्द्रमोक्षणाख्यानं मन्वन्तरनिरूपणम्॥११॥
समुद्रमथनं चैव बलिवैभवबन्धनम्।
मत्स्यावतारचरितमष्टमोऽयं प्रकीर्तितः॥१२॥
सूर्यवंशसमाख्यानं सोमवंशनिरूपणम्।
वंश्यानुचरिते प्रोक्तो नवमोऽयं महामते॥१३॥
कृष्णस्य बालचरितं कौमारं च व्रजस्थितिः।
कैशोरं मथुरास्थानं यौवनं द्वारकास्थितिः॥१४॥
भूभारहरणं चात्र निरोधे दशमः स्मृतः।
नारदेन तु संवादो वसुदेवस्य कीर्तितः॥१५॥
यदोश्च दत्तात्रेयेण श्रीकृष्णेनोद्धवस्य च।
यादवानां मिथोऽन्तश्च मुक्तावेकादशः स्मृतः॥१६॥
भविष्यकलिनिर्देशो मोक्षो राज्ञः परीक्षितः।
वेदशाखाप्रणयनं मार्कण्डेयतपः स्मृतम्॥१७॥
सौरीविभूतिरुदिता सात्वती च ततः परम्।
पुराणसंख्याकथनमाश्रये द्वादशो ह्ययम्॥१८॥
इत्येवं कथितं वत्स श्रीमद्भागवतं तव।

(नारदीय पुराण से भागवत

एवं श्लोकसंख्या आदि का विवरण आवश्यक है।

श्रीमद्भागवत बारह स्कन्धों में विभाजित है। इसका दशमस्कन्ध सबसे बड़ा है और उसके पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध दो भाग हैं। श्रीकृष्ण के लीलागान की दृष्टि से दशमस्कन्ध ही सबसे महत्त्वपूर्ण है और परवर्ती भक्ति साहित्य पर सबसे अधिक प्रभाव इसी का पड़ा है। शेष ग्यारह स्कन्धों में ज्ञान, भक्ति, वैराग्य के विशेष विवेचन के अतिरिक्त अनेक पौराणिक विषयों का वर्णन है। श्रीमद्भागवत की अध्यायसंख्या के विषय में प्राचीन आचार्यों एवं टीकाकारों में मतभेद है। कुछ आचार्य इसमें तीनसौबत्तीस अध्याय ही मानते हैं और दशमस्कन्ध के वत्सापहरणादि (अध्याय १२, १३, १४) तीन अध्यायों को प्रक्षिप्त मानते हैं। तीनसौबत्तीस अध्याय मानने वाले आचार्य 'द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखाः' वाले श्लोक को आधार मानते हैं किन्तु इस श्लोक का अर्थ 'तीनसौपैंतीस' परक भी निकलता है—समासविग्रह से यह स्पष्ट हो जाता—'द्वाभ्यामधिका त्रिंशत् द्वात्रिंशत्। शतं च शतं च शतं च शतानि। द्वात्रिंशच्च त्रयश्च शतानि च तेषां समाहारः द्वात्रिंशत्त्रिशतम् पंचत्रिंशदधिकशतत्रयम् वा।' श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार महामहोपाध्याय गोपाल भट्टाचार्य ने इसमें शाकपार्थिवादि समास मानते हुए श्रीमद्भागवत में तीन सौ पैंतीस ही अध्याय स्वीकृत किए हैं।[1] श्री बोपदेव ने अपनी हरिलीला में श्रीमद्भागवत के उक्त तीनों अध्यायों को उसकी अनुक्रमणिका में सम्मिलित किया है।[2] स्वयं श्रीधर स्वामी ने उक्त तीनों अध्यायों की व्याख्या की है। अतः श्रीमद्भागवत में तीनसौपैंतीस अध्याय मानने वाले आचार्य टीकाकारों का मत ही प्रबल है और यही समीचीन भी प्रतीत होता है।

श्रीमद्भागवत की श्लोकसंख्या अठारह हजार है। श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों में भी यही संख्या दी हुई है।[3] श्रीमद्भागवत के सम्पूर्ण अनुष्टुबादि श्लोकों में 'उवाच' तथा गद्यभागों के बत्तीस-बत्तीस अक्षर गिनकर अनुष्टुप् श्लोक बनाकर जोड़ने से ही यह संख्या पूर्ण होती है।

श्रीमद्भागवत का स्कन्धानुसार वर्ण्यविषय

प्रथम स्कन्ध—श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध में उन्नीस अध्याय हैं। आरम्भ में अन्य अनेक पौराणिक आख्यानों के समान श्रीमद्भागवत में भी नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों का पुराणज्ञ सूत से भागवत-श्रवण के लिए आग्रह है। सूत द्वारा भागवतकथा और भगवद्भक्ति का माहात्म्य, भगवदवतारवर्णन तथा महर्षि व्यास के मनःक्लेश का वर्णन किया गया है कि निष्कपट भाव से ब्रह्मचर्यादि व्रतों का पालन एवं महाभारत इतिहास लेखन के मिष से वेदों का भाष्य कर देने पर भी उनका हृदय भगवद् गुणगान न करने के

---

1 वृन्दावन से प्रकाशित अष्ट टीका सवलित श्रीमद्भागवत पृ० ३, वि० १९६०

2 कथाश्च वत्सबकधेनुकभल्लुकेन्द्रैः।
वत्सचौरस्तव मोहो ब्रह्मणः स्तवनं हरेः॥ — हरिलीला, दशमस्कन्ध वर्णन प्रकरण, श्लोक ११

3 तदष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते॥ — श्रीमद्भाग० १२, १३, ६

कारण असन्तुष्ट और अस्वस्थ था। सूत ने शौनकादि को नारद और व्यास का संवाद सुनाया, जिसमें नारद ने व्यास को भगवद्यश वर्णन का माहात्म्य और अपने भक्त रूप का वृत्तान्त सुनाया था, नारद के उपदेश से व्यास ने भागवत का निर्माण कर उसे अपने निवृत्ति परायण पुत्र शुकदेव को पढ़ाया, शौनक ने इसके उपरान्त श्रीमद्भागवत के प्रमुख श्रोता परीक्षित् के जन्म, महाभारत युद्ध के अनन्तर का इतिहास तथा परीक्षित् को शृंगी ऋषि के कलक-कथन शाप का वर्णन किया, परीक्षित् आमरण अनशन व्रत लेकर गंगातट पर उपस्थित थे कि उन्हें श्रीमद्भागवत का उपदेश करने के लिए शुकदेव का अकस्मात् आगमन हुआ।

द्वितीय स्कन्ध—द्वितीय स्कन्ध में दस अध्याय हैं। शुकदेव ने परीक्षित को ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति प्रधान श्रीमद्भागवत महापुराण सुनाने का उपक्रम किया, ईश्वर के विराट् स्वरूप, क्रममुक्ति तथा सद्योमुक्ति का वर्णन कर शुकदेव ने भगवद्भक्ति के प्राधान्य का निरूपण किया, भगवान् के विराट् रूप से जगत् की उत्पत्ति, भगवान् की विराट विभूतियों और भगवान् के लीलावतारों का वर्णन कर शुकदेव ने परीक्षित् को भगवान् विष्णु का ब्रह्मा को चतुःश्लोकी भागवत का ज्ञान देने का आख्यान सुनाया, अन्त में शुकदेव ने परीक्षित् को भागवत के सर्ग विसर्गादि दस लक्षण समझाकर प्राकृत सर्ग का रहस्य समझाया।

तृतीय स्कन्ध—तृतीय स्कन्ध में तैंतीस अध्याय हैं। शौनकादि ऋषियों ने सूत से प्रश्न किया था कि निवृत्ति मार्ग के पथिक विदुर ने मैत्रेय ऋषि से जो अध्यात्म चर्चा की थी, वह सुनाइए। सूत ने उत्तर दिया कि परीक्षित् ने भी शुकदेव से यही प्रश्न किया था और शुकदेव ने परीक्षित् को विदुर तथा मैत्रेय का संवाद सुनाया था, महाभारत युद्ध के पश्चात् विदुर विरक्त होकर हस्तिनापुर से चले आए और अनेक तीर्थों में विचरण करते हुए [illegible] उद्धव से मिले। उद्धव ने उन्हें भगवल्लीला सुनाई। इसके उपरान्त विदुर [illegible] मैत्रेय ऋषि से मिले, मैत्रेय से उन्होंने इन विषय का वर्णन सुना—[illegible] दशविधि सृष्टि, मन्वन्तरादि काल विभाग, सृष्टि विस्तार, वाराह अवतार की कथा, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु की कथा, देवहूति और कपिल का संवाद। कपिल ने [illegible] प्रकृति के अभिव्यक्तिरूप महदादि तत्त्वों की उत्पत्ति प्रकृति पुरुष के विवेक से [illegible] अष्टांगयोग की विधि धूममार्ग और अर्चिरादि मार्ग से जाने वाले [illegible] उत्कृष्टता का वर्णन किया।

चतुर्थ स्कन्ध—चतुर्थ स्कन्ध में इकतीस अध्याय हैं। इस स्कन्ध में भी विदुर और मैत्रेय [illegible] संवाद है। मैत्रेय ने विदुर के प्रति इन विषयों का वर्णन किया है—स्वायम्भुव मनु की कन्याओं के वंश का वर्णन, दक्षयज्ञ का विध्वंस, ध्रुव का उपाख्यान, राजा वेन की कथा, राजा पृथु का आविर्भाव और उनके द्वारा पृथिवी-दोहन आदि अनेक चरित। 'कर्मों [illegible] से आत्यन्तिक कल्याण की आशा नहीं की जा सकती। जीव का कल्याण [illegible] से ही हो सकता है।' इस आध्यात्मिक तत्त्व का निरूपण करने के लिए मैत्रेय [illegible] उपाख्यान विदुर को सुनाया तथा भगवद्भक्त प्रचेताओं का चरित वर्णन किया, [illegible] में विदुर और मैत्रेय के संवाद की समाप्ति होती है।

पंचमस्कन्ध—पंचमस्कन्ध में छब्बीस अध्याय हैं। इस स्कन्ध में प्रियव्रत, आग्नीध्र, नाभि, ऋषभ, भरत आदि चक्रवर्ती राजाओं के वंश एवं चरित्र का वर्णन है। साथ ही भुवन कोश, द्वीप, लोक, ग्रह, शिशुमार चक्र और विभिन्न नरक आदि अनेक पौराणिक विषयों का वर्णन है।

षष्ठस्कन्ध—षष्ठस्कन्ध में उन्नीस अध्याय हैं। परीक्षित् के यह प्रश्न करने पर कि मनुष्य किस प्रकार नरक यातना से मुक्त हो सकता है, शुकदेव ने भगवद्भक्ति ही उसका एक मात्र उपाय बताया। इस प्रसंग में उन्होंने शुकदेव को अजामिल का उपाख्यान सुनाया और विष्णु दूतों द्वारा निरूपित भागवतधर्म का वर्णन किया। इस स्कन्ध में दक्ष प्रजापति की साठ कन्याओं का वंश वर्णन, वृत्रासुरवध देवासुर संग्राम आदि पौराणिक विषयों का वर्णन है।

सप्तमस्कन्ध—सप्तमस्कन्ध में पन्द्रह अध्याय हैं। परीक्षित् के यह प्रश्न करने पर कि समत्वयुक्त भगवान् ने देवताओं का पक्ष लेकर दानवों का संहार क्यों किया, शुकदेव ने इसके उत्तर में परीक्षित् को नारद और युधिष्ठिर का संवाद सुनाया। शिशुपाल के श्रीकृष्ण में सायुज्य हो जाने का कारण था, श्रीकृष्ण में उसकी तन्मयता, चाहे वह द्वेष वश ही क्यों न हो। इसी प्रसंग में शिशुपाल के पूर्वजन्म वृत्तान्त का वर्णन करते हुए बताया कि सनकादि ऋषि के शाप से विष्णुपार्षद जय विजय किस प्रकार हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के रूप में अवतीर्ण हुए। हिरण्यकशिपु के संहार प्रसंग में ही सविस्तार प्रह्लाद कथा और अन्त में मानव-धर्म, वर्णाश्रम धर्म, स्त्रीधर्म, यतिधर्म गृहस्थधर्म तथा मोक्षधर्म का वर्णन किया।

अष्टमस्कन्ध—अष्टमस्कन्ध में चौबीस अध्याय हैं। इस स्कन्ध में मन्वन्तरों का वर्णन, गज-ग्राह का आख्यान, समुद्रमन्थन, मोहिनी-अवतार कथा, देवासुर संग्राम, वामनावतार, बलिबन्धन एवं मत्स्यावतार की कथा सविस्तार दी गई है।

नवमस्कन्ध—नवमस्कन्ध में भी चौबीस ही अध्याय हैं। राजा परीक्षित् की जिज्ञासा पर शुकदेव ने पूर्ववर्ती अनेक चक्रवर्ती राजवंशों का वर्णन किया। इस स्कन्ध में विशेषरूप से पुराभव महापुरुषों का चरित एवं वंश वर्णन है। वैवस्वत मनु का वंश, च्यवन और सुकन्या का चरित, शर्याति वंश, नाभाग और अम्बरीष की कथा, इक्ष्वाकु वंश, त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र की कथा, सगर चरित भगीरथ की कथा, राम कथा, निमिवंश, चन्द्रवंश, परशुराम चरित, ययाति चरित, पूरुवंश, भरतवंश, यदुवंश एवं विदर्भ-वंश वर्णन इस स्कन्ध के विषय हैं।

दशमस्कन्ध—(पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध) दशमस्कन्ध के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भाग हैं। पूर्वार्ध में उनचास तथा उत्तरार्ध में इकतालीस अध्याय हैं। इस प्रकार दशम स्कन्ध नब्बे अध्यायों में विस्तीर्ण श्रीमद्भागवत का सबसे बड़ा स्कन्ध है। श्रीकृष्ण चरित का सांगोपांग वर्णन एवं श्रीकृष्ण का महिमागान ही इसका लक्ष्य है। परीक्षित् के यह प्रश्न करने पर कि यदुवंश में ही अमित तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण ने अवतार ग्रहण किया था, उनकी अलौकिक लीलाओं का क्या रहस्य है, शुकदेव ने उन्हें श्रीकृष्ण के जन्म से उनके परमधाम गमन तक का समस्त चरित बड़े विस्तार से सुनाया। यह कृष्ण-लीला ही

सर्वदा भारतीय भक्त कवियों का सबसे प्रिय वर्ण्य विषय रही है। अतः दशमस्कन्ध की कृष्ण लीला का सविस्तर विवेचन आगे किया जायगा।

एकादशस्कन्ध—एकादश स्कन्ध में इकत्तीस अध्याय हैं। इसमें शुकदेव ने श्रीकृष्ण के परमधाम गमन का वर्णन कर कृष्ण चरित का उपसंहार किया है। इसके अतिरिक्त इस स्कन्ध में अध्यात्म साधना के विविध विषयों का वर्णन है, यथा, माया, ब्रह्म और कर्म योग का निरूपण, भगवत्पूजाविधि का वर्णन अवधूतोपाख्यान, सत्संग, भक्तियोग की महिमा, भगवद् विभूति वर्णन, वर्णाश्रम-धर्मनिरूपण, वानप्रस्थ और संन्यासी के धर्म, भक्ति ज्ञान, यमनियमादि साधन वर्णन, ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग, तत्त्व-संख्या एवं पुरुष प्रकृति विवेक, सांख्ययोग, त्रिगुणवृत्ति निरूपण, क्रिया-योग वर्णन, परमार्थ निरूपण और भागवत धर्म निरूपण।

एकादश स्कन्ध श्रीमद्भागवत में एक स्वतंत्र आध्यात्मिक ग्रंथ के रूप में मालूम होता है। इस स्कन्ध का विषय दर्शन एवं क्रिया दोनों से ही सम्बद्ध है और उसमें सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। भक्ति-साहित्य पर श्रीमद्भागवत के सामान्य और व्यापक प्रभाव की दृष्टि से यह स्कन्ध बहुत महत्त्व पूर्ण है।

द्वादशस्कन्ध – द्वादशस्कन्ध में तेरह अध्याय हैं। यह स्कन्ध पुराणों की परम्परागत विशेषताओं को लिये हुए है। भविष्य काल की क्रिया का प्रयोग कर इसमें भविष्य-कथन किया गया है। भविष्य कथन पुराणों की प्राचीन परिपाटी है। इसके अतिरिक्त इस स्कन्ध में पुराणों की परिपाटी के अनुसार इन विषयों का वर्णन है—कलियुग के राजवंश, कलिधर्म, युगधर्म, पुराणलक्षण, एवं विभिन्न पुराणों की श्लोक संख्या। इस स्कन्ध में शुकदेव का परीक्षित् को अन्तिम उपदेश है जिसमें उन्हें सर्वभावेन भगवच्छरणागति लेने का आदेश दिया गया है।

श्रीमद्भागवत की प्रमुख टीकाएँ

श्रीमद्भागवत एक अत्यन्त क्लिष्ट ग्रंथ है। जहाँ एक ओर इसमें सरस-सरल [illegible] पदावली का प्रयोग हुआ है, वहाँ इसमें अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण प्रौढ दार्शनिक शब्दावली का प्रयोग भी दर्शनीय है। किन्तु श्रीमद्भागवत की क्लिष्टता का प्रमुख कारण उसकी भाषा नहीं है अपितु उसकी दार्शनिक गूढ़ता है। श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध में 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' की जो उक्ति विद्वानों में प्रसिद्ध है वह यथार्थ ही है। गरुड पुराण के अनुसार वेदान्त दर्शन का प्रतिपादन करने वाला, ब्रह्मसूत्रों का अर्थ, महाभारत का तात्पर्य निर्णय, गायत्री का भाष्य रूप, वेदार्थ का परिबृंहण करने वाला श्रीमद्भागवत समस्त पुराणों का सारभूत है।[1] इतने वरीयान् पद का निर्वहण करने वाले इस ग्रन्थ को

1. अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः ।
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहितः ॥
पुराणानां सामरूपः साक्षाद् भगवतोदितः ।
द्वादशस्कन्धसंयुक्तः शतविच्छेद संयुतः ।
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः । गरुड़ पुराण ।

वैष्णव आचार्यों की मुख्य-मुख्य टीकाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

(१) भावार्थदीपिका। श्रीमद्भागवत की इस सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक प्रसिद्ध टीका के कर्ता श्रीधरस्वामी हैं। यह टीका श्रीमद्भागवत की उपलब्ध समस्त टीकाओं से प्राचीन है। परवर्ती प्रायः समस्त टीकाकारों ने इसका अनुसरण किया है और श्रीमद्भागवत के दुरूह स्थलों को समझने में इसकी सहायता ली है। वास्तव में इस टीका का अध्ययन करने से इसके कर्ता श्रीधरस्वामी के अगाध पाण्डित्य का ज्ञान होता है। श्रीधर स्वामी के सम्बन्ध में बहुत कम बातें ज्ञात हैं। उन्होंने अपने विषय में स्वयं कुछ नहीं कहा है। टीका के मंगलाचरण से इतना पता चलता है कि वे श्री नृसिंह के उपासक थे।[1] श्रीमद्भागवत की गरिमा और अपनी अल्पज्ञता को प्रदर्शित करने के लिए श्रीधरस्वामी ने लिखा है कि 'जिस क्षीराब्धि का मन्थन करने में मन्दराचल भी डूब जाता है वहाँ परमाणु की क्या बिसात है।'[2] किन्तु श्रीधरस्वामी की टीका इतनी प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय हुई कि उसके सम्बन्ध में यह उक्ति प्रचलित हो गई—

व्यासो वेत्ति शुको वेत्ति राजा वेत्ति न वेत्ति वा।
श्रीधरः सकलं वेत्ति श्रीनृसिंहप्रसादतः॥

अर्थात्, श्रीमद्भागवत का मर्म वेदव्यास और शुकदेव जानते हैं। राजा (परीक्षित) के ज्ञान में सन्देह है, किन्तु नृसिंह की अनुकम्पा से श्रीधर उसका समस्त मर्म समझते हैं। श्रीधरस्वामी की टीका की इससे अधिक प्रशस्ति और क्या हो सकती है। भक्तवर नाभादास जी ने भी भक्तमाल में श्रीधर की टीका को वेदसम्मत बताया है और काशी के बिन्दुमाधव मन्दिर के एक चमत्कार का उल्लेख किया है कि भगवान् बिन्दुमाधव ने उनकी टीका को समस्त ग्रन्थों के ऊपर रखकर उसे सर्वोत्कृष्ट घोषित कर दिया।[3] श्रीधरस्वामी का स्थितिकाल ११वीं शताब्दी माना जाता है।[4] श्रीधर ने अपने पूर्ववर्ती वेदान्त के प्रसिद्ध आचार्य चित्सुखाचार्य की टीका का उल्लेख किया है।[5] श्रीधर की भावार्थदीपिका

१ वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदये संवित् तं नृसिंहमहं भजे। — श्रीधरी भावार्थ दीपिका १

२ क्वाहं मन्दमतिः क्वेदं मथनं क्षीरवारिधेः।
किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दरः॥ — वही, श्लोक ५

३ तीन काण्ड एकत्व सानि कोउ अज्ञ बखानत।
कर्मठ ज्ञानी ऐंचि अर्थ को अनरथ बानत।
परमहंस संहिता विदित टीका बिसतार्यौ।
षट् शास्त्रनि अविरुद्ध वेद सम्मत हि विचार्यौ।
परमानन्द प्रसाद ते माधौ सुकर सुधार दियौ।
श्रीधर श्रीभागवत में परम धरम निरनै कियौ॥ — भक्तमाल छप्पय १६६ पृ० ३६४

४ भागवतसम्प्रदाय (श्री बलदेव उपाध्याय) पृ० २२५

५ वही, पृ० २५७

टीका पर श्री राधारमणदास गोस्वामी ने अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण 'दीपनी' नामक टिप्पणी लिखी है, जो वृन्दावन से सं० १९६० में प्रकाशित विविधटीकासंवलित श्रीमद्भागवत के अन्तर्गत सम्मिलित की गई है।

(२) शुकपक्षीया टीका – श्रीमद्भागवत की इस टीका के कर्त्ता विशिष्टाद्वैतमत प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य के सम्प्रदाय के एक प्रख्यात आचार्य श्री सुदर्शन सूरि हैं। ये वही विद्वान् हैं जिन्होंने रामानुज के प्रसिद्ध 'श्रीभाष्य' पर 'श्रुतप्रकाशिका' टीका लिखी है। विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय में सुदर्शन सूरि का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने विशिष्टाद्वैत मतानुसार श्रीमद्भागवत की व्याख्या की है। इनका स्थितिकाल ईसवी १४वीं शताब्दी है। कहा जाता है कि अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति ने जब १३६७ ई० में श्रीरंगम् पर आक्रमण किया था तब उस काण्ड में ये मारे गए थे।[1]

(३) भागवतचन्द्रिका — श्रीमद्भागवत की इस टीका के कर्त्ता श्री वीरराघवाचार्य हैं। ये भी श्री रामानुजसम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य थे। इन्होंने श्री सुदर्शन सूरि की टीका का ही विशदीकरण किया है। विशिष्टाद्वैतमत के अनुसार श्रीमद्भागवत के व्याख्यान के लिए वीरराघव की टीका का अध्ययन अनिवार्य है। इनका समय १४वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है।

(४) पदरत्नावली – श्रीमद्भागवत की इस टीका के कर्त्ता द्वैतमतावलम्बी आचार्य विजयध्वज हैं। द्वैतमत के प्रवर्तक श्री आनन्दतीर्थ (श्रीमध्वाचार्य) ने श्रीमद्भागवत के मर्म को प्रकाशित करने के लिए पहले ही 'भागवततात्पर्यनिर्णय' नामक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिख दिया था। किन्तु मध्वाचार्य के ग्रंथ को हम श्रीमद्भागवत की टीका नहीं कह सकते। यह श्रीमद्भागवत पर एक निबन्ध है। द्वैतमतानुसार श्रीमद्भागवत की व्याख्या बाद में श्री विजयध्वज ने अपनी 'पदरत्नावली' में की और अपना आधार आनन्दतीर्थ तथा विजयतीर्थ की कृतियों को स्वीकार किया।[2] विजयध्वज की टीका काफी विस्तृत एवं सुबोध है।

(५) सिद्धान्तप्रदीप – श्रीमद्भागवत की इस टीका के रचयिता निम्बार्कसम्प्रदाय के आचार्य शुकदेवाचार्य हैं। निम्बार्कसम्प्रदाय की आचार्य-परम्परा में इनका स्थान है। द्वैताद्वैत मत के प्रतिष्ठापक श्री निम्बार्काचार्य ने श्रीमद्भागवत पर कोई टीका नहीं लिखी किन्तु उनके मत में श्रीमद्भागवत का [illegible] प्रामाण्य स्वीकृत है, विशेषकर युगल-लीला [illegible] के प्रकाशक रासलीला आदि का सम्प्रदाय में बहुत महत्त्व है और निम्बार्क मत के अन्य आचार्यों ने भागवत दशमस्कन्ध की विविध कृष्ण लीलाओं–मुख्यतया रासलीला की [illegible] व्याख्या की है। श्री शुकदेवाचार्य ने श्रीमद्भागवत की द्वैताद्वैतपरक व्याख्या करके अपने सिद्धान्त को प्रामाणिक सिद्ध किया है।

1. [illegible] सम्प्रदाय पृ० १२७
2. [illegible] श्रीविजयतीर्थी प्रत्यक्ष [illegible]।
   [illegible] भागवतं पुराणम् [illegible]
   श्रीमद्भागवत पृ० ११ (वृन्दावन से १९६० वि० में प्रकाशित।

के कुछ स्कन्धों और सम्पूर्ण दशमस्कन्ध पर ही यह प्राप्त है। सुबोधिनी में श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत की व्याख्या अनेक दृष्टियों से करके अनेक अर्थों की उद्भावना की है। शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत को प्रस्थान ग्रंथों में रखकर उसका परमप्रामाण्य स्वीकार किया गया है। इस सम्प्रदाय के अन्य विद्वानों ने भी श्रीमद्भागवत की टीकाएँ की हैं, जिनमें गिरिधर महाराज की टीका उल्लेखनीय है।

(७) बृहद् वैष्णवतोषिणी—श्रीमद्भागवत की इस टीका के रचयिता चैतन्य सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध आचार्य श्री सनातन गोस्वामी थे। इनका समय १६वीं शताब्दी है। श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीधर की 'भावार्थदीपिका' टीका को श्रीमद्भागवत की सर्वाधिक प्रामाणिक एवं सर्वोत्तम टीका समझते थे। यद्यपि श्रीधर स्वामी की टीका शंकर के अद्वैत मत के अनुसार है और चैतन्य मत से भिन्न दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है, तथापि श्रीधरी टीका की उत्कृष्टता से प्रभावित होकर चैतन्य ने अपने मत में उसी को प्रमाण-स्वरूप स्वीकार कर लिया और स्वयं श्रीमद्भागवत पर उन्होंने कोई टीका नहीं लिखी। चैतन्य के अनुयायी वृन्दावन के गोस्वामियों ने श्रीधरी टीका का पूर्ण समादर करते हुए अपने मत (अचिन्त्यभेदाभेद) के अनुसार श्रीमद्भागवत पर अनेक विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखीं। इनमें श्री सनातन गोस्वामी की 'बृहद् वैष्णवतोषिणी' टीका बहुत प्रसिद्ध है। यह श्रीमद्भागवत के केवल दशमस्कन्ध पर ही की गई है।

(८) क्रमसन्दर्भ—श्रीमद्भागवत की इस सुप्रसिद्ध टीका के रचयिता चैतन्य सम्प्रदाय के आचार्य श्री जीव गोस्वामी थे। ये पूर्वोक्त श्री सनातन गोस्वामी के भतीजे थे। श्री जीव गोस्वामी एक अत्यन्त प्रतिभाशाली पण्डित थे। इन्होंने श्रीमद्भागवत के रहस्य का उद्घाटन करने के लिए एक अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण 'षट्सन्दर्भ' नामक ग्रंथ लिखा। 'क्रमसन्दर्भ' उसी परम्परा में लिखी गई श्रीमद्भागवत की विस्तृत व्याख्या है। यह समस्त श्रीमद्भागवत पर है। 'षट्सन्दर्भ' के उपरान्त उनका यह 'सप्तमसन्दर्भ' ही था।[1]

(९) सारार्थदर्शिनी—श्रीमद्भागवत की इस टीका के रचयिता चैतन्य सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती हैं। श्री चक्रवर्ती ने अपनी टीका में श्रीधर स्वामी, श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके गुरु के श्रीमद्भागवत विषयक विचारों का सार ग्रहण किया है इसीलिए इन्होंने अपनी टीका का नामकरण 'सारार्थ दर्शिनी' किया है।[2] यह टीका

---

१ दे० क्रमसन्दर्भ की पुष्पिका—'श्री रूपसनातनानुशासनभारतीगर्भे सप्तसन्दर्भात्मकश्रीभागवतसन्दर्भे प्रथमस्कन्धस्य क्रमसन्दर्भः समाप्तः'।

२ श्रीधर स्वामिनां श्रीमत्प्रभूणां श्रीमुखाद् गुरोः।
व्याख्यासु सारग्रहणाद् इयं सारार्थदर्शिनी॥

श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत सारार्थदर्शिनी टीका की पुष्पिका।

टिप्पणी—पूर्वोक्त नौ टीकाओं में से श्री सनातन गोस्वामी की बृहद् वैष्णवतोषिणी टीका के अतिरिक्त अन्य आठ टीकाएँ वृन्दावन से सं० १९६० में श्री नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी के सम्पादन में प्रकाशित श्रीमद्भागवत के संस्करण में निकल चुकी हैं।

श्रीमद्भागवत के गूढ़ अर्थ को समझने के लिए बहुत उपयोगी है।

(१०) हरिभक्तिरसायन—श्रीमद्भागवत की इस टीका के रचयिता गोदावरी तटवासी काश्यप गोत्रीय कोई श्रीहरि नाम के विद्वान् भक्त थे। इस टीका की विशेषता यह है कि यह पद्यात्मक है। इसमें उनचास अध्याय हैं और विविध ललित छन्दों में लगभग पाँच सहस्र श्लोकों में कृष्णलीला का गान है। वास्तव में अपने लालित्य और भक्तिभाव माधुर्य के कारण यह ग्रंथ एक टीका मात्र नहीं, अपितु एक स्वतंत्र मौलिक ग्रंथ है, जो श्रीमद्भागवत के केवल दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध पर ही लिखा गया है। इसका रचनाकाल शकसंवत् १७२९ है। इसका प्रकाशन काशी से हो चुका है।

इन प्रसिद्ध और प्रमुख टीकाओं के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत की 'चूर्णिका' 'वंशीधरी' तथा 'अन्वितार्थप्रकाशिका' टीकाएँ भी उपलब्ध होती हैं। श्री जीवगोस्वामी ने अपने 'तत्त्वसन्दर्भ' में श्रीमद्भागवत पर इन व्याख्याओं का उल्लेख किया है—

१—हनुमद्भाष्य
२—वासनाभाष्य
३—सम्बन्धोक्ति
४—विद्वत्कामधेनु
५—तत्त्वदीपिका
६—परमहंसप्रिया
७—शुकहृदया

'भागवत' नाम से अभिहित अन्य ग्रन्थ

श्रीमद्भागवत के लोकव्यापी प्रभाव, प्रसार एवं सर्वप्रियता के कारण अनेक मध्यकालीन लेखकों ने संस्कृत में विपुल भागवत-साहित्य की रचना की। श्रीमद्भागवत के प्रमुख प्रतिस्पर्धी ग्रन्थ 'देवीभागवत' का उल्लेख पहले किया जा चुका है। यहाँ अन्य भागवत साहित्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

जैमिनीय भागवत—इस ग्रंथ की दो प्रतियाँ लन्दन की इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं। एक प्रति देवनागरी अक्षरों में तथा एक उड़िया अक्षरों में लिखी हुई है। [illegible] लिखित है। देवनागरी लिपि में लिखित प्रति बहुत सुन्दर [illegible] है।[1] जैमिनीय भागवत में श्रीकृष्ण का चरित इकतालीस अध्यायों में [illegible] है। [illegible] कुछ श्रीकृष्ण लीलाएँ ऐसी हैं जिनका वर्णन श्रीमद्भागवत में नहीं है। ऐसा अनुमान होता है कि वे लीलाएँ गर्गसंहिता आदि श्रीकृष्णचरित [illegible] से ली गई हैं। जैमिनीय भागवत की वर्ण्य-विषय-सूची निम्नलिखित है—

[illegible]—(१) श्रीकृष्णावतार, (२) पूतनावधः (३) तृणावर्तवधः, (४) यमलार्जुन-[illegible] (६) [illegible] (७) गोपिकानुरीतिः (८) बकासुर वधः [illegible] (१०) [illegible]-राधा-माधव-संवादः (११) गोपस्त्री-दधि-[illegible] (१२) धेनुकासुरप्रलम्बासुरवधः (१३) वनविहारे वत्सहरणम्,

[1] [illegible] दी संस्कृत एण्ड प्राकृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन दी लाइब्रेरी ऑफ दी इंडिया ऑफिस [illegible] सम्पादित—मिसेज विन्स प्राकृत टैक्स्ट्स, पृ० २०४२।

(२०) द्वारसीमाते नन्दजन्मप्रवेशः, (२१) कृष्णस्य मेघाद्युतिगमनम्, (२२) गोपकन्या भजनम्, (२३) राधास्वरूपवर्णनम्, (२४) क्रीडारसः, (२५) वसन्तलीलाद्याकथनम्, (२६) दूतीप्रेषणम् (२७) यह अध्याय शीर्षक रहित है। (२८) वनभोजनम्, (२९) राम क्रीडा, (३०) रासक्रीडा, (३१) गर्वमोक्षणम्, (३२) अरिष्टासुर वधः (३३) राधिका संदर्शनम्, (३४) अक्रूरगोकुलप्रवेशनम्, (३५) कृष्णाक्रूरसंवादः, (३६) गोपस्त्रीविलापः (३७) रामकृष्णमथुरागमनम्, (३८) रामकृष्णयोरक्रूरगृहप्रवेशः, (३९) धनुःशालामध्ये धनुर्भंगः, (४०) कुवलयचाणूरमुष्टिककंसवधः, (४१) उग्रसेनसाम्राज्यलक्ष्मीः। इस ग्रंथ की विषयसूची तथा राधा का नामोल्लेख देखकर ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ श्रीमद्भागवत से बहुत परवर्ती है।

भागवत चम्पूः—इस ग्रंथ की तीन प्रतियाँ इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं, जिनमें से दो तेलुगु लिपि में तथा एक 'ग्रंथ' लिपि में लिखी हुई हैं। तीनों ही प्रतियाँ खजूर-पत्र पर हैं।[1]

भागवतचम्पू किन्हीं 'अभिनव कालिदास' नामक कवि की रचना है। इसमें इन्होंने श्रीमद्भागवत की कथा को छः उल्लासों में सुन्दर गद्य पद्य में वर्णित किया है। ग्रंथारंभ में "श्रीमते रामानुजाय नमः" का उल्लेख कवि अथवा प्रतिलिपिकार के रामानुज मतावलम्बी होने की सूचना देता है। इस ग्रंथ की 'रत्नावली' अथवा 'भागवतचम्पू व्याख्या' नाम से एक टीका भी प्राप्त है जिसके रचयिता अक्कव्य सूरि हैं।

मंत्रभागवत—इस ग्रंथ की एक प्रति बड़ौदा की सेण्ट्रल लाइब्रेरी में सुरक्षित है।[2] इसके रचयिता 'गोविन्द' के पुत्र 'नीलकंठ' हैं। सम्भवतः ये महाभारत के सुप्रसिद्ध टीकाकार नीलकंठ ही हैं। इनका स्थितिकाल अनिर्णीत है। 'मंत्रभागवत' की एक विस्तृत व्याख्या भी है जिसका नाम है 'मंत्ररहस्यप्रकाशिका' इस टीका के रचयिता मंत्रभागवतकार स्वयं नीलकंठ ही हैं। 'मंत्ररहस्यप्रकाशिका' में ऋग्वेद संहिता के विभिन्न भागों से दोसौ ग्यारह ऋचाएँ संगृहीत हैं। इन ऋचाओं की व्याख्या इस प्रकार की गई है कि उससे श्रीमद्भागवत की कथा का निर्देश होता है।

बालभागवत—सन् १४३० ई० में हुए आन्ध्र निवासी एक ब्राह्मणकवि धर्मसूरि ने 'बालभागवत' नामक एक सुन्दर काव्य लिखा था। दुर्भाग्य से वह काव्य अब अप्राप्य है किन्तु कवि ने अपने एक छोटे से नाटक 'नरकासुर विजय' में 'बालभागवत' का उल्लेख किया है। साहित्यरत्नाकर में क्रियाफलोत्प्रेक्षा के उदाहरण में बालभागवत का निम्नांकित श्लोक उद्धृत किया गया है—

१ केटेलॉग ऑव संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, पृ० ११६८।

२ गायकवाड्स ओरियण्टल सीरीज नं० २७, केटेलॉग आव मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दी सेण्ट्रल लाइब्रेरी आव बड़ोदा, वॉल्यूम १, पृ० १०।

*निविश्य नीरन्ध्रनिकुंजमध्यमा-
नमो समीरोऽस्महसा ससंभ्रमाः ॥
न शक्नुवन्तीह पुनर्विनिर्गमे ।
लता द्रुमालिंगनलालसा ध्रुवम् ॥

निष्कर्ष—इस अध्याय में निरूपित विषय के आधार पर इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुँचा जा सकता है कि भारतवर्ष के पुराण-साहित्य में श्रीमद्भागवत मूर्धन्य स्थान पर प्रतिष्ठित है और भारतवर्ष की वैष्णव भक्ति भावना में उसका महत्व निर्विवाद है। विभिन्न भारतीय और अभारतीय भाषाओं में इस ग्रंथ के शताधिक अनुवाद इसकी लोकप्रियता के प्रमाण हैं। भारत की प्रादेशिक भाषाओं में बंगला, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ अनुवाद बहुत पहले से ही होते रहे हैं। श्रीमद्भागवत के समस्त और आंशिक हिन्दी गद्यपद्यात्मक अनुवादों की संख्या भी बहुत है। हमारे आलोच्यकाल में ही नहीं, उसके बाद भी भागवत के अनुवाद चलते रहे। उदाहरणार्थ १७७१ ई० में लिखा हुआ ब्रजवासीदास का ब्रज-विलास बहुत लोकप्रिय हुआ। इससे पूर्व १७५० ई० में रसजानि ने 'भागवतभाषा' नाम से समस्त भागवत का तथा हितदास ने 'भागवत दशम भाषा' नाम से भागवत के दशमस्कन्ध का ब्रजभाषा पद्यानुवाद किया। १७०४ ई० में आनन्दराम ने ब्रजभाषा गद्य और पद्य में इसका अनुवाद किया था। १८वीं १९वीं शताब्दी में हुए 'रुक्मिणीमंगल, 'भागवत', 'रास पंचाध्यायी', 'भागवत एकादशस्कन्ध भाषा' 'भागवत दशमस्कन्ध' 'रत्नप्रकाश' 'भागवत दशम' आदि अनेक अनुवादों का उल्लेख हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज रिपोर्टों में हुआ है।[१] इनमें मदनसिंह (लगभग १६८४ ई०) का अनुवाद बहुत प्रसिद्ध है।

१—खोज ईं वर्ष त्रैवार्षिक रिपोर्ट आंव दी सर्च आंव हिन्दी मेनुस्क्रिप्ट्स, सन् १९१२-१६, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
खोज की त्रैवार्षिक रिपोर्ट आंव दी सर्च आंव हिन्दी मेनुस्क्रिप्ट्स १९२३-१९२५ ई० ना० प्र० सभा काशी।

द्वितीय अध्याय

श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य

(तत्त्वज्ञान एवं भक्तिदर्शन)

दृष्टिकोण—भारतीय अध्यात्मशास्त्र में ब्रह्मात्मैक्यज्ञान ही एकमात्र सत्य और प्राप्तव्य वस्तु मानी गई है। इसी ज्ञान को सबसे पवित्र वस्तु भी माना गया है।[1] 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' की अनुभूति ही यह तत्त्वज्ञान है जिसकी उपलब्धि के साधनों और स्वरूप के वर्णन से भारतीय अध्यात्मशास्त्र के श्रुति स्मृति उपनिषदादि ग्रंथ भरे पड़े हैं। पुराण-साहित्य में भी इसी तत्त्वज्ञान की उपलब्धि के साधनों का निरूपण है किन्तु अधिक रोचक, व्यावहारिक और सरल रूप से। हमारे विवेच्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवत में उस तत्त्व-ज्ञान को दो साधनों से उपलब्ध होना शक्य बताया गया है—(१) बुद्धियोग से, (२) भक्ति-योग से। दोनों में प्राप्तव्य वस्तु ब्रह्म ही है, अतः प्राप्तव्य वस्तु ब्रह्म के स्वरूप को श्रीमद्भागवत में जिस प्रकार निरूपित किया गया है उसे पहले समझना आवश्यक है। भागवत में ब्रह्म को 'तत्त्व' कहा गया है और उस वस्तुतः एक ही पदार्थ को तीन भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा गया है—(१) ब्रह्म (२) परमात्मा और (३) भगवान्। वह ज्ञानस्वरूप वस्तुतः एक ही परमतत्त्व दृश्य आदि अनेक भावों से प्रकट होता है। उपनिषद् ग्रंथों में इसे 'परब्रह्म', योगशास्त्र में 'परमात्मा ईश्वर', सांख्यशास्त्र में 'पुरुष' और भक्तिशास्त्र में इसे 'भगवान्' कहा जाता है।[2] इस तत्त्व को ज्ञान और वैराग्य युक्त भक्ति से आत्मसात् किया जा सकता है।[3]

ब्रह्मतत्त्व की मीमांसा में श्रीमद्भागवत का वेदान्त शास्त्र से पूर्ण मतैक्य है और उपनिषद् गीता तथा ब्रह्म-सूत्रों के मन्तव्य को इसमें अत्यन्त रमणीय रूप से व्यक्त किया गया है। श्रीमद्भागवत के अनुबन्ध वाक्य से ही यह स्पष्ट हो जाता है।

श्रीमद्भागवत का अनुबन्ध चतुष्टय—ग्रन्थारम्भ में (१) विषय, (२) प्रयोजन, (३) सम्बन्ध और (४) अधिकारी—इस अनुबन्ध चतुष्टय का उल्लेख करने की प्राचीन

---

१ नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते — श्रीमद्भगवद्गीता ४.३८

२ वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥ — श्रीमद्भाग० १.२.११

ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान्।
दृश्यादिभिः पृथग्भावैर्भगवानेक ईयते॥ — श्रीमद्भाग० ३.३२.२६

३ तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया॥ — श्रीमद्भाग० १.२.१२

भारतीय परिपाटी है। श्रीमद्भागवत में बड़े कौशल से प्रारम्भिक दो श्लोकों में इसका निरूपण करते हुए कहा गया है कि "कार्य कारणात्मक समस्त जगत् में जो अन्वय और व्यतिरेक उभय दृष्टियों से व्याप्त है (अर्थात् जिसकी सत्ता से सब पदार्थ सत्तावान् हैं और जिसकी सत्ता के अभाव में सब पदार्थ सत्ताहीन हैं) जिससे इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार होते हैं, जो सर्वज्ञ और स्वयं प्रकाश है, जिस वेद के विषय में सूरिजन भी मोहित हो जाते हैं, उसका जिसने संकल्पमात्र से ब्रह्मा के हृदय में संचार कर दिया और जिस प्रकार तेज, जल, मृत्तिका आदि में विपर्यय हो जाता है उसी प्रकार जिस शुद्ध ब्रह्म में त्रिगुणात्मिका असत् सृष्टि भी सत् प्रतीत होती है, जिसके ज्ञान-स्वरूप तेज से माया कपट आदि का सर्वथा बाध रहता है, हम उस सत्य (ब्रह्म) का ध्यान करते हैं।" अतः 'ब्रह्म' ही श्रीमद्भागवत का विषय है। श्रीमद्भागवत में निर्मत्सर पुरुषों के परमधर्म तथा ज्ञातव्य मंगल वस्तु (परब्रह्म श्रीकृष्ण) का वर्णन किया गया है। इसके श्रवण से भाग्यशाली पुरुष (अधिकारी) तत्क्षण ही ईश्वर को अपने हृदय में अवरुद्ध कर लेते हैं।[1] यही ग्रन्थ का प्रयोजन है।[2] भगवान् और ग्रन्थ का प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है। प्रथम श्लोक के "सत्यं परं धीमहि" अंश से ब्रह्मसूत्रों का जिज्ञासाधिकरणोक्त "अथातो-ब्रह्मजिज्ञासा"[3] वाला अर्थ तथा गायत्री का भाष्य-रूपत्व ध्वनित होता है। 'सत्यं परं' शब्द से ब्रह्म का 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' आदि श्रुत्युक्त स्वरूप लक्षण घटित हो जाता है। "जन्माद्यस्य यतः" अंश से ब्रह्मसूत्रों के द्वितीय 'जन्माद्यधिकरण' स्थित 'जन्माद्यस्य यतः' सूत्र के अर्थ का तथा "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति" इत्यादि श्रुत्युक्त ब्रह्म के तटस्थ लक्षण का बोध होता है। इसी प्रकार "अन्वयादितरतः" अंश से ब्रह्मसूत्रों के एकाधिक अधिकरणों—यथा—'समन्वयाधिकरण', 'ईक्षत्यधिकरण', 'आनन्दमयाधिकरण', 'अन्तराधिकरण', 'आकाशाधिकरण' आदि का भावार्थ अंकित हो जाता है। वेदान्त के समस्त कारण वाक्य ब्रह्म में समनुगत होते हैं अतः 'अन्वयादितरतः' वाक्यांश से ब्रह्मसूत्रों के द्वितीय अविरोधाध्याय का सारांश संकेतित हो जाता है। "तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये" वाक्यांश से श्रुत्यर्थ का अत्यन्त स्पष्ट

1 जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥
धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सताम्।
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ श्रीमद्भागवत १. १. १. २

2 ग्रन्थ के विषय और प्रयोजन श्रीमद्भागवत द्वादशस्कन्ध में भी इसी प्रकार वर्णित है—
सर्ववेदान्तसारं यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥ श्रीमद्भाग० १२. १३. १२

3 ब्रह्मसूत्र १. १. १

समस्त वस्तु जगत् का नामनिर्वहरण वेदों में हुआ है और वेद ब्रह्म से ही प्रादुर्भूत है यह 'यो वै वेदांश्च प्रहिणोति' इत्यादि पूर्वोक्त श्रुति से प्रमाणित है। अतः समस्त चराचर वस्तु जगत् का नाम रूपादि संकेतकर्ता ब्रह्म ही है जीव नहीं।

'तेजोवारिमृदां यथा विनिमयः' इस अंश में 'त्रिवृत्करणश्रुति—'तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणि' इत्यादि श्रुति का समन्वय करने का प्रयत्न हुआ है।

इसी अनुबन्ध श्लोक के 'अमृषा' पद से ब्रह्मसूत्रों के 'आरम्भणाधिकरण' (ब्र० सू० २. १. १४) तथा प्रसिद्ध श्रुति वाक्य—'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्' का संकेत होता है।[3] तात्पर्य यह है कि जगत् ब्रह्मात्मना सत्य है अथवा उक्त श्लोक में 'अमृषा' पाठ न लेकर 'मृषा' पाठ ग्रहण करें तो तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोमृषा—वाक्य से ब्रह्मसूत्रों के उभयलिंगाधिकरण' (ब्र० सू० ३. २. ११—२१) का सामंजस्य घटित होता है।[4] भगवान् स्वगतदोष विवर्जित है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार तेज, जल एवं पृथ्वी में अन्यावभास अर्थात् स्थल में जलादि भ्रम, जल विशेष काचादि में पृथिव्यंश पाषाणभिन्नादि बुद्धि मिथ्या है उसी प्रकार सत्यस्वरूप ब्रह्म में मानुषत्वादि, भौतिकत्वादि, पुनर्जन्मादि बुद्धि मिथ्या है।[5]

अनुबन्ध श्लोक के अन्तिम वाक्य—'धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि' से ब्रह्मसूत्रों के 'उभय लिंगाधिकरण' से प्रारम्भ कर 'फलाधिकरण' (ब्र० सू० ३. २) तक का समस्त सार संग्रह किया गया है। इस प्रकरण में ब्रह्म का प्राकृत सर्वविलक्षणत्व निरूपित है। 'स्वेन धाम्ना' का तात्पर्य है सत्य, ज्ञान एवं आनन्द लक्षण निज स्वरूप महिमा से ही (जीव की भाँति उपासनादि साधनों से नहीं) जो सदा–त्रिकालावच्छेदेन–'निरस्तकुहक' अविद्यादि समस्त दोष रूप अन्धकार से रहित हैं, हम उस परमसत्य (ब्रह्म) का ध्यान करते हैं। इस प्रकार ब्रह्म का स्वरूप लक्षण भी यहाँ कथित है तथा साधन और फल का संकेत भी किया गया है। अर्थात् जो निज स्वरूप महिमा से ही 'कुहक' पद से वाच्य

---

१. यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति।
तस्मै ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद् ६–१८)
तथा—यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै विद्यां तस्मै गोपायति स्म कृष्णः।
तं ह आत्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणं व्रजेत्॥ (गोपाल पूर्वतापनी उपनि० ५)

२. संज्ञामूर्तिक्लृप्तिस्तु त्रिवृत्कुर्वत उपदेशात्। (ब्रह्म सूत्र २. ४. २०)

३. तदनन्यत्वमारम्भण शब्दादिभ्यः। (ब्र० सू० २. १. १४)

४. [illegible] (ब्र० सू० ३. २. [illegible])

५. [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] [illegible] ८. ३. २४

अविद्या, अस्मिता, रागद्वेषादि समस्त दोषों से परे है और परमसत्य है, वह निरतिशय सत्य ज्ञानानन्द स्वरूप परमात्मा ही 'फल' और 'विषय' है। 'धीमहि' पद से सूचित उस ब्रह्म का समाराधन ही 'साधन' है। समस्त भोगों से उपरत भगवत्स्वरूप की प्राप्ति में संलग्न मुमुक्षु ही अधिकारी है। भगवान् और ग्रंथ का प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव ही सम्बन्ध है। इस प्रकार ब्रह्मसूत्रों के तृतीय साधनाध्याय तथा चतुर्थ फलाध्याय का मन्तव्य श्रीमद्-भागवत के अनुबन्ध श्लोक से पूरा हो जाता है।

इस श्लोक के 'धीमहि' पद में आत्मनेपद उत्तमपुरुष, बहुवचन का प्रयोग भागवतकार ने विशेष अभिप्राय से किया है। तात्पर्य यह है कि भागवतकार सदृश तत्त्वज्ञानी जो समस्त मुमुक्षु वर्ग का प्रतिनिधि है, वह भी सगुण ब्रह्म–भगवान् का ध्यान करता है, 'भगवान्' उनके भी ध्येय, ज्ञेय और प्राप्य हैं। भागवतकार ने स्वयं कहा है कि आत्माराम और अविद्यादि ग्रंथियों से मुक्त ज्ञानी जन भी भगवान् की अहैतुकी भक्ति किया करते हैं क्योंकि भगवान् के गुण ही इतने आकर्षक हैं। परमतत्त्वज्ञानी वीतराग शुकदेव मुनि भी भगवान् के अलौकिक गुणों से आकृष्ट होकर तद्गुण वर्णन प्रधान भागवतशास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्त हुए थे।[1] स्वयं भागवतकार व्यास भी उस सनातन ब्रह्मतत्त्व का विचार करके भी अकृतार्थ रहे और उनकी आत्मा असंतुष्ट रही तो उन्होंने सगुण ब्रह्म भगवान् के मधुर-गुण और लीलागानप्रधान भागवत महापुराण का सृजन किया।[2]

आत्मा और परमात्मा का स्वरूप—ऊपर श्रीमद्भागवत के अनुबन्ध श्लोक के आधार पर ब्रह्मतत्त्व का निरूपण किया गया है। आत्मतत्त्व और परमात्मतत्त्व को भी श्रीमद्भागवत में उसी शब्दावली से अभिहित किया गया है जिसमें ब्रह्मतत्त्व को। आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, एक, क्षेत्रज्ञ, अधिष्ठान, अविकारी, स्वयंप्रकाश, सब का कारण व्यापक, असंग और अनावृत है। आत्मा के ये बारह गुण हैं।[3] बुद्धि की तीन वृत्तियों—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति को अनुभव करने वाला सर्वसाक्षी पुरुष ही परमात्मा

१. आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥
हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः ।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ॥ श्रीमद्भाग० १.७.१०, ११

२. जिज्ञासितमधीतं च ब्रह्म यत्तत्सनातनम् ।
तथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो ॥ श्रीमद्भाग० १.५.४
भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् ।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥ श्रीमद्भाग० १.५.५
अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे ।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥ श्रीमद्भाग० १.७.६

३. आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः ।
अविक्रियः स्वदृग्घेतुर्व्यापकोऽसङ्ग्यनावृतः ॥
एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः ।
अहं ममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत् ॥ श्रीमद्० ७.७.१९, २०

रहता है।[२]

ईश्वर—ब्रह्म का पारमार्थिक स्वरूप चैतन्य है। जब ब्रह्म सत्त्वगुण रूपी उपाधि से अवच्छिन्न नहीं होता तब निराकार और अव्यक्त भाव से स्थित रहता है, वही 'निर्गुण ब्रह्म' के नाम से अभिहित किया जाता है। किन्तु जब ब्रह्म सत्त्वगुण रूपी उपाधि से अवच्छिन्न होता है तब वह साकार और व्यक्तभाव से स्थित रहता है और 'सगुण ब्रह्म' कहलाता है। ब्रह्म का यही स्वरूप 'ईश्वर' अथवा 'भगवान्' है। यह ईश्वर त्रिगुणात्मिका माया का स्वामी, नित्यमुक्त और आनन्दमय है।[३]

जीव—जीव ईश्वर का अंश है।[४] जीव भी ईश्वर के समान चेतनस्वरूप है किन्तु जीव और ईश्वर की सामर्थ्य में बड़ा अन्तर है। ईश्वर ज्ञान, ऐश्वर्य आनन्दादि में जीव से अनन्तगुण अधिक है। जीव नित्यबद्ध है, कर्म फलों को भोगता है और अविद्या युक्त है। जीव का पुनर्भव होता है। उपनिषद् के समान श्रीमद्भागवत में भी—ईश्वर और जीव को दो पक्षियों का रूपक दिया गया है। ये दोनों पक्षी एक ही वृक्ष (शरीर) पर स्वेच्छा से घोंसला बनाकर रहते हैं। ये दोनों तत्त्वतः समान और एक दूसरे के सखा हैं। किन्तु इनमें से एक तो (जीव) उस वृक्ष के फलों (सुखदुःखादि) को खाता है और दूसरा (ईश्वर) निराहार (कर्म फलादि से असंग, साक्षीमात्र) रहकर भी बल (ज्ञान ऐश्वर्य आनन्दादि) में पहले पक्षी (जीव) से अधिक है।[५] परम पुरुष (ईश्वर) का अंश रूप पुरुष (जीव) उद्भिज्ज, अण्डज, स्वेदज और जरायुज—चार भेदों से शरीर रूपी पुर (नगर) में

---

१ बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः।
ता येनैवानुभूयन्ते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः॥ श्रीमद्भाग० ७. ७. २५

२ पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि। श्रीमद्भाग० ११. २२. ११

३ सोऽविद्यया युक् स तु नित्यबद्धो
विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः। श्रीमद्भाग० ११. ११. ७ तथा ११. ६. ८

४ भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः
पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन्।
स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधान-
मवाप नारायण आदिदेवः॥ श्रीमद्भाग० ११. ४. ३

५ सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ
यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे।
एकस्तयोः खादति पिप्पलान्न-
मन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान्॥
आत्मानमन्यं च स वेद विद्वान्
अपिप्पलादो न तु पिप्पलादः।
योऽविद्यया युक् स तु नित्यबद्धो
विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः॥ श्रीमद्भाग० ११. ११. ६-७
[illegible] जीवो [illegible]॥ श्रीमद्भा० [illegible]

प्रवेश करके मधुमक्षिकाओं से निर्मित मधु के समान इन्द्रिय-ग्राम के द्वारा विषयों का सेवन करता है।[१]

जगत्—जगत् का उपादान और निमित्त कारण ब्रह्म ही है। ब्रह्म के अतिरिक्त और किसी वस्तु की सत्ता नहीं है। विभिन्न मतों में जगत् के उपादान कारण रूप में द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, जीव आदि जो तत्त्व माने गये हैं वे ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं। जब सगुण ब्रह्म अनेक रूप होने की इच्छा करता है तो वह अपनी माया-शक्ति से सत्व, रज और तमोगुणों को क्रमशः जगत् की स्थिति, उत्पत्ति और संहार के लिए स्वीकार करता है। यह वैशिष्ट्य है कि उक्त तीनों गुण भी निर्गुण ब्रह्म के ही हैं।[२]

वास्तव में श्रीमद्भागवत ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी तत्त्व की पारमार्थिक सत्ता को स्वीकार नहीं करता। सब कुछ ब्रह्म ही है, जीव भी, जगत् भी। जब ब्रह्म सत्य है तो यह सब जगत् भी सत्य है। चतुःश्लोकी भागवत में इसका सारांश इस प्रकार दिया गया है 'सृष्टि से पूर्व केवल ब्रह्म था। सत्, असत्, प्रकृति आदि कुछ भी नहीं था। सृष्टि के अनन्तर भी ब्रह्म ही था, जगत् रूप में भी ब्रह्म ही है और इसका अन्त होने पर भी केवल ब्रह्म ही अवशिष्ट रहता है।[३] वेद में ब्रह्म की इस स्थिति को 'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्' इत्यादि ऋचा से निरूपित किया गया है।[४] विद्वानों ने सूक्ष्म विश्लेषण से यही अभिमत [illegible] है कि ब्रह्म स्वरूपतः 'निर्गुण', माया के संयोग से 'सगुण', अविद्या के कारण [illegible] रूप में आ जाने के कारण 'जीव' तथा विवर्त रूप में आने से 'जगत्'—इस प्रकार [illegible] का है। आचार्य वामन ने अपने ग्रंथ 'श्रुतिकल्पलता' के उपोद्घात में स्पष्ट [illegible] है—

निर्गुणं सगुणं जीवसंज्ञितं जगदात्मकम्।
[illegible]चतुर्विधं ब्रह्म श्रीमद्भागवते स्फुटम्॥[५]

अर्थात् श्रीमद्भागवत में निर्गुण, सगुण, जीव और जगत् संज्ञा से चार प्रकार के ब्रह्म का [illegible] है।[६]

१. [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] श्रीमद्भाग० ४. २४. ६४
२. [illegible]
[illegible] २. ५. १४
[illegible]
[illegible] २. ५. १८
३. [illegible]
[illegible] २. ६. ३२
४. [illegible] ८. ७. १७।
५. [illegible] श्री पं० [illegible] जी [illegible] का लेख—'भागवत में ईश्वर और [illegible]' [illegible]

प्रयुक्त हुए हैं क्योंकि भागवतकार के मत में तत्त्वतः वह एक ही वस्तु है। श्रीमद्भागवत में भगवान् का वर्णन निर्विशेष, सविशेष, निराकार, साकार विविध रूपों में हुआ है। अधिकारी भेद से साधक उनको अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार ग्रहण करता है।

श्रीमद्भागवत के दश लक्षण और प्रतिपाद्य आश्रय-तत्त्व

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य ब्रह्म अथवा भगवान् है। ग्रन्थ में इस प्रतिपाद्य तत्त्व को शास्त्रीय भाषा में 'आश्रय' कहा गया है। आश्रय का साधारण वाच्यार्थ 'शरण स्थान' है। ब्रह्म या भगवान् ही समस्त चराचर जगत् का एकमात्र शरण्य है। ब्रह्म ही आभास और निरोध का अधिष्ठान, निर्लेप और निर्लिप्त साक्षी है। श्रीमद्भागवत में इस आश्रयतत्त्व ब्रह्म के सम्यक् ज्ञान और उपलब्धि के लिए नौ विषयों का विवेचन हुआ है।[1] वे हैं—(१) सर्ग, (२) विसर्ग, (३) स्थान, (४) पोषण (५) ऊति, (६) मन्वन्तर, (७) ईशानुकथा, (८) निरोध और (९) मुक्ति। दसवाँ तत्त्व स्वयं आश्रय तत्त्व है। सर्ग विसर्गादि के सविस्तर निरूपण द्वारा ब्रह्म के साक्षित्व और भगवान् की अनन्त विभूति महिमा का ज्ञान कराया गया है। यों तो श्रीमद्भागवत के बारहस्कन्धों में से प्रत्येक में आश्रय-तत्त्व ब्रह्म का निरूपण किया गया है पर विशेषतया उसके सगुण और साकार रूप का वर्णन दशमस्कन्ध में तथा निर्गुण और निराकार रूप का वर्णन द्वादशस्कन्ध में प्राप्त होता है। दशमस्कन्ध में श्रीकृष्ण के स्वरूप का वर्णन एवं लीलागान है। श्रीकृष्ण ही श्रीमद्भागवत के अनुसार सगुण, साकार ब्रह्म हैं। वही 'आश्रय' हैं।

श्रीमद्भागवत में ब्रह्म (आश्रय) का स्वरूप समझने से पूर्व हमें प्रमुख भारतीय दार्शनिक आचार्यों के मत से ब्रह्मतत्त्व की विवेचना समझ लेना आवश्यक है, क्योंकि इनमें से प्रायः सभी ने श्रीमद्भागवत को परम प्रमाण माना है। अतः यहाँ हम संक्षेप में उनतु आचार्यों के मत का उल्लेख करते हैं—

श्री शंकराचार्य के अद्वैत सम्प्रदाय में ब्रह्म का स्वरूप—

ब्रह्मचिन्मात्र, एकरस, अखण्ड और अद्वितीय है। वह निर्विशेष है। केवल ब्रह्म ही सत्य है; उसके अतिरिक्त समस्त दृश्य जगत् मिथ्या है माया का प्रपंच है। दृश्य का निषेध हो जाने पर निषेध की सीमा में जो अनुच्छिष्ट, अवशिष्ट तत्त्व रह जाता है वही ब्रह्म है। ब्रह्म का निरूपण वर्णनात्मक, विधानात्मक पदावली से सम्भव नहीं है, अपितु उसका कुछ संकेत 'वह स्थूल नहीं है', 'अणु नहीं है', 'दीर्घ नहीं है', 'अचिन्त्य है', 'अलक्षण है', 'अग्राह्य है' आदि निषेधात्मक पदावली से हो सकता है। पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म सगुण

---

१ अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥
दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा॥ श्रीमद्भाग० २.१०.१.२

दृष्टि से उपासना की सिद्धि के लिए है। शंकर ने अपने शारीरक भाष्य में कहा है कि ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के वर्णन प्राप्त होने पर भी समस्त विशेष रहित तथा विकल्प रहित ब्रह्म के निर्गुण रूप को ही मानना चाहिए, इसके विपरीत अर्थात् सगुण रूप का नहीं। क्योंकि श्रुतियों में ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाले वाक्यों में सर्वत्र उसका उल्लेख 'अशब्द', 'अस्पर्श', 'अरूप', 'अव्यय' आदि निर्विशेष रूप में ही हुआ है।[1]

श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय में ब्रह्म का स्वरूप—

रामानुज के अनुसार ब्रह्म सगुण ही है। इस प्रकार रामानुज का मत शांकरमत से विपरीत ही हो गया। रामानुज ने ब्रह्म को 'अशेषकल्याणगुणगणाकर' और 'निखिलहेय-प्रत्यनीक' कहा है। ब्रह्म सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, सर्वाधार, निखिलकारणकारण, चिदचिद्-विशिष्ट, अन्तर्यामी, विभव-व्यूह-अर्चादि रूप में अवतार लेने वाला है। ब्रह्म को श्रुतियों में जहाँ 'निर्गुण' कहा गया है वहाँ तात्पर्य यह है कि ब्रह्म प्राकृत गुणों से रहित है और जहाँ उसे 'सगुण' कहा गया है, वहाँ तात्पर्य यह है कि वह दिव्य, अप्राकृत गुणों से युक्त है। जीव और जगत् उसके देह हैं और वह उन दोनों से नित्य युक्त है। श्रीरामानुज ने अपने 'श्रीभाष्य' में कहा है कि "इस विषय (ब्रह्मजिज्ञासा) में तत्त्व यह है कि चित् अचित् वस्तु शरीर से ब्रह्म ही सर्वदा 'सर्व' शब्द का अभिधेय है। चिदचित् उसके प्रकारान्तर मात्र हैं। ब्रह्म कभी कारणावस्था में होता है, कभी कार्यावस्था में। कारणावस्था में वह सूक्ष्म दशापन्न और कार्यावस्था में स्थूल दशापन्न होता है। क्रमशः नाम रूप रहित जीव-जड़ तथा नाम रूप भेद सहित जीव और जड़ उसके शरीर होते हैं। परब्रह्म से उसका [illegible] भिन्न नहीं है।[2]

श्री निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैत मत में ब्रह्म का स्वरूप—

ब्रह्म सगुण-निर्गुण दोनों है। सगुण निर्गुण का भेद या विरोध केवल शाब्दिक है, [illegible] नहीं है। ब्रह्म का स्वरूप अचिन्त्य है। वह अनन्त, अनादि, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, [illegible] और सर्वेश्वर है। श्रीकृष्ण का नामान्तर ही ब्रह्म है। ब्रह्म और जीव [illegible] जड़ (अचेतन) एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न तथा अत्यन्त अभिन्न हैं। जीव और [illegible] दोनों ही ब्रह्म के परिणाम हैं। ब्रह्म ही जगत् का उपादान और निमित्त कारण है। [illegible] ब्रह्म के ही अभिव्यक्ति है, ब्रह्म से भिन्न जगत् कोई वस्तु नहीं है। देखो

1. "[illegible] सर्वविशेषरहितं निर्विकल्पकमेव ब्रह्म प्रतिपत्तव्यं न तद्विपरीतम्। [illegible] वाक्येषु 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' इत्येवमादिषु अपास्त [illegible] ब्रह्मोपदिश्यते।"
   शारीरक भाष्य ३. २. ११

2. "[illegible] चिदचिद् वस्तुशरीरतया तत्प्रकारं ब्रह्मैव सर्वदा सर्वशब्दाभिधेयम्। तत् कदाचित् [illegible] सूक्ष्म दशापन्न चिदचिद्वस्तु शरीरं तत्कारणावस्थं ब्रह्म। [illegible] नामरूपव्याकरणार्ह स्थूल दशापन्नं चिदचिद्वस्तुशरीरं तच्च कार्यावस्थमिति [illegible] कार्यकारणं [illegible]।"
   श्रीभाष्य २. १. १५

पृथ्वी पृथ्वी से पैदा होता है, इसलिए दोनों भिन्न भी हैं।

श्रीमध्वाचार्य के द्वैत सम्प्रदाय में ब्रह्म का स्वरूप—

श्रीमध्वाचार्य दो प्रकार के तत्त्व मानते हैं। १ स्वतंत्र २. अस्वतंत्र। अशेष गुण सम्पन्न विष्णु स्वतन्त्र तत्त्व ही ब्रह्म है। यह स्वतन्त्र तत्त्व भाव और अभाव दोनों से विलक्षण है। जीव और जगत् ब्रह्म के अधीन हैं। ब्रह्म तथा जीव सर्वथा पृथक् हैं। इसी प्रकार ब्रह्म तथा जगत् भी नित्य पृथक् है। किन्तु रामानुज के मत में ब्रह्म ही जगत् के रूप में परिणत होता है। मध्वाचार्य ब्रह्म और जीव की नित्य भिन्नता मानते हुए दोनों में सेव्य-सेवक सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

श्री वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय में ब्रह्म का स्वरूप—

ब्रह्म शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप है। वह समस्त विरुद्ध धर्मों का आश्रय है। वह निर्गुण होने पर भी सगुण, निराकार होने पर भी साकार, अगम्य होने पर भी सुगम, आत्माराम होने पर भी रमण, निर्धर्मक होने पर भी सधर्मक है। ब्रह्म में परिणाम नहीं होता और होता भी है। वह अविकृत है और उसका परिणाम भी अविकृत है। श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं।

ब्रह्म के स्वरूप विवेचन में उपर्युक्त सम्प्रदायाचार्यों के भिन्न-भिन्न मतों के अतिरिक्त भारतीय दर्शनों में भी आश्रयतत्त्व (ब्रह्म) के भिन्न-भिन्न स्वरूप स्थापित किए गए हैं। गौतम के न्याय दर्शन तथा कणाद के वैशेषिक दर्शन में जगत् के कर्त्ता के रूप में ईश्वर को स्वीकार किया गया है। पतञ्जलि के योगदर्शन (अथवा सेश्वर सांख्य) में ब्रह्म (ईश्वर) को 'पुरुषविशेष' कहा गया है।[1] व्यास के वेदान्त दर्शन में ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन पूर्वोक्त पाँच आचार्यों के मत के सारांश रूप में दे ही दिया गया है।

श्रीमद्भागवत में ब्रह्म का स्वरूप—

जैसा कि पहले कहा जा चुका है वेदान्त दर्शन के आधारभूत ब्रह्मसूत्रों के रचयिता तथा श्रीमद्भागवतकार वेदव्यास एक ही व्यक्ति हैं, अतः स्पष्ट है कि ब्रह्मसूत्रों में आश्रय-तत्त्व (ब्रह्म) का जो स्वरूप गृहीत हुआ है श्रीमद्भागवत में भी वही स्वरूप मान्य है। श्रीमद्भागवत में यों तो सभी स्कन्धों के वर्ण्य विषयों का उद्देश्य आश्रयतत्त्व (ब्रह्म) का निरूपण करना है किन्तु दो स्थलों पर उसका साक्षात् लक्षण कहा गया है। वे स्थल हैं— द्वितीय स्कन्ध का दसवाँ अध्याय तथा द्वादशस्कन्ध का सातवाँ अध्याय, जहाँ कहा गया है कि "सृष्टि और लय अथवा प्रतीति और अप्रतीति का अभाव—दोनों ही जिसके द्वारा प्रकाशित होते हैं, वह परब्रह्म ही आश्रय अर्थात् अधिष्ठान है उसी को परमात्मा नाम से पुकारा जाता है। जो आध्यात्मिक पुरुष (जीव) है वही आधिदैविक नेत्रादि इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता हैं; जो उन दोनों को पृथक् करने वाला है, वह आधिभौतिक पुरुष (स्थूल शरीर) है। एक के अभाव में दूसरे की उपलब्धि नहीं हो सकती। परमात्मा,

---

१ क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। पातंजल योगसूत्र १. २४

आधिदैविक पुरुष तथा आधिभौतिक पुरुष—ये तीनों सापेक्ष हैं। इन तीनों के भाव और अभाव को जो जानने वाला है, वह निरपेक्ष साक्षी 'आश्रय' है। जीव की तीन अवस्थाओं–जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति के अभिमानी विश्व, तैजस और प्राज्ञ के मायामय रूपों में जिसका व्यतिरेक और अन्वय होता है वह जगत् की प्रतीति और बाध का अधिष्ठान ब्रह्म ही 'आश्रय है।'[1] श्रीमद्भागवत की चतुःश्लोकी में इसी आश्रयतत्त्व ब्रह्म का निरूपण किया गया है। जिसका सारांश यह है कि "सृष्टि के पूर्व केवल ब्रह्म ही ब्रह्म था। ब्रह्म के अतिरिक्त न भाव था न अभाव, और न दोनों का कारण अज्ञान था। उस समय न स्थूल जगत् था न सूक्ष्म जगत् और न दोनों का कारण प्रकृति ही थी। जहाँ यह सृष्टि नहीं है वहाँ भी केवल ब्रह्म है और इस प्रपच के रूप में जो कुछ प्रतीत हो रहा है वह भी ब्रह्म है। इस प्रपञ्च के न रहने पर जो कुछ अवशिष्ट रहेगा, वह भी ब्रह्म ही होगा। वस्तुतः न होने पर भी जो कुछ अनिर्वाच्य वस्तु ब्रह्म के अतिरिक्त दो चन्द्रमाओं की भाँति मिथ्या प्रतीत हो रही है अथवा विद्यमान होने पर भी आकाश के नक्षत्रों में राहु की भाँति ब्रह्म की प्रतीति नहीं होती, यह उस ब्रह्म के परमात्मरूप की मायाशक्ति है। जैसे प्राणियों के पाञ्चभौतिक लघुबृहत्कार्यों में वियदादि पंचमहाभूत उन शरीरों के कार्यरूप से निर्मित होने के कारण प्रवेश करते भी हैं और पहले से ही तत्तत्स्थान रूपों के कारण स्वेख विद्यमान रहने के कारण प्रवेश नहीं भी करते; उसी प्रकार उन भूतप्राणियों के शरीर की दृष्टि से ब्रह्म उनमें आत्मरूप से प्रविष्ट भी है और आत्मदृष्टि से ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई वस्तु न होने के कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी है। अन्वय (यह ब्रह्म है) और व्यतिरेक (यह ब्रह्म नहीं है), की अभिज्ञान-पद्धति से यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत और सर्वरूप ब्रह्म ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित है। यही वस्तुतः तत्त्व-पदार्थ है। आत्म-परमात्म-तत्त्व के जिज्ञासु के लिए इतना ही जानना अलम् है।"[2]

---

१ आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते।
स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते॥
योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः।
यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः॥
एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे।
त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रयः॥ श्रीमद्भाग० २. १०. १०, ३
व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु।
मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः॥ श्रीमद्भाग० १२. ७

२ अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥ श्रीमद्भाग० २. ६. ३२–३५

प्रतिष्ठापक है और इसी अद्वैत ब्रह्मवाद का युक्तियुक्त एवं सुस्पष्ट प्रतिपादन करने के लिए उसने अपने 'चतुःश्लोकी' रूप सूक्ष्म कलेवर को विस्तृत कर वर्तमान बृहत्काय धारण किया है। गीता में इसी आश्रयतत्त्व को 'पुरुषोत्तम' कहा गया है और इसे परा-अपरा प्रकृति, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, क्षर-अक्षर तथा प्रकृति पुरुष से परे माना गया है।[1] श्रीमद्भागवत में इसे 'ब्रह्म' 'परमात्मा' और 'भगवान्' तीनों ही नामों से सम्बोधित किया गया है और श्रीकृष्ण को इनसे अभिन्न माना गया है।[2] श्रीमद्भागवत में अनेक स्थानों पर इसका उल्लेख है।[3]

इस प्रकार इस दशमतत्त्व आश्रय (ब्रह्म=श्रीकृष्ण) की यथार्थोपलब्धि के लिए श्रीमद्भागवत में सर्ग विसर्गादि अन्य नौ तत्त्वों का वर्णन किया गया है।[4] अतः इन तत्त्वों का स्वरूप भी संक्षेप में यहाँ व्यक्त किया जाता है।

आश्रयतत्त्व के प्रतिपादक अन्य नौ तत्त्व

(१) सर्ग—'सर्ग' का अर्थ है सृष्टि। सृष्टि के प्रारम्भ और उद्भव के विषय में विश्व के विभिन्न धर्मदर्शनों में अनेक मत हैं। भारतीय वाङ्मय-वेद, उपनिषद्, दर्शन पुराणादि में ही विभिन्न मत मिलते हैं। स्वयं श्रीमद्भागवत में ही अनेक प्रकार से सृष्टि के उद्भव और विकास का वर्णन हुआ है। भारतवर्ष के आस्तिक दर्शनों में ब्रह्म को सृष्टि के आधार रूप में सभी ने स्वीकार किया है किन्तु सृष्टिक्रम में मतभेद पाया जाता है।

भारतीय दर्शन में सृष्टि-क्रम के सम्बन्ध में तीन मतवाद प्रमुख हैं—(१) आरम्भवाद, (२) परिणामवाद और (३) विवर्तवाद। न्याय और वैशेषिक दर्शनों में परमाणु रूप आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन को 'नित्य द्रव्य' तथा गुण, कर्म, सामान्य, विशेष आदि को 'पदार्थ' माना गया है। परमात्मा अनेक जीवात्माओं से सर्वथा विलक्षण तत्त्व है। सृष्टि के आरम्भ में वह निमित्त रूप से बिखरे परमाणुओं को संयुक्त करता है, फलतः नाना प्रकार की सृष्टि होती है। परमाणुओं का संयोग होना ही सृष्टि का आरम्भ है।

---

१ यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः। — श्रीमद्भगवद्गीता १५. १८

२ वदन्ति तत्तत्त्वविदः तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥ — श्रीमद्भाग० १. २. ११
कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥ — श्रीमद्भाग० १०. १४. ५५
कृष्ण कृष्ण महाभाग भक्तानामभयंकर।
× × × ×
त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः। — श्रीमद्भाग० ११. ७१. ७. २२

३ कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः॥ — श्रीमद्भाग० १०. १०. २९

४ दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा॥ — श्रीमद्भाग० २. १०. २

इसी से इस मत को 'आरम्भवाद' कहा जाता है। जो दर्शन परमाणुओं के संयोग में ईश्वर को निमित्त कारण मानते है, वे 'सेश्वर' हैं और जो नहीं मानते वे 'निरीश्वर'।

योगदर्शन अथवा सेश्वर सांख्य मे त्रिगुणात्मिका प्रकृति को सृष्टि का कारण माना गया है, परमाणुओ को नही। त्रिगुण के परिणाम से ही सृष्टि होती है। इसी से यह मत 'परिणामवाद' कहलाता है। कतिपय दार्शनिक आचार्य इस परिणाम मे ईश्वर को निमित्त मानते हैं और कतिपय आचार्य परिणाम को प्रकृति का सहज भाव ही मानते हैं। कतिपय आचार्य ब्रह्म में परिणाम मानते हुए भी ब्रह्म को अविकृत मानते हैं यही ब्रह्म का 'विरुद्धधर्माश्रयत्व' है। इस प्रकार परिणामवाद के तीन भेद हो जाते हैं—(१) 'ब्रह्म-परिणामवाद' जिसके समर्थक रामानुजाचार्य हैं, (२) 'गुण-परिणामवाद' जिसके समर्थक श्री मध्वाचार्य है, (३) 'अविकृत-परिणामवाद' जिसके समर्थक श्रीवल्लभाचार्य है।

अब तीसरे सिद्धान्त विवर्तवाद को लीजिए। इसके प्रमुख समर्थक श्री शंकराचार्य हैं। शंकर ब्रह्म से पृथक् परमाणु, प्रकृति और उसके परिणाम आदि किसी वस्तु की सत्ता स्वीकार नहीं करते। यद्यपि 'परिणाम' और 'विवर्त' शब्द एकार्थक से लगते हैं किन्तु वास्तव मे इनमें बड़ा भेद है। 'परिणाम' सत्य वस्तु में होने वाले वास्तविक परिवर्तन को कहते हैं और 'विवर्त' अवास्तविक होने पर भी भ्रमवश दिखाई पड़ने वाले परिवर्तन को कहते हैं। यह सृष्टि 'विवर्त' के कारण दीख पड़ती है। यह 'विवर्त' ही माया है जो कुछ नहीं है, भ्रम है। एक अद्वितीय सच्चित् वस्तु की ही प्रतिष्ठा विवर्तवाद का लक्ष्य है। सृष्टि आदि का वर्णन इसका लक्ष्य नहीं है। जहाँ सृष्टि आदि का वर्णन है वह अध्यारोप दृष्टि से अपवाद के द्वारा उसी अद्वितीय परमतत्त्व का ज्ञान कराने के उद्देश्य से है। कैसे भी हो, सबका अपवाद होकर स्वरूपोपलब्धि होनी चाहिए।

श्री निम्बार्काचार्य का मत है कि दृष्टि भेद से सभी सिद्धान्त सम्भव हो सकते हैं। पूर्वमीमांसा को मानकर चलने वाले आचार्य जीवों के अदृष्ट को ही सृष्टि का कारण मानते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से उत्तर मीमांसक (वेदान्ती) भी यही स्वीकार करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ लोगों ने ईश्वर के रमण, देव की इच्छा तथा काल की क्रीड़ा को सृष्टि का हेतु कहा है। पश्चिम के दर्शन में सृष्टि और अतीन्द्रिय जगत् के सम्बन्ध में कोई सुस्थिर सिद्धान्त नहीं है। पाश्चात्य दार्शनिक भी पहले अनेक पदार्थों के सयोग से सृष्टि का आरम्भ मानते थे किन्तु बाद मे उन्होंने विकासवाद स्वीकार किया। अभी पाश्चात्य दर्शन इस निर्णय पर नहीं पहुँच सका कि सृष्टि का मूलतत्त्व जड़ है या चेतन। भारतीय दर्शन सृष्टि के मूल में निर्विकल्प रूप से चैतन्य को स्वीकार करता है।

श्रीमद्भागवत में सृष्टि (सर्ग) तत्त्व का निरूपण अनेक प्रकार से किया गया है। उपर्युक्त सभी दार्शनिक अपने मत की पुष्टि के लिये उसे प्रमाण रूप में ग्रहण कर सकते हैं।[१] श्रीमद्भागवत में सर्ग का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

---

१ यथा, श्रीमद्भागवत ३. ११ में परमाणु के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है।

ब्रह्मणो गुणवैषम्याद्.................।।

× × ×

अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः।
भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ॥[1]

अर्थात् "ईश्वर की प्रेरणा से गुणों में क्षोभ होता है, वे रूपान्तरित होते हैं और तब जो आकाशादि पञ्चभूत, शब्दादि तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, अहंकार और महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है उसे 'सर्ग' कहते हैं। जब मूल प्रकृति में लीन गुण क्षुब्ध होते हैं, तब महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है, महत्तत्त्व से राजस, तामस और वैकारिक (सात्त्विक) तीन प्रकार के अहंकार बनते हैं। त्रिविध अहंकार से पञ्च तन्मात्राएँ (शब्दस्पर्शादि) इन्द्रिय और विषयों की उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति-क्रम का नाम 'सर्ग' है।"

अब प्रश्न यह है कि श्रीमद्भागवत में इतने भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों के अनुसार सर्ग (अथवा सृष्टि) का वर्णन क्यों है? क्या सृष्टि वर्णन ही उसका लक्ष्य है? नहीं। वास्तव में बात यह है कि श्रीमद्भागवत जो कि एक समन्वयात्मक महान् दार्शनिक ग्रंथ है, बुद्धि के समस्त सम्भव पहलुओं से सृष्टि के उद्भव के सम्बन्ध में विचार करके अन्त में ब्रह्म को ही उसके मूल में प्रतिष्ठित करता है। उसके सर्ग (सृष्टि) वर्णन का लक्ष्य यही है।

श्रीमद्भागवत में एक दूसरी दृष्टि से भी सर्ग-वर्णन किया गया है, वह है—भक्त की दृष्टि। भगवान् भक्त को आनन्दित करने के लिए, क्रीडा करने के लिए, रमण करके भक्त को अपनी लीला का आस्वादन कराने के लिए सृष्टि करते हैं। श्रुतियों में आया है, 'वह रमण करना चाहता था' (स रन्तुमैच्छत्) उसे अकेले जाना अच्छा न लगा, इसलिए उसने दूसरे को रचा। (स एकाकी नारमत् । ततो द्वितीयमसृजत) भगवान् जगत् को निर्माण कर भक्तों के साथ रमण करते हैं। चराचर जगत् भगवान की 'लीला' है। यह 'लीला' भक्त के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वस्तु है। भगवल्लीला का दर्शन और गान भक्त का चरम लक्ष्य है। इसीलिए तो भक्त भगवान् के समान ही जगत् को—जो भगवान् की लीला है—नित्य मानता है।

(२) विसर्ग—'विसर्ग' का अर्थ है विशिष्ट सर्ग, विशिष्ट सृष्टि। यह विशिष्ट सृष्टि ब्रह्मा की वासना विशिष्ट सृष्टि है।[2] विराट् के अण्ड (ब्रह्माण्ड) में ब्रह्मा द्वारा जो विविध सृष्टि होती है उसे विसर्ग कहते हैं। ब्रह्मा की सृष्टि मानसी सृष्टि है। बीजी नहीं। जीवों की वासना के अनुसार एक बीज से दूसरे बीज के होने—चराचर सृष्टि की उत्पत्ति को 'विसर्ग' कहते हैं। यह विसर्ग भगवान् की अनन्त लीला शक्ति और ज्ञान का ज्ञापक है।

---

१ श्रीमद्भागवत २, १०. ३ तथा १२. ७. ११

२ विसर्गः पौरुषः स्मृतः। श्रीमद्भाग० २. १०. ३.
पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः।
विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद् बीजं चराचरम्॥ श्रीमद्भाग० १२. ७. १२

सृष्टि की प्रत्येक विचित्रता और विविधता भगवान् के अनन्त सौन्दर्य और कौशल का भान कराती है। भक्त भगवान् की अचिन्त्य लीलाओं को देखकर मुग्ध होता रहता है, अतः स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत मे विसर्ग-वर्णन का उद्देश्य भी आश्रयभूत ब्रह्म (भगवान्) की अनुभूति और उपलब्धि ही है।

(३) स्थान—श्रीमद्भागवत मे इसे 'स्थिति'[1] भी कहा गया है। सृष्टि और विशिष्ट सृष्टि के वर्णन के पश्चात् यह स्वाभाविक है कि उसकी वास्तविक स्थिति बताई जाय। 'किन विशेष मर्यादाओं के पालन से सृष्टि स्थित है'। 'लोकों की संख्या और विस्तार कितना है।' 'उनका धारक और नियामक कौन है', इत्यादि प्रश्नों पर विचार करने से भी सर्व-लोक-नियन्ता भगवान् की ही सर्वश्रेष्ठता का अनुभव होता है। भगवान् ही समस्त चराचर का अतिक्रमण करके उनसे दस अंगुल आगे निकल जाते हैं—'अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।' वही सबसे विजयी होते हैं। इसी से श्रीमद्भागवत मे कह दिया गया है—"स्थितिर्वैकुण्ठविजयः" अर्थात् भगवान् की सर्वातिशायिनी विजय ही 'स्थिति' या 'स्थान' है। स्थिति से भगवान् की अद्भुत धारण-शक्ति और धारणशक्ति का किंचित् अनुमान होता है। प्रत्येक देशकाल के कर्तव्याकर्तव्य, सुकर्म कुकर्मादि के नियन्ता और न्यायदण्डादि के धारक भगवान् की अनन्त महिमा के स्थापन के उद्देश्य से 'स्थान' का वर्णन श्रीमद्भागवत मे किया गया है।

(४) पोषण—सृष्टि नियामक और न्यायाधिपति होने के साथ ही भगवान् अहैतुकी कृपा का आगार है। इसी से श्रीमद्भागवत में भगवान् के अनुग्रह को "पोषण" कहा गया है।[2] षष्ठ स्कन्ध में पोषण का वर्णन है। इसमें देव, दानव और मनुष्य सभी पर भगवान् के अहैतुक-अनुग्रह, अकारण-करुणा का दिग्दर्शन होता है। देवताओं में इन्द्र, जिसके द्वारा गुरु का अपमान और 'विश्वरूप' नामक ब्राह्मण का वध हुआ था, भगवान् के अनुग्रह का पात्र हुआ। दैत्यों में वृत्रासुर और मनुष्यों मे अजामिल भगवान् की अहैतुक कृपा के कारण मुक्त हो गए। श्रीमद्भागवत में इन तथा अन्य अनेक आख्यानों का उद्देश्य भगवान् की अनन्त अहैतुकी कृपा का ज्ञान कराना ही है।

(५) ऊति—ऊति का अर्थ है कर्म-वासना।[3] अपनी कर्मवासना के कारण ही जीव बन्धन में जकड़ा हुआ है। कर्म-बन्धन के कारण वह परमात्मतत्त्व को विस्मृत किए हुए है। वास्तव में कर्म की गति है भी बड़ी गहन—'गहना कर्मणो गतिः'।[4] जब तक कर्म-वासनाओं का स्वरूप स्पष्ट होकर उनकी दुःख-रूपता का अनुभव जीव को नहीं होता तब तक वह वासना से रहित नहीं होता और तब तक आनन्द के अधिष्ठान परमात्मा की उपलब्धि भी उसे नहीं होती। शुभ और अशुभ भेद से वासना दो प्रकार की होती है। महापुरुषों के प्रति प्रेम होने के फलस्वरूप उनके अनुग्रह से शुभ वासना तथा उनसे द्वेष करने से अशुभ वासना होती है। विष्णुपार्षद जय-विजय का सनकादि के द्वेष के कारण

1. स्थितिर्वैकुण्ठविजयः — श्रीमद्भाग० २. १०. ४
2. पोषणं तदनुग्रहः। — श्रीमद्भाग० २. १०. ४.
3. ऊतयः कर्मवासनाः। — श्रीमद्भाग० २. १०. ४
4. श्रीमद्भगवद्गीता ४, १७

करना स्पष्ट है। सदाचार की मर्यादाओं से जीवन का निर्माण कर भगवदनुग्रह का अनुभव करने के अनन्तर मन्वन्तरों का आलम्ब हो जाता है। श्रीमद्भागवत के सप्तमस्कन्ध में 'ऊति' का वर्णन है।

(६) मन्वन्तर— काल गणना में भारतवर्ष के ऋषि मुनियों ने आश्चर्यजनक सूक्ष्म-दृष्टि का उपयोग किया है। काल का परिमाण उन्होंने, क्षण के भी लघुतम भाग से लेकर 'कल्प' जैसे विशाल कालखण्ड तक बताया है क्योंकि काल तो अनादि और अनन्त है और ब्रह्म की स्थिति भी ऐसी ही है। अतः ब्रह्म के दिक्कालाद्यनवच्छिन्नत्व को सिद्ध करने के लिए काल गणना अनिवार्य है। श्रीमद्भागवत में इसी उद्देश्य से 'मन्वन्तर' का वर्णन किया गया है। काल के कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये चार अपेक्षाकृत लघु खण्ड हैं। यह एक चतुर्युगी है, जिसका परिमाण '४३२०००० मनुष्य वर्ष' है। इस प्रकार की ७१ चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है। एक मन्वन्तर में एक 'मनु' मनुष्यों से सद्धर्म का पालन कराते हैं। उसके बाद दूसरे मनु आते हैं। एक मनु से दूसरे मनु के आगमन का समयान्तर 'मन्वन्तर' कहलाता है। इस प्रकार जब १४ मन्वन्तर हो जाते हैं, तब एक 'कल्प' होता है जो ब्रह्मा का एक दिन है। ब्रह्मा की रात्रि भी इतनी ही बड़ी होती है।[1] इस हिसाब से ब्रह्मा सौ वर्ष जीवित रहते हैं। ब्रह्मा की पूरी आयु जिसे 'द्विपरार्ध' कहते हैं भगवान् के एक निमेष के समान है।[2] भारतीय मनीषियों ने ब्रह्म के अनाद्यनन्तत्व का कुछ आभास कराने के लिए ही इतनी विशाल काल गणना की है।

श्रीमद्भागवत में मन्वन्तर को 'सद्धर्म' कहा गया है।[3] प्रत्येक मन्वन्तर में मनु के रूप में सद्धर्म का विस्तार होता है। मनु १४ हैं—(१) स्वायम्भुव, (२) स्वारोचिष, (३) उत्तम, (४) तामस, (५) रैवत, (६) चाक्षुष, (७) वैवस्वत, (८) सावर्णि, (९) दक्षसावर्णि, (१०) ब्रह्मसावर्णि, (११) धर्मसावर्णि, (१२) रुद्रसावर्णि, (१३) देवसावर्णि और (१४) इन्द्रसावर्णि। इनमें से वर्तमान 'श्वेत वाराह कल्प' के प्रथम ६ मनु व्यतीत हो चुके हैं। सातवें वैवस्वतमनु वर्तमान हैं।

(७) ईशानुकथा—श्रीमद्भागवत में निर्गुण-ब्रह्म को तत्त्वतः स्वीकार करते हुए व्यवहार में सगुण ब्रह्म की उपासना का उपदेश दिया गया है। सगुण ब्रह्म अवतार धारण करता है। समस्त हिन्दू धर्म ग्रंथ अवतारवाद का समर्थन करते हैं।[4] ऋग्वेद में विष्णु के वामनावतार का उल्लेख "इद विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्" आदि श्रुतियों से किया गया है। अतः स्पष्ट है कि भगवदवतारों और भगवल्लीलाओं का गान भगवत्स्वरूपोपलब्धि के

१ सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ श्रीमद्भगवद्गीता ८, १७

२ कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेष उपचर्यते ।
अव्याकृतस्यानन्तस्य अनादेर्जगदात्मनः ॥ श्रीमद्भाग० ३, ११, ३७

३ मन्वन्तराणि सद्धर्मः...... श्रीमद्भाग० २, १०, ४

४ गीता ४-७ तथा श्रीमद्भागवत २, ७

लिए आवश्यक है। भगवच्चरित्र के समान ही भगवद्भक्तों के चरित्र और आख्यान भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं। क्योंकि भगवान् और भक्त में भेद नहीं रह जाता।[१] इसलिए श्रीमद्भागवत में विविध भगवदवतारों तथा भगवद्भक्तों की गाथाएँ 'ईशानुकथा' के नाम से साथ ही वर्णित हैं जो नाना आख्यानों से और भी विस्तृत हो गई हैं।[२] मध्यकालीन हिन्दी भक्ति साहित्य में भगवदवतारों, भगवल्लीलाओं और भगवद्भक्तों के पुण्य चरित्रों का गान एक प्रमुख वर्ण्य-विषय रहा है। भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि भगवन्नाम और भगवच्चरित्र के गान से अवश्य ही भगवत्प्राप्ति होती है और यही तक नहीं भगवान् से भी दुर्लभ उनकी भक्ति प्राप्त होती है। श्रीमद्भागवत में स्थान-स्थान पर भगवदवतारों का वर्णन और उनकी सूचियाँ दी हैं। आचार्यों ने अवतारों के अनेक भेद किए हैं—यथा पूर्णावतार, अंशावतार, गुणावतार व्यूहावतार, अर्चावतार, आवेशावतार, स्फूर्ति-अवतार। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान्—अवतारी पुरुष हैं।[३] श्रीकृष्ण की अनिर्वचनीय महिमा श्रीमद्भागवत के प्रत्येक स्कन्ध में वर्णित है।

(८) निरोध—समस्त जड़ चेतनात्मक प्रपंच जब अपनी उपाधियों के साथ ब्रह्म में लय हो जाता है, तब वह स्थिति 'निरोध' कहलाती है। यही प्रलय है। उस समय भगवान् अपनी शक्तियों सहित योगनिद्रा स्वीकार करके शयन करते हैं।[४] अवतारावस्था में भगवान् सृष्टि की विपरीत गति का निरोध करते हैं। सत् का प्रवर्धन और असत् का उन्मूलन करते हैं। असत् के प्रतीक हिरण्याक्ष, रावण, कंसादि का वध करते हैं।[५] यह भी निरोध ही है।

श्रीमद्भागवत में प्रलय का विस्तृत वर्णन है।[६] प्रलय चार प्रकार के होते हैं—(१) नित्य, (२) नैमित्तिक, (३) प्राकृत और (४) आत्यन्तिक। जगत् का निरन्तर क्षय और नित्य प्रति निद्रा के समय सृष्टि का अज्ञान में लीन हो जाना 'नित्य प्रलय' है। नैमित्तिक प्रलय दो प्रकार का होता है—(१) आंशिक प्रलय, (२) पूर्ण नैमित्तिक प्रलय, मन्वन्तर के बाद आंशिक प्रलय तथा कल्पान्त में पूर्ण नैमित्तिक प्रलय होता है। ब्रह्मा की आयु पूरी होने पर प्राकृत प्रलय होता है और ब्रह्माण्ड प्रकृति में सर्वथा विलीन हो जाता है। आत्यन्तिक प्रलय जीव का साधना चतुष्टय द्वारा स्व स्वरूप में स्थित होना है। उस समय उसके लिए संसार का आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है, इसका समय निश्चित नहीं। जब जब जीव भी भगवदनुग्रह हो जाय, तभी संसार का आत्यन्तिक प्रलय होता है। यही जीव की मुक्ति है।

---

१ तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्—नारद भक्ति, सूत्र ४१

२ अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम्।
पुंसामीशकथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः॥ श्रीमद्भा० २. १०. ५

३ एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥ ,, १. ३. २८

४ निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः। ,, २. १०. ६

५ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ गीता ४. ८

६ श्रीमद्भागवत—द्वादश स्कन्ध।

एवं अभाव दोनों के ही अधिष्ठान ब्रह्म की उपलब्धि होती है।

(६) मुक्ति—मुक्ति या मोक्ष जीव का परम पुरुषार्थ है। भगवत्प्राप्ति ही मुक्ति है। यह भगवत्प्राप्ति दो प्रकार से हो सकती है—(१) ब्रह्मतत्त्वज्ञान से (२) भगवत्प्रेम से। प्रकृति में प्रलय महाप्रलय आदि तो होते हैं किन्तु आत्यन्तिक प्रलय नहीं होता। किन्तु जब जीव पर भगवदनुग्रह होता है और वह भगवत्-स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है तब उसके लिए सृष्टि का आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है। यह आत्यन्तिक प्रलय ही मुक्ति है। जीव को यह मुक्ति कभी भी प्राप्त हो सकती है। देश, काल, रूप, लिंगादि भेद इसमें कोई व्यवधान नहीं डाल सकते। उस समय जीव के जन्म-मरण का चक्र छूट जाता है। वेदान्त दर्शन में इसे 'कैवल्यमुक्ति' कहा गया है। कैवल्य मुक्ति का उपाय है नाना नाम रूपों को उत्पन्न करके उनकी कामना से जीव को मृगतृष्णा में डालने वाली अविद्या का नाश। परा विद्या अथवा तत्त्वज्ञान से इस अविद्या का नाश होता है। तब द्रष्टा अपने स्वरूप में अवस्थित होता है। श्रीमद्भागवत में मुक्ति का जो लक्षण किया है वह वेदान्त-दर्शन-सम्मत कैवल्य-मुक्ति में पूर्णतया घटित हो जाता है। श्रीमद्भागवत में मुक्ति का लक्षण यह बताया गया है कि अज्ञान कल्पित कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनात्मभाव का परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाना अर्थात् परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार कर लेना ही मुक्ति है।[1] जब तक जीव 'इदं' पदवाच्य अन्यथा रूप (विपर्यय)[2] को नहीं छोड़ देता तब तक उसे 'सोऽहम्' पदवाच्य सहज स्वरूप आत्मा की अनुभूति नहीं होती।

श्रीमद्भागवत में इस मुक्ति का वर्णन वेदोक्त सिद्धान्त के अनुसार सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति के नाम से हुआ है।[3] श्रीमद्भागवत में कैवल्यमुक्ति का वर्णन तो है ही इसके अतिरिक्त पाँच प्रकार की मुक्तियों का वर्णन भी है। वे हैं—(१) सालोक्य मुक्ति, (२) सार्ष्टि-मुक्ति, (३) सामीप्य मुक्ति, (४) सारूप्य मुक्ति और (५) सायुज्य मुक्ति[4] भगवान् के नित्य चिन्मय धाम में निवास करना सालोक्य मुक्ति है। भगवान् के समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लेना सार्ष्टि मुक्ति है। भगवान् का सतत सामीप्य प्राप्त कर लेना सामीप्य मुक्ति है। भगवान् के समान रूप प्राप्त कर लेना सारूप्य मुक्ति है। भगवान् में लीन हो जाना, युक्त हो जाना सायुज्य मुक्ति है। इन पाँचों प्रकार की मुक्तियों के अनेक उदाहरण श्रीमद्भागवत में प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ शिशुपाल के कृष्ण से निरन्तर वैर-भाव के कारण ध्येयाकारता हो गई थी अतः मरणोपरान्त उसकी आत्म-ज्योति वासुदेव श्रीकृष्ण में समाविष्ट हो गई जिससे उसे सायुज्य मुक्ति प्राप्त हुई।[5] गोस्वामी तुलसीदास

---

१ मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः । — श्रीमद्भाग० २. १०. ६

२ विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्— — योगसूत्र १. ८

३ श्रीमद्भागवत २. २

४ श्रीमद्भागवत ३. २९. १३

५ चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् ।
पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्च्युता ॥ — श्रीमद्भाग० १०. ७४. ४५
सारूप्य मुक्ति के लिए द्रष्टव्य— श्रीमद्भाग० ११. ३०. ३

ने रामचरितमानस में जटायु की सारूप्य मुक्ति का उल्लेख किया है।[1] भक्ति दर्शन का मत है कि भगवत्कृपा ही मुक्ति का कारण होती है। किन्तु भगवान् का सच्चा भक्त उक्त पाँचों प्रकार की मुक्तियों में से कोई भी नहीं चाहता। वह चाहता है भगवान् के प्रति अनन्य अनुरक्ति और तज्जन्य उनकी चरण सेवा।[2] अतः मुक्ति से भी श्रेष्ठ और स्पृहणीय भगवद्भक्ति है, यह बात श्रीमद्भागवत में एकाधिक स्थलों पर कही गयी है। श्रीमद्भागवत में मुक्ति विषयक उन समस्त सिद्धान्तों का समावेश और सामंजस्य विद्यमान है, जो वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, योग आदि दर्शनों में प्रतिपादित है। हाँ अवश्य ही श्रीमद्भागवत, पूर्व मीमांसा में व्याख्यात सिद्धान्त का समर्थक नहीं है जो स्वर्ग के अतिरिक्त किसी प्रकार की मुक्ति स्वीकार नहीं करता।

श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य दशम आश्रयतत्त्व है जिसका सविस्तर विवेचन पहले किया जा चुका है। श्रीमद्भागवत के इस आश्रयतत्त्व की भी उपलब्धि भक्ति के राजमार्ग पर चलकर हो सकती है, अतः अब हम श्रीमद्भागवत की भक्ति के स्वरूप का विवेचन करेंगे।

श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य भक्ति-सिद्धान्त

श्रीमद्भागवत के तत्त्वज्ञान का संक्षिप्त विवेचन करने के उपरान्त उसके व्यावहारिक दर्शन भक्तिसिद्धान्त का विश्लेषण और विवेचन आवश्यक है, क्योंकि जिस ब्रह्मतत्त्व का दार्शनिक निरूपण श्रीमद्भागवत में किया गया है उसकी उपलब्धि का सर्व सुलभ राजमार्ग उसमें 'भक्ति' को ही बताया गया है। विद्वानों ने तो भागवत की रचना का उद्देश्य ही भक्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन घोषित किया है।[3] शुष्क दार्शनिक ज्ञान की तो भागवत में अनेक स्थानों पर निन्दा की गई है।[4] श्रीमद्भागवत के प्रथमस्कन्ध अध्याय ४, ५ में व्यास की उद्विग्नता और अशान्ति का जो चित्रण हुआ है उससे इस पुराण की रचना के उद्देश्य पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। महाभारत की रचना के व्याज से वेदों का उपबृंहण और निष्कपट रूप से सद्धर्म का आचरण करने पर भी व्यास की अन्तरात्मा को निर्वृति नहीं मिली,

---

1. गीध देह तजि धरि हरि रूपा।
भूषन बहु पट पीत अनूपा॥ — रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड

2. न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत।
वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदम्॥
कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः।
कुचकुंकुमगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः॥ — श्रीमद्भाग० १०. ८३. ४१. ४२

भक्त प्रवर नरसी मेहता का एक गुजराती पद भी इसी आशय का है जिसकी एक पंक्ति यह है—
"हरि नां जन तो मुक्ति न माँगे, जनम जनम अवतार रे।
नित सेवा नित कीर्तन ओच्छव निरखवुं नन्दकुमार रे॥"

3. गीता रहस्य (लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक) पृ० ५४५ (भागवत धर्म का उदय और गीता)

4. भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम्।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम्॥ — श्रीमद्भाग० १. ५. ८

व्यास ने जब नारद से अपनी इस कमी की बात कही तो नारद ने भी उनसे यही कहा कि जिस प्रकार उन्होंने धर्म अर्थ आदि का पूर्ण निरूपण किया उस प्रकार निर्मल भगवद्यश नहीं गाया। इसी कारण वे उद्विग्न और अशान्त हैं। जिस ज्ञान से भगवान् ही तुष्ट न हों वह ज्ञान तो मोघ ही है।[२] तब व्यास ने इस भगवच्चरितबहुल मंगलमय भागवतपुराण की रचना की और अपने आत्मज्ञानी पुत्र शुक को पढ़ाया।[३] इस प्रकार श्रीमद्भागवत का व्यावहारिक उद्देश्य भगवद्भक्ति का प्रकाशन है। इस पुराण में भक्ति को कैवल्य मुक्ति से भी अधिक स्पृहणीय बताया गया है और घोषणा की गई है कि एकान्त भगवद्भक्त तो अपुनर्भव रूप कैवल्य की भी कामना नहीं करते।[४]

श्रीमद्भागवत में निरूपित भक्ति सिद्धान्त का विमर्शन कराने से पूर्व हम संक्षेप में मानव हृदय में भक्ति भावना की सहजता पर विचार कर लेना उचित समझते हैं।

भक्ति एक सहज भाव—विकास-क्रम की दृष्टि से मनुष्य में रागात्मक भावनाओं का उदय बौद्धिक तर्क शक्ति से पहले ही होता है। अतः रागात्मक भाव—'भक्ति' का जन्म निश्चय ही ज्ञान से पूर्व हुआ होगा, यह सहज अनुमेय है। इस प्रकार भक्ति का उद्भव हम मनुष्य के उद्भव के साथ ही मानें तो अनुचित न होगा। विश्व के महान् से महान् बुद्धिशाली तत्त्वचिन्तकों ने परमतत्त्व के अविकल निरूपण में अपनी बौद्धिक शक्ति की

---

१ धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवोऽग्नयः।
मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम्॥
भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः।
दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत॥
तथापि बत मे दैह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः।
असम्पन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः॥
किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः।
प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः॥ — श्रीमद्भाग० १. ४. २८, ३१

२ भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम्।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम्॥
यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः॥ — श्रीमद्भाग० १. ५. ८, ९

३ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः॥
निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत्।
तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम्॥ — श्रीमद्भाग० १. ३. ४०–४१
इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम्।
संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद्विपुलीकुरु॥ — श्रीमद्भाग० २. ७. ५१

४ न किञ्चित् साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम।
वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्॥ — श्रीमद्भाग० ११. २०. ३४

नमस्यता को 'नेतिनेति' कहकर स्वीकार किया है। तत्त्वज्ञ मनीषियों ने अध्यात्मशास्त्र में अनेक स्थलों पर बुद्धि और तर्कवाद का निराकरण 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः', 'नैषा तर्केण मतिरापनेया' आदि सिद्धान्त वाक्यों द्वारा किया है। तब इस गहन और दुर्लभ परमात्म-तत्त्व को प्राप्त करने का अमोघ साधन क्या है? वह साधन है भक्ति। यही भक्ति मनुष्य में प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, विश्वास, श्रद्धा आदि अनेक भावों में व्यक्त होती है। श्रद्धा तो मनुष्य की मूल प्रवृत्ति ही है और जो जैसी श्रद्धावाला है, वास्तव में उसका स्वरूप भी वही है।[१] श्रद्धावान् को ही तत्त्वज्ञान भी प्राप्त होता है।[२] अश्रद्धालु के लिए वह अलभ्य है। श्रद्धातत्त्व का प्रतिपादन करने वाली एक सुन्दर आख्यायिका छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित है। एक बार श्वेतकेतु के पिता उसे यह उपदेश करना चाहते थे कि अव्यक्त और सूक्ष्म परब्रह्म ही समस्त चराचर दृश्य जगत् का मूल कारण है। उन्होंने श्वेतकेतु से एक वट वृक्ष का फल लाकर उसे तोड़ने के लिए कहा। पिता ने पुत्र से पूछा, 'इस फल के भीतर क्या है?' श्वेतकेतु ने कहा, 'इसमें छोटे-छोटे बहुत से बीज हैं।' पिता ने उसे फिर आज्ञा दी कि 'इनमें से एक बीज को तोड़कर देखो और बताओ कि उसमें क्या है?' श्वेतकेतु ने एक बीज को तोड़ा और देखकर बोला—"इसमें कुछ नहीं है। इस पर पिता ने कहा, "अरे, जिसे तुम 'कुछ नहीं' कह रहे हो, उसी से यह महान् वट वृक्ष उत्पन्न हुआ है।" तब पिताने उसे उपदेश दिया—'श्रद्धत्स्व"—"विश्वास करो" और इस कल्पना को केवल बुद्धि में ही स्थान मत दो अपितु हृदयंगम भी करो और आचरण में भी प्रतिबिम्बित होने दो।" इस छोटी सी उपनिषत्कथा से यही अभिप्रेत है कि निश्चयात्मक ज्ञान होने के लिए भी श्रद्धा एक अनिवार्य तत्त्व है। बुद्धि का अतिशय आश्रय ग्रहण करने वाले नैयायिकों को भी अनुमानादि प्रमाणों का अवलम्बन करना ही पड़ता है जो श्रद्धा-विश्वास के ही रूपान्तर हैं।

"लोक-जीवन के सर्वसाधारण व्यापार भी श्रद्धा, विश्वास प्रेम आदि सहज मानवीय वृत्तियों के आधार पर ही चलते हैं।" बुद्धि के द्वारा किसी बात के औचित्य अथवा अनौचित्य का निर्णय हो जाने पर हमारे श्रद्धा और विश्वास ही उसे कार्य रूप में परिणत करते हैं। बुद्धिगम्य ज्ञान को कार्य रूप में परिणत होने के लिए श्रद्धा और विश्वास की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है। बुद्धिमान् और जड़ दोनों के ही लिए श्रद्धा-विश्वास समान रूप से अवलम्बनीय साधन हैं। क्योंकि कुछ बातें ऐसी हैं जिनका समाधान तर्क से हो ही नहीं सकता।[३] अध्यात्म-पथ में तो श्रद्धा-विश्वास के सम्बल के बिना एक पग भी चलना असम्भव है। इस संबल के अभाव में तो सिद्ध लोग भी अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते।[४] लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपने 'गीता रहस्य' में

१ सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥ गीता १७, ३

२ श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम्, गीता ४, ३९

३ अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।
महाभारत भीष्मपर्व जम्बूखंड विनिमार्ण पर्व ५, १२ (गीता प्रेस)

४ भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥ रामचरित मानस, बालकाण्ड, श्लोक २

यह जान लिया था कि सृष्टि की जड़ में सृष्टि के नाशवान् और अनित्य पदार्थों से भिन्न या विलक्षण कोई एक तत्त्व है, जो अनादिअनन्त, अमृत, स्वतंत्र, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है, और मनुष्य उसी समय से उस तत्त्व की उपासना किसी न किसी रूप में करता चला आ रहा है।"[1] इस मत से स्पष्ट होता है कि श्रद्धा और भक्ति मनुष्य की एक सहज मनोभावना है और आदिम युग के मानव ने उसे ईश्वर की उपासना का माध्यम बनाया था। यद्यपि विश्व के प्राचीनतम साहित्य वेद में हम भक्ति को एक पृथक् दर्शन के रूप में वर्णित नहीं पाते तथापि उसके बीज हमें वैदिक ऋचाओं में अवश्य प्राप्त होते हैं।

भक्ति का विकास—एक सहज सामान्य रागात्मक भाव अनेक युगों में होते हुए मध्यकाल में किस प्रकार एक पृथक् भक्तिदर्शन के रूप में परिणत हो गया इस विषय पर अनेक विद्वानों ने बहुत विस्तार से विचार किया है। अतः हम भक्ति के विकास विषय पर अनावश्यक पिष्टपेषण न करके संक्षेप में केवल इतना कहना पर्याप्त समझते हैं कि भारतवर्ष में भक्ति का उद्भव एक सहज स्वाभाविक घटना है। इसके उद्भव का कारण न तो इस्लाम का अत्याचार है और न ईसाइयत का प्रभाव।[2] भारतीय भक्ति के बीज वैदिक ऋचाओं में विद्यमान हैं। ये ऋचाएँ श्रद्धा और भक्ति की उत्कट भावनाओं से पूरित हैं। इन्द्र, वरुण, अग्नि, मित्र, सावित्री, उषा आदि के प्रति उद्गीत ऋचाओं में हृदय को द्रवित कर देने की शक्ति है। कौन कह सकता है कि ये ऋचाएँ भक्ति-परक नहीं हैं।[3] उपनिषदों में हम और भी स्पष्ट रूप में भक्ति सिद्धान्त का दर्शन करते हैं। ईश्वर के प्रति अव्यभिचरित प्रेम और प्रपत्ति का संकेत उपनिषदों में अनेक स्थलों पर हुआ है।[4] 'यह आत्मा केवल उसी को वास्तविकतया अपना ज्ञान कराता है, जिस पर यह कृपा करता है, जिसे यह चुन लेता है।[5] इससे कृपा या अनुग्रहवादी भक्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन होता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् (६. २३) में अनुग्रह और प्रपत्ति (पूर्ण शरणागति) पर जोर दिया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् (२. ७) तथा बृहदारण्यकोपनिषद् (४. ३. ३२) में ब्रह्म को परमानन्द के रूप में वर्णित किया गया है जो भक्ति सिद्धान्त का पोषक है। महाभारत का नारायणीय अंश[6] भक्ति सिद्धान्त की स्पष्ट घोषणा।

---

१ गीतारहस्य—बालगंगाधर तिलक। पृ० ४२८

२ हिन्दी साहित्य : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी। पृ० ८८

३ त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे। ऋग्वेद ८।९८।११

४ आत्मैवेदं सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति।—छान्दोग्योपनिषद् ७. २५. २

अर्थात् 'यह सब कुछ परमात्मा ही है; जो ऐसा देखता, मानता और समझता है, वह परमात्मा में परम अनुराग, क्रीडा, उसके संयोग का सुख तथा उसी में आनन्द का अनुभव करता हुआ स्वराट् (परमात्मस्वरूप) हो जाता है।' उपनिषद् के इस वाक्य में दर्शन, मनन, ज्ञान आदि साधन आत्मरति रूपा भक्ति के अंग हैं, यह स्पष्ट ही है।

५ यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः। कठोपनिषद् १. २. २३, मुण्डकोपनिषद् ३. २. ३

६ महाभारत भीष्मपर्व अध्याय ६५—६७ (गी० प्रे०)

करता है। गीता में तो अनेक स्थलों पर भक्ति का समर्थन बड़े ही प्रबल शब्दों में किया गया है और भगवत्प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन भक्ति को ही बताया गया है।[1] भक्ति के द्वारा साधक भगवान् को जान लेता है कि भगवान् क्या है और उसका विस्तार कितना है। उसके अनन्तर वह भगवान् में प्रविष्ट भी हो जाता है। वेदाध्ययन, तपश्चर्या, दान, यज्ञ आदि किसी साधन में भगवान् के दर्शन सम्भव नहीं। किन्तु अनन्य भक्ति से भगवान् का ज्ञान, दर्शन और प्रवेश भी सुलभ हो जाता है। भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता की घोषणा गीता में इस प्रकार बहुत पहले ही करदी गई है। पुराणसाहित्य के उदय के साथ भक्ति सिद्धान्त की प्रतिष्ठा और भी दृढ़ हो गई। विष्णुपुराण में भक्ति का बड़ा विशद और स्पष्ट उल्लेख है। विष्णु को परमदैवत के रूप में स्थापित करके उनकी अनन्य भक्ति का उपदेश इस पुराण में किया गया है।

भक्ति का दार्शनिक विवेचन अनेक सूत्र ग्रंथों में हुआ। इन सूत्र ग्रंथों में 'शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र' और 'नारदभक्तिसूत्र' प्रमुख हैं। इन सूत्र ग्रंथों का निर्माणकाल अज्ञात है किन्तु अनुमानतः इनकी रचना महाभारत के बाद पौराणिक भक्ति धर्म के उदय के साथ हुई जान पड़ती है।[2] शाण्डिल्य भक्तिसूत्र में ईश्वर के प्रति परम अनुराग को भक्ति की संज्ञा दी गयी और नारद भक्ति सूत्र में भी भक्ति को ईश्वर के प्रति परम प्रेम कहा गया है।[3] शाण्डिल्य भक्तिसूत्र में भक्ति सिद्धान्त का सार यह है कि भक्ति के द्वारा मनुष्य को अमृतत्व प्राप्त होता है। भक्ति द्वेषविरोधिनी तथा रस शब्द से प्रतिपादित होने के कारण रागस्वरूपा है। भक्ति का फल अनन्त है। भक्ति मुख्य है, क्योंकि ज्ञान योगादि अन्य साधन उसकी अपेक्षा रखते हैं। अन्य साधन अंग हैं और भक्ति अंगी है।[4] नारद-भक्तिसूत्र में प्रतिपादित भक्ति सिद्धान्त का सार यह है कि भक्ति अमृतस्वरूपा है। भक्ति को प्राप्त कर पुरुष, सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है, फिर वह कुछ नहीं चाहता। भक्ति कामना युक्त नहीं है क्योंकि वह निरोधस्वरूपा है। लौकिक और वैदिक समस्त कर्मों के त्याग को निरोध कहते हैं। पाराशर्य व्यास के मतानुसार भगवान् की पूजा आदि में अनुराग होना भक्ति है। गर्गाचार्य के मत से भगवत्कथा में अनुराग होना भक्ति है। शाण्डिल्य के मत में आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग होना भक्ति है और नारद के मत में सब कर्मों को भगवदर्पण कर भगवान् के विस्मरण में परम व्याकुल होना

---

१ भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥ गीता १८, ५५
तथा—
नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥ गीता ११–५३, ५४

२ गीता रहस्य : लोकमान्य तिलक : भागवत धर्म का उदय और गीता : पृ० ५४५

३ सा परानुरक्तिरीश्वरे : शाण्डिल्य भक्तिसूत्र, प्र० अध्या० प्र० आह्निक सूत्र २
सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा : नारदभक्तिसूत्र, २

४ शाण्डिल्यभक्तिसूत्र १. १, ३

ही भक्ति है।[1] यह भक्ति स्वयं फलरूपा है।[2] जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह भक्ति प्रेमरूपा है। इस प्रेम का स्वरूप मूक पुरुष के आस्वादन के समान अनिर्वचनीय है।[3] किन्तु इस प्रेम का किंचित् आभास देने के लिए नारद ने उसका लक्षण बताया है कि यह प्रेम गुणरहित, कामनारहित, प्रतिक्षण वर्धमान, अविच्छिन्न, और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर-अनुभव रूप है।[4] इस प्रकार इन सूत्र ग्रंथों में भक्ति का सूक्ष्म तात्विक विवेचन एवं सर्वोच्च महत्व प्रतिपादित है। किन्तु वैष्णव भक्ति का जो विकास हुआ पुराणों में प्रकट हुआ वह भक्ति के चरम विकास का द्योतक है। पुराणों में भी वैष्णव भक्ति को चरमावस्था तक पहुँचाने का श्रेय श्रीमद्भागवत महापुराण को है। यह निर्विवाद और निर्विकल्प रूप से कहा जा सकता है कि भक्ति का प्रतिपादक श्रीमद्भागवत से अधिक सबल और प्राप्त-प्रमाणभूत अन्य कोई ग्रंथ भारतीय वाङ्मय में विद्यमान नहीं है। इसी को आधार मान कर मध्यकाल में अनेक वैष्णव आचार्यों ने भक्ति-ग्रन्थ पर अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे जिनकी चर्चा आगे की जायगी। भक्ति विकास के इस संक्षिप्त विवेचन में यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि श्रीमद्भागवत पुराण के उदय के पूर्व ही इस आस्तिक धर्म ने 'नारायणीय', 'सात्वत' 'ऐकान्तिक', 'भागवत' और 'पांचरात्र' आदि अनेक नाम धारण कर लिए थे।[5]

वैष्णव भक्ति का उपास्य तत्व विष्णु—'विष्णु' शब्द विष्लृ व्याप्तौ धातु (वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी, धातु पाठ, जुहोत्यादि गण १३ वीं धातु) से बना है। 'विष्णु' सर्वव्यापी सत्ता को कहते हैं। इस अर्थ में विष्णु ब्रह्म का ही पर्याय हो जाता है। ऋग्वेद में विष्णु शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है किन्तु सर्वत्र ही विष्णु एक दिव्य, महान् और सर्वव्यापी सत्ता के रूप में गृहीत हुआ है।[6] वेद में ही विष्णु को हम ब्रह्म के साकार रूप में प्रतिष्ठित पाते हैं तथा उनके पराक्रम पूर्ण कार्यकलापों का वर्णन पाते हैं। विष्णु के 'त्रिविक्रम' रूप का बीज ऋग्वेद में मिलता है।[7] उपनिषत्काल में विष्णु की प्रतिष्ठा और बढ़ी और विष्णु के धाम को सर्वोच्च पद माना जाने लगा।[8] महाभारत में विष्णु को ब्रह्म का ही साकार रूप स्वीकार कर लिया गया है और अनुशासनपर्व में विष्णु की अपार महिमा 'विष्णुसहस्रनाम' के नाम से वर्णित है।[9] विष्णु को ही महाभारत में 'वासुदेव'

---

१ नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ॥ नारदभक्ति सूत्र १९
२ स्वयं फलरूपेति ब्रह्मकुमाराः नारद भक्ति सूत्र, ३०
३ अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् । मूकास्वादनवत् नारद भक्ति सूत्र ५१, ५२
४ गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ॥ नारद भक्ति सूत्र ५४
५ महाभारत शान्ति पर्व अध्याय ३३५ से ३४८ तक (महाभारत अनुशासन पर्व के अन्तर्गत)
६ Aspects of Early Vishnuism by J. Gonda p. 3
७ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । ऋग्वेद १, २२, १७
८ विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ कठोपनिषद्, तृ. वल्ली, श्लोक ९
९ ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः ।
भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ विष्णुसहस्रनाम श्लोक १४

भी कहा गया है।[1] गीता में भी वासुदेव का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है और उसको ब्रह्म के समकक्ष ही माना गया है।[2] विष्णु की अनन्त महिमा का वर्णन करने के लिए विष्णुपुराण की रचना हुई। विष्णु को साकार उपास्य के रूप में ग्रहण कर उसे हृदय के अति निकट लाने की अभिलाषा में उसे नराकार प्रदान किया।[3] विष्णु ही नारायण के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। सृष्टि-क्रम विवेचन में ऋग्वेद में नारायण का संकेत प्राप्त होता होता है।[4] सृष्टि-क्रम में नर से जल उत्पन्न हुआ वह 'नार' कहलाया और यह 'नार' (जल) जिसका अयन (आवास) हुआ वह 'नारायण' कहलाया। नारायण शब्द की यह व्युत्पत्ति मनुस्मृति में भी प्राप्त होती है।[5] क्षीरसागरशायी नारायण को ही 'केशव' (के [illegible]) कहा गया और वह विष्णु के प्रमुख नामों में गृहीत हुआ।[6] गीता [illegible] पर 'केशव' नाम से सम्बोधित किया गया है।[7] श्रीमद्भागवत [illegible] समस्त विकास देखते हैं जिसका संक्षिप्त विवेचन ऊपर किया गया है। [illegible] विभिन्न नामों से वैष्णव भक्ति में परम दैवत, परम उपास्य, इष्टदेव के रूप में [illegible] है। श्रीकृष्ण भी तत्वतः वैष्णव भक्ति का उपास्य तत्त्व विष्णु ही हैं [illegible] अनिर्वचनीय महिमा का उद्घोष श्रीमद्भागवत महापुराण का चरम [illegible] है।

[illegible] एवं विष्णु तत्त्व—श्रीमद्भागवत में विष्णु को विराट् पुरुष के रूप में [illegible] गया है और उसके स्थूल रूप को साधक के लिए धारणा का आश्रय [illegible] है।[8] [illegible] भविष्यत् और वर्तमान समस्त जगत जिस ब्रह्माण्ड में प्रतीत होता है [illegible] उस विष्णु का स्थूल विग्रह विशेष है। उसके चरण के तलुए पाताल हैं। [illegible] सहस्र शीर्षा पुरुष का सिर सत्य लोक है। इन्द्रादि देवगण बाहु, [illegible] श्रवणेन्द्रिय, अश्विनीकुमार नासाछिद्र, गन्ध घ्राणेन्द्रिय, प्रज्वलित [illegible] अन्तरिक्ष, चक्षु इन्द्रिय सूर्य, दोनों पलक रातदिन, भृकुटि विलास [illegible] और जिह्वा रस है। यम उसकी डाढ़ें, जगत्मोहिनी माया उसकी [illegible] विशेष अनन्त सृष्टि है। प्रजापति ब्रह्मा उसकी जननेन्द्रिय, मित्रावरुण [illegible] और पर्वत समूह उसका अस्थि संघ है। नदियाँ उस विराट् पुरुष [illegible], वृक्ष रोमावली, प्रबल वायु श्वास, कालगति और गुण प्रवाह कर्म

---

1. [illegible] विदिमात्मिकाः।
   [illegible] महाभारत. शान्ति पर्व अध्या. ३४७ श्लोक ६४.
2. [illegible] सुदुर्लभः। गीता. ७ १६
3. [illegible] सं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० २०–३०
4. [illegible]
5. [illegible] आपो वै नर सूनवः।
   [illegible] नारायणः स्मृतः॥ मनुस्मृति अ० १ श्लोक १०
6. [illegible] अमरकोष पृ० १०
7. [illegible] दुर्निवारहेतुः।
   [illegible] केशव॥ गी १.३१.
8. [illegible] परस्मात्परः। श्रीमद्भाग. २. १. २५

है। मेघमाला उसका केशकलाप, सन्ध्या वस्त्र, अव्यक्त (मूलप्रकृति) हृदय, और चन्द्रमा मन है। महत्तत्त्व उसका चित्त, और रुद्र उसका अन्तःकरण है।[1] श्रीमद्भागवत में विष्णु का ही सर्वोपरि महत्त्व है[2] और त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) में ब्रह्मा और रुद्र को विष्णु का ही अंशभूत माना गया है, क्योंकि विष्णु स्वयं परं पुरुष ब्रह्म हैं और उन का अन्तर्बोध ब्रह्म के द्वारा होता है।[3] यह विष्णु जगत् का परम कारण, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाश और भेदरहित ब्रह्मा एवं रुद्र है। तत्त्व वस्तुतः एक है; कार्य भेद से उसके ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र तीन रूप हो जाते हैं। जिस प्रकार मनुष्य अपने अंगों सिर, हाथ, पादादि में अपने से पृथक् बुद्धि नहीं रखता, उसी प्रकार तत्त्ववेत्ता पुरुष ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु में पार्थक्य नहीं करता।[5] समस्त भूतों के अधिष्ठान इस दुराराध्य विष्णु का परमपद प्राप्त कर लेना जीव का चरम पुरुषार्थ है।[6] विष्णु का यह लोक 'वैकुण्ठ' कहलाता है। यह लोक तम से परे सतत भास्वर है और इस लोक में पहुँच कर जीव को फिर संसार चक्र में नहीं लौटना पड़ता।[7] यह धाम शोकरहित, नित्य आनन्दरूप है।[8]

---

१. पातालमेतस्य हि पादमूलं
पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्।
महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ
तलातलं वै पुरुषस्य जंघे॥ श्रीमद्भाग० २. १. २६, आदि

विशेष द्रष्टव्य—श्रीमद्भागवत द्वितीय स्कन्ध प्रथम, पंचम एवं षष्ठ अध्यायों में सम्पूर्णतया ही विष्णु के विराट् रूप का बड़ा ही ओजस्वी वर्णन है जिसे पढ़कर वैदिक पुरुषसूक्त (सहस्रशीर्षा पुरुषः आदि) का तत्काल ध्यान आ जाता है।

२ तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः।
भूयांसं श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम्॥ श्रीमद्भाग० १०. ८९. १९

३ तं त्वामहं ब्रह्म परं पुमांसं
प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम्।
स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं
वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम्॥ श्रीमद्भाग० ३. ३३. ८

४ अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः॥ श्रीमद्भाग० ४. ७. ५०

५ यथा पुमान्न स्वांगेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित्।
पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः॥
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥ श्रीमद्भाग० ४. ७. ५३ ५४

६ सर्वभूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान्।
आराध्याप दुराराध्यं विष्णोस्तत्परमं पदम्॥ श्रीमद्भाग० ४. १२. १२

७ ततो वैकुण्ठमगमद् भास्वरं तमसः परम्।
यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः।
शान्तानां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते पुनः॥ श्रीमद्भाग० १०. ८८. २५, २६

८ तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो—
ब्रह्मेति यद् विदुरजस्रसुखं विशोकम्। श्रीमद्भाग० २. ७. ४७

कहलाया।[1] यही नारायण देवगणाधिपति विष्णु है। नारायण ने अवतार लेकर त्रिलोकी के महान् कष्ट का हरण किया अतः मनु ने उसका नाम 'हरि' रखा।[2] प्रणतभक्त की आर्ति का हरण करने वाले कृपालु 'हरि' का नाम इस अर्थ में सूर, मीरा आदि कृष्ण भक्त कवियों ने 'हरि तुम हरो जन की भीर' आदि अनेक गीतों में ग्रहण किया है। अमरकोष (५वीं शती) में परिगणित विष्णु के ३९ नामों[3] में से प्रायः सभी का प्रयोग श्रीमद्भागवत में हुआ है और 'वासुदेव' तथा 'कृष्ण' नाम भी 'विष्णु' या 'हरि' के पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त हुए हैं।[4] कृष्ण विष्णु का ही सत्त्वमय विग्रह है।[5]

अवतारवाद—भारतवर्ष में सगुण भक्ति का आधार अवतारवाद है। यह सगुण [illegible] है [illegible] हमारे आलोच्यकाल की भक्ति का सुगठित शरीर [illegible] वर्ष में कब से उद्बुद्ध हुई, इस विषय में प्रामाणिक [illegible] विद्वानों का मत है कि सम्भवतः यह धारणा [illegible] पौराणिक-साहित्य में अवतारवाद प्रबल रूप से [illegible] है। [illegible] भारतवर्ष में अवतारवाद के प्रति गहरी आस्था पाई

---

1. [illegible]
[illegible] श्रीमद्भाग० २, १०, १०, ११
[illegible] श्रीमद्भाग० ११, १५, ३८

2. [illegible] श्रीमद्भाग० २, ७, २

3. [illegible]

—अमरकोष, प्रथमकाण्ड स्वर्गवर्ग श्लोक ३५-४२

4. [illegible] श्रीमद्भाग० ४, ३० २
[illegible] ,, १२, २, २०

5. [illegible] प्रसाद द्विवेदी : पृ० १२३

जाती है। लोगों का आज भी दृढ़ विश्वास है कि भगवान् देवता, मनुष्य अथवा अन्य किसी प्राणी की आकृति धारण कर जीवों का पालन और उद्धार करते हैं।[1] गीता के अनुसार अवतार का प्रयोजन साधुओं का परित्राण, पापियों का विनाश और धर्म की स्थापना है। महाभारत में दो स्थलों पर अवतारों का वर्णन है। एक स्थान पर छै और दूसरे स्थान पर दस अवतारों का उल्लेख है। वे है—(१) वराह, (२) नृसिंह, (३) वामन, (४) परशुराम, (५) दाशरथि राम, (६) वासुदेवकृष्ण, (७) हंस, (८) कूर्म, (९) मत्स्य और (१०) कल्कि महाभारत के जिस अंश में अन्तिम चार अवतारों का उल्लेख है उसे कुछ लोग प्रक्षिप्त अनुमान करते है।[2] किन्तु सभी पुराणों में विष्णु के दस अवतारों और उनके चरितों का वर्णन है। वर्तमान काल में विष्णु के इन दस अवतारों की मान्यता है—(१) मत्स्य, (२) कूर्म, (३) वराह, (४) नृसिंह, (५) वामन, (६) परशुराम, (७) रामचन्द्र, (८) कृष्ण, (९) बुद्ध और (१०) कल्कि। मध्यकाल में इन दस अवतारों की महिमा और चरितगान का बड़ा प्रचार रहा है। राजस्थान में आज भी लोकगीतों के रूप में वामनादि अवतारों के चरित गाए जाते हैं। जिन्हें इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं सुना है। जयदेव (११वीं शताब्दी) ने अपने 'गीतगोविन्द' में सुन्दर गीतियों में दशावतारचरित गाया है।[3] पृथ्वीराजरासो में भी 'दशम' नाम से दशावतारचरित का गान है। नवीं दसवीं शताब्दी के बाद से 'दशावतारचरित' नाम से भारत में विपुल स्तोत्र और काव्य साहित्य की रचना हुई है।[4] मध्यकाल के प्रायः सभी धर्म सम्प्रदायों में अवतारों की मान्यता है।

श्रीमद्भागवत में अवतार-विवेचन वैसे तो सभी पुराणों में भगवान् के अवतारों का वर्णन हुआ है किन्तु श्रीमद्भागवत में अवतार विवेचन विशेष वैज्ञानिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से किया गया है। इसमें सभी प्राचीन परम्पराओं का सामंजस्य है। श्रीमद्भागवत में अवतारों के तीन भेद किये गये है। (१) पुरुषावतार, (२) गुणावतार और (३) लीलावतार। पुरुषावतारों में संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं।[5] वासुदेव—[illegible] है। यह चतुर्व्यूह है जिसका विवेचन इसके द्वारा पृथक् रूप से किया है। गुणावतारों में विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र हैं, जो क्रमशः प्रकृति के सत्त्व, रज, तम गुणों से युक्त हैं। ब्रह्मा जगत् की उत्पत्ति, विष्णु स्थिति और रुद्र संहार के कर्ता हैं।[6]

---

१ [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

४ [illegible]

५ [illegible]

६ [illegible]

यही रूप प्रमुख है और भगवान् के अन्य नाना अवतारों का उद्भव स्थान और लयस्थान है।[1] श्रीमद्भागवत में इस नारायण के निम्नलिखित बाईस अवतार बताए गये हैं क्रम यह है— (१) सनकादि (२) वराह (३) नारद (४) नरनारायण, (५) कपिल (६) दत्तात्रेय (७) यज्ञ (८) ऋषभ, (९) पृथु, (१०) मत्स्य, (११) कूर्म, (१२) धन्वन्तरि, (१३) मोहिनी, (१४) नृसिंह, (१५) वामन, (१६) परशुराम, (१७) वेदव्यास, (१८) राम, (१९) बलराम, (२०) कृष्ण, (२१) बुद्ध और (२२) कल्कि।[2] श्रीमद्भागवत के अनुसार नारायण के असंख्य अवतार हो सकते हैं जैसे किसी अक्षय सरोवर से असंख्य स्रोत निकलते हैं।[3] भगवान् का विराट् पुरुष (नारायण) रूप माया के महत्तत्त्व आदि गुणों से [illegible] एवं ज्ञानस्वरूप हैं। इस प्रकार [illegible] है। भगवान के जन्म और कर्म परम-[illegible] हैं।[4]

[illegible] द्वितीयस्कन्ध के सप्तम अध्याय में है। [illegible] जिनकी चर्चा अभी हो चुकी है। [illegible] (२) सुयज्ञ, (३) हरि, (४) [illegible] सनातन और सनत्कुमार) [illegible] (११) मत्स्य, (१२) कच्छप, (१३) [illegible] धन्वन्तरि, (१७) परशुराम, [illegible] बुद्ध और (२४) कल्कि। [illegible] पहली सूची में परिगणित [illegible] स्थान पर हरि, हयग्रीव, हंस [illegible]

श्रीमद्भागवत [illegible] दशमस्कन्ध के ४० वें [illegible] में है। चौथी सूची में [illegible] वर्णन है। स्वनिर्मित पंचभूतों [illegible] पुरुष (जीव) रूप से प्रवेश

[illegible]

[illegible] श्रीमद्भागवत १. ३. ५

[illegible]

[illegible] श्रीमद्भागवत १. ३. २६

[illegible]

जाता है। नारायण के रजोगुणांश से ब्रह्मा, सत्वांश से विष्णु और तमोगुणांश से सर्व संहारक रुद्र उत्पन्न होते हैं। यही गुणावतार हैं।[1] इस सूची के कुछ अवतारों को 'कला-वतार' भी कहा गया है।[2] लीलावतारों में सभी सूचियों के सभी अवतारों का उल्लेख है। चतुर्थ सूची के अन्तर्गत गजराज का उद्धार करने वाले 'हरि'[3] को भी यदि हम विष्णु का पृथक् अवतार मानें तो लीलावतारों की संख्या सत्रह हो जाती है जिनका क्रम यह है— (१) नर-नारायण, (२) हंस, (३) दत्तात्रेय, (४) सनकादि, (५) ऋषभ, (६) हयग्रीव, (७) मत्स्य, (८) वराह, (९) कूर्म, (१०) हरि, (११) नृसिंह, (१२) वामन, (१३) परशुराम, (१४) राम, (१५) कृष्ण, (१६) बुद्ध और (१७) कल्कि।

अवतार प्रयोजन – श्रीमद्भागवत में भगवान् के अवतार के अनेक हेतु बताये गये हैं। गीतोक्त 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' आदि कारणों का समर्थन तो श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर है ही[4] इसके अतिरिक्त भी भगवान् के अवतार के निम्नलिखित प्रयोजन बताए गये हैं—

१ केवल लीला विस्तार[5]।

२—देव कार्य सम्पादन[6]।

---

१ श्रीमद्भाग० ११. ४. ५

२ ,, ११. ४. १७

३ कौर्मं धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे
ग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम्॥ श्रीमद्भाग० ११. ४. १८

४ क—अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया। श्रीमद्भाग० १०, ३८, १०
ख—भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले॥ ,, १०. ४३. २८
ग—एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत्। ,, १०. ६०. १८
घ—एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे।
संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च॥
अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया।
विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित्॥ श्रीमद्भाग० १० ५०. ९, १०
ङ—तवावतारोऽयमकुण्ठधामन् धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय॥ ,, १०. ६३, २७
च—लोके भवाञ्जगदिनः कलयावतीर्णः।
सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः॥ श्रीमद्भाग० १०. ६९. १७
छ—भूभारासुरराजन्यहन्तवे गुप्तये सताम्।
अवतीर्णस्य निर्वृत्यै यशो लोके वितन्यते॥ श्रीमद्भाग० ११. ६. ३७
ज—जज्ञेतस्त भारहराय भूमेः। ,, १० ६३. २६
और भी द्रष्टव्य— श्रीमद्भाग० १० ८४. १८
,, १०. ८५ १८
,, १०. ८५ ३०
,, ११. ४. २२.

५ क्रीडार्थमद्य सात्मनुष्यविग्रहं नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम्॥ श्रीमद्भाग० १०. ३७. २३

६ मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः।
यदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणार्थितः॥ श्रीमद्भाग० ११. ७. २ तथा १०. ४८. २३, १०. ३८. १३

३—प्राणियों को मोक्ष-दान[1]।

४—भक्तों पर अनुग्रह[2]।

५—[illegible][3]।

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible]निग्रह आदि भगवदवतार कारण तो [illegible] [illegible] हेतु भगवान् का भक्तों पर अनुग्रह करके अवतार [illegible] माना गया। मधुरा भक्ति के पथिकों ने [illegible] भक्तों पर अनुग्रह करना ही भगवान् की [illegible] [illegible] गोस्वामी ने अपने 'लघुभागवतामृत' में [illegible]

> [illegible] भक्तेष्वनुजिघृक्षया।
> [illegible] [illegible] प्राकट्ये हेतुरुत्तमः ॥[4]

[illegible] [illegible] अभिमत कि "परवर्ती काल में दुष्ट दमन [illegible] [illegible] माना गया है,"[5] समीचीन है। भक्ति-[illegible] [illegible] [illegible] का अध्ययन करने वाले व्यक्ति को [illegible] [illegible] का गान ही भक्त कवियों का प्रियतम [illegible] [illegible] आनन्दित करने के लिए विविध लीलाएँ [illegible] [illegible] इच्छा शक्ति ही प्रेरक होती है।[6] श्रीमद्-[illegible] [illegible] कभी-कभी भक्तों की इच्छा के अनुसार भी [illegible] [illegible] [illegible] ने बड़ी ही दृढता धारण करली। [illegible] [illegible] प्रमाण है।[8] इस प्रकार अवतार धारण [illegible] [illegible] हैं। भक्त पर विपत्ति पड़ने पर ही वे [illegible]

1 [illegible]
[illegible] [illegible]श्रीमद्भाग० १०. ७७. ४६ तथा १०. ७० ३६
2 [illegible] श्रीमद्भाग० १०. ३६ ७३
3 [illegible] श्रीमद्भाग० १०. ६६. १७
4 [illegible] पृ० ११४ पर उद्धृत।
5 [illegible]
6 [illegible] [illegible]. ३६. १७
[illegible]
[illegible] । श्रीमद्भाग० ११. ११. २८
7 [illegible] [illegible] १०. ३६. २५
8 [illegible] अनूपा ॥
[illegible] गाईं।
[illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] हमारा ॥
[illegible] बालकाण्ड, मनुशतरूपा प्रसंग

वासुदेवादि चतुर्व्यूह—श्रीमद्भागवत में विष्णुतत्त्व की चतुर्व्यूह रूप से दार्शनिक व्याख्या भी की गई है। वासुदेव तो विशुद्ध ज्ञानस्वरूप अद्वितीय, व्यापक, प्रशान्त परमार्थ सत्य है। भक्तिशास्त्र में उस 'वासुदेव' को 'भगवान्' कहते हैं।[1] एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि सत्त्वगुणमय स्वच्छ चित्त जो महत्तत्त्वात्मक है, 'वासुदेव' कहलाता है। अध्यात्म में जिसे 'चित्त' कहते हैं, अधिभूत में उसी को महत्तत्त्व कहा जाता है। चित्त के उपास्यदेव 'वासुदेव' और अधिष्ठाता 'क्षेत्रज्ञ' होता है। जब महत्तत्त्व में विकार होता है तो उससे क्रियाशक्तिमय वैकारिक, तैजस और तामस—तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न होता है। इस त्रिविध अहंकार से ही क्रमशः मन, इन्द्रिय और पंच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। इस भूतेन्द्रियमनोमय अहंकार को 'संकर्षण' कहते हैं।[2] अहंकार के उपास्य देवता संकर्षण हैं और अधिष्ठाता रुद्र हैं। जैसा कि अभी कहा जा चुका है वैकारिक अहंकार से 'मन' की उत्पत्ति होती है जो संकल्प विकल्पात्मक है और कामनाओं—काम (प्रद्युम्न) का जनक है। यह मनस्तत्त्व इन्द्रियों का अधिष्ठाता 'अनिरुद्ध' नाम से प्रसिद्ध है।[3] बुद्धि में उपास्य देव 'प्रद्युम्न' तथा अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं और मन में उपास्यदेव 'अनिरुद्ध' तथा अधिष्ठाता चन्द्रमा है।

वस्तुतः यह चतुर्व्यूह रूप परम पुरुष एक विष्णु ही है। वही विश्व, तैजस, प्राज्ञ एवं तुरीय—इन चार वृत्तियों द्वारा क्रमशः अर्थ (बाह्य विषय) इन्द्रिय (मन) आशय (विषय एवं मन—दोनों के संस्कार से युक्त अज्ञान) और ज्ञान (साक्षी) रूप से भावित होता है।[4] जब ब्रह्म चतुर्भुज विष्णु रूप में साकार होता है तब वह चरणादि अंग, गरुडादि उपांग, सुदर्शनादि आयुध एवं कौस्तुभादि आभूषण धारण करता है।[5] पांचरात्र तत्र

---

१ ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद् वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥ श्रीमद्भाग० ५. १२. ११

२ यत्तत्सत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवतः पदम् ।
यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम् ॥
महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद् भगवद्वीर्यसम्भवात् ।
क्रियाशक्तिरहंकारस्त्रिविधः समपद्यत ॥
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः ।
मनसश्चेन्द्रियाणां च भूतानां महतामपि ॥
सहस्रशिरसं साक्षाद्यमनन्तं प्रचक्षते ।
संकर्षणाख्यं पुरुषं भूतेन्द्रियमनोमयम् ॥ श्रीमद्भाग० ३।२६।२१, २३, २४, २५

३ वैकारिकाद्विकुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायत ।
यत्संकल्पविकल्पाभ्यां वर्तते कामसम्भवः ॥
यद्विदुर्ह्यनिरुद्धाख्यं हृषीकाणामधीश्वरम् । श्रीमद्भाग० ३. २६. २७, २८

४ वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् ।
अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते ॥
स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः ।
अर्थेन्द्रियाशयज्ञानैर्भगवान्परिभाव्यते ॥ श्रीमद्भाग० १२. ११. २१, २२

५ अंगोपांगायुधाकल्पैर्भगवांस्तच्चतुष्टयम् ।
बिभर्ति स्म चतुर्मूर्तिर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ श्रीमद्भाग० १२. ११. २३

कृष्ण का विवरण विशद रूप से है।

भौतिक दृष्टि और श्रीमद्भागवत में वर्णित इतिहास के अनुसार वसुदेव श्रीकृष्ण के [illegible] श्रीकृष्ण के अग्रज बलराम हैं। प्रद्युम्न श्रीकृष्ण का पुत्र है जो कामदेव का अवतार माना जाता है। श्रीमद्भागवत में आया है कि पूर्वकाल में शिव के द्वारा दग्ध कामदेव ने श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी के गर्भ से जन्म लिया। वह अपने पिता श्रीकृष्ण से किसी बात में कम नहीं था।[2] 'अनिरुद्ध' प्रद्युम्न का पुत्र है।

भक्ति द्वारा ध्येय विष्णु का साकार रूप—जब लोक में ब्रह्म के साकार रूप की प्रतिष्ठा हो गई तो भक्त वात्सल्य के कारण अवतार[3] दशा में वह उपासना का विषय बना। विष्णु ने एक लोकमनोहारी चतुर्भुज नराकृति धारण की। श्रीमद्भागवत में कहीं-कहीं उनके अष्टभुज रूप का भी उल्लेख है।[4] उनके शरीर की कान्ति अलौकिक है, [illegible] सौन्दर्य [illegible] है, [illegible] पीताम्बरधारी है, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न, [illegible] में वनमाला और कौस्तुभ मणि धारण किये हुए [illegible] मुकुट, कुण्डल, कटक, कटिसूत्र, हार, नूपुर और [illegible] आदि [illegible] आभूषित है।[5] विष्णु का वाहन गरुड़ है जिसको [illegible] माना गया है।[6] सांकेतिक अर्थ से साकार ब्रह्म वेद [illegible] है। वह वेद का नियन्ता है।

श्रीमद्भागवत [illegible][7] इस साकार ध्येय विष्णु का रूप वर्णन है। [illegible] भक्त कवियों के ध्येय श्रीकृष्ण में सिमट कर [illegible] है।

---

1. [illegible]
[illegible] श्रीमद्भाग० १२, ११, ८
2. [illegible] ४४४४
[illegible] प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः॥
श्रीमद्भाग० १०, ५५, १, २,
3. [illegible] निजजनाभिप्रेतार्थविधित्सया गृहीत-
[illegible] समाविश्चकार॥ श्रीमद्भाग० ५, ३, २
4. [illegible]
5. [illegible] पुरुषविशेषं कपिशकौशेयाम्बरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्स-
[illegible] वनमालादिभिरुपलक्षितं स्फुटकिरणप्रवरमुकुटकुण्डलकटक-
[illegible] श्रीमद्भाग० ५, ३, ३
6. [illegible] समधाद्गुरुमो गजेन्द्रः॥ श्रीमद्भाग० ८, ३, ३१
7. [illegible]

इस रूप की सामान्य विशेषताएँ ये हैं—

१—सर्वदा स्मितयुक्त प्रसन्न मुखमण्डल।

२—कमलदल के समान आरक्त विशाल नेत्र।

३—स्निग्ध, स्वच्छ, कुञ्चित अलकावली।

४—उदार लीलामय भृकुटि विलास।

५—नीलकमलदलवत् श्याम अथवा सजल जलदवत् श्यामवर्ण।

६—नवल किशोर अथवा नटवर।

७—कौशेय पीताम्बरधारी।

८—कौस्तुभमणि एवं वनमालाधारी।

९—अति कान्तियुक्त किरीट-मुकुट-केयूर-कुण्डलादि आभूषणधारी।

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण का स्वरूप

विष्णुतत्त्व एवं अवतारवाद के उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निर्गुण निराकार ब्रह्म को ही भक्तों ने अपनी तीव्र इच्छा से उपासनार्थ सगुण साकार रूप में देखा। अवतारों में भी ब्रह्म के राम और कृष्णावतारों को भारतवर्ष में सर्वाधिक प्रमुखता है। इनके प्राधान्य का कारण इनकी भुवनमोहिनी अपरिमित लीलाएँ हैं। इन दोनों अवतारों में भी श्रीकृष्ण तो अपनी लीलामाधुरी के कारण 'लीलापुरुषोत्तम' ही कहे जाते हैं। वैसे तो यह लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सभी हिन्दी भक्त-कवियों का परम आराध्य है किन्तु श्री वल्लभाचार्य के पुष्टि सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के लीलाधरत्व का विशेष महत्त्व है।[1] इसी से इस सम्प्रदाय में दीक्षित अष्टछाप के कवियों ने लीला पुरुषोत्तम कृष्ण को ही अपना परम उपास्य माना। अतः हमें यह जानना आवश्यक है कि श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण का स्वरूप क्या है। प्राचीन भारतीय साहित्य में श्रीकृष्ण के दो रूप मिलते हैं—(१) यदुकुल श्रेष्ठ दुष्ट-निहन्ता योद्धा, योगेश्वर श्रीकृष्ण तथा (२) 'गोपाल', 'गोपीजनवल्लभ' 'राधाधर-सुधापानशालि वनमाली श्रीकृष्ण'। महाभारत, हरिवंश एवं विष्णु पुराण में प्रमुखतया श्रीकृष्ण के प्रथम रूप का प्राधान्य है। श्रीकृष्ण का दूसरा 'गोपालकृष्ण' रूप अपेक्षाकृत नवीन है। इस रूप का प्राचीनतम उल्लेख विद्वान् लोग बौद्ध कवि अश्वघोष की पंक्तियों में मानते हैं।[2] महाकवि कालिदास ने भी मेघदूत में विष्णु (अथवा श्रीकृष्ण) के 'गोपवेष' का उल्लेख किया है।[3] श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के उभय रूपों का अत्यन्त सुन्दर सामञ्जस्य घटित किया गया है। जहाँ वह दुष्टहन्ता महान् योद्धा और धर्म रक्षक[4] है वहाँ वह

---

१ नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धिशायिनम्।
लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्। — षोडशग्रंथ, मंगलाचरण, श्लोक १

२ ख्यातानि कर्माणि च यानि शौरेः शूरादयस्तेष्वबला बभूवुः।
—उद्धृत- डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्म साधना पृ० १२८

३ येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते।
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः। — मेघदूत पूर्वमेघ श्लोक १५

४ कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्याजितः श्रिया।
जरासंधः ससैन्यसंयुक्तान्वितो यतः॥ — श्रीमद्भा० १०. ५०. ११

स्थलों पर प्रतिपादित होने के कारण श्रीकृष्ण भी परब्रह्म ही माने गये हैं। ब्रह्म को भक्तिशास्त्र में भगवान् कहा जाता है। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान्[2] हैं। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की अनिर्वचनीय महिमा और उनके परब्रह्मत्व के प्रतिपादन में जो कुछ कहा गया है उसका संक्षिप्ततम सार भी प्रस्तुत करना यहाँ शक्य नहीं है केवल दिङ्मात्र दर्शन के [illegible] श्रीमद्भा[illegible] [illegible]त्त्व का सारांश यह है —

[illegible] प्रकृति नियामक, साक्षात् ईश्वर है। वह अपनी चिच्छक्ति [illegible] अपने कैवल्यरूप में स्थित है।[3] कृष्ण, वासुदेव, देवकीपुत्र, [illegible] आदि नामों से उसी परब्रह्म परमेश्वर को प्रणाम किया जाता है। [illegible] है किन्तु ऋषि मनुष्य, तिर्यक्, जलचरादि योनियों में [illegible] के अनुरूप आचरण करना उसकी लीलामात्र है। वह काल-[illegible] और [illegible]त्मक हैं। वह आत्माराम है किन्तु भक्तों की कीर्ति-कौमुदी [illegible] के लिये उस अजन्मा ने यदुकुल में जन्म लिया। भक्तियोग की स्थापना [illegible][4] भक्त-पराधीन होने के कारण भगवान् कृष्ण को पुत्र, मित्र, [illegible] दूत और सारथि तक बनना पड़ा। वस्तुतः तो वह समदर्शी, अद्वितीय [illegible][5] [illegible] नारायण है जो लोकों को विमोहित करता हुआ गूढ़ रूप से [illegible] में विचरण कर रहा है।[6] परम प्रेमविह्वला भक्ता गोपियों के साथ उस [illegible] को साधारण प्राकृत पुरुष के समान ही रमण करना पड़ा है।[7] किन्तु [illegible] एवं लोगों को श्रीकृष्ण के परब्रह्मत्व का निरन्तर ध्यान [illegible] निरन्तर [illegible] रहता है। अन्यथा श्रीकृष्ण को भगवान् के रूप में [illegible] हुआ गोपियों का प्रेम जार के प्रति किये गये प्रेम के समान

1. [illegible] हरीश्वरम् ॥ श्रीमद्भाग० १० २६ ४२

2. [illegible] महीभृतः।
[illegible] ॥
[illegible] भगवान् स्वयम् ॥ श्रीमद्भाग० १. ३ २७, २८

3. [illegible] पुरुषः।
[illegible] स्थित आत्मनि ॥ श्रीमद्भाग० १. ७ २३

4. [illegible]

5. [illegible]

6. [illegible] नारायणः पुमान्।
[illegible] वृष्णिषु ॥ श्रीमद्भाग० १. ६ १८

7. [illegible] योगेश्वरेश्वरः।
[illegible] व्यरीरमत् ॥ श्रीमद्भाग० १०. ३० ४२
[illegible] स्वमायया।
[illegible] यथा ॥ श्रीमद्भाग० १, ११. ३५

अपवित्र होता ।[1] इस प्रकार उक्त प्रमाणों के आधार पर हम निर्विकल्प रूप से कह सकते हैं कि श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के परब्रह्मत्व अथवा भगवत्ता की स्पष्ट स्वीकृति है और श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण का यही परमदैवत स्वरूप गृहीत हुआ है। इसी परदैवत श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति का श्रीमद्भागवत के प्रतिपद में प्रतिपादन है। इस भक्ति की श्रीमद्भागवत में जो माहात्म्य स्वीकृति है उसकी चर्चा हम प्रारम्भ में संक्षेप में कर चुके हैं। यहाँ हम भागवतोक्त भक्ति के विविध पक्षों पर कुछ विस्तार से विचार करना आवश्यक समझते हैं क्योंकि यह विविधरूपा भक्ति ही हिन्दी कृष्ण-भक्ति-साहित्य की प्राण-शक्ति है।

भक्ति का माहात्म्य—श्रीकृष्ण में निष्काम और अव्यभिचारिणी भक्ति ही मनुष्य का सर्वोच्च धर्म है। भक्ति से वैराग्य और शुष्क तर्कादि से रहित विशुद्ध ज्ञान की उपलब्धि होती है। यदि सम्यक् अनुष्ठित धर्म भगवद्भक्ति उत्पन्न न करे तो केवल श्रममात्र ही है। धर्म की चरम सिद्धि तो भक्ति द्वारा भगवान् को तुष्ट करना ही है।[2] भक्तियोग से ही भगवत्तत्त्व का ज्ञान होता है, उस ज्ञान से जीव की हृदय-ग्रंथि (अहंकार) खुल जाती है, संशय छिन्न हो जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्मों का नाश हो जाता है। इसीलिए मनीषी जन भक्तियोग ही ग्रहण करते हैं।[3] भक्ति की पावनकारिणी शक्ति की

---

१ न खलु गोपिकानन्दनो भवान् अखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान्सात्वतां कुले ॥ श्रीमद्भाग० १०. ३१. ४

तथा—ते त्वौत्सुक्यधियो राजन् मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ।
अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥ श्रीमद्भाग० १०. २८. ११

नारद भक्तिसूत्र में भी गोपियों की भक्ति के विषय में कहा गया है—
यथा व्रजगोपिकानाम् ॥ तत्रापि न माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवादः ॥
तद्विहीनं जाराणामिव ॥ नारदभक्तिसूत्र, सूत्र २१, २२, २३

२ एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥ श्रीमद्भाग० ६, ३, २२
स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति ।
वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यदहैतुकम् ॥
धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥
× × ×
स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥ श्रीमद्भाग० १. २. ६, ७, ८, १३
तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मतिर्यया । श्रीमद्भाग० ४. २९. ४९

३ श्रीमद्भाग० १. २. २०
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥
अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ।
वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादिनीम् ॥ श्रीमद्भाग० १. २. २२

[illegible] के समान [illegible] हैं। [illegible] का एकमात्र अमोघ साधन भक्ति है। [illegible] मोह [illegible] को नष्ट कर देता है [illegible] ही भक्ति पापों का आत्यन्तिक ध्वंस कर देती है। [illegible] स्वभाव [illegible] है।[1]

यह तो रही भक्ति की [illegible] पावनता [illegible] इससे भी अधिक उसकी अनिर्वचनीय आनन्दमयता है जिसके मधुर आस्वादन के सामने बुद्धिमान् लोग स्वयं उपस्थित हुए मोक्ष रूप परम पुरुषार्थ का भी आदर नहीं करते। वे तो भगवान् की सेवा करना चाहते हैं।[2] मध्यकालीन सभी सगुण भक्तों ने इस विचार को बड़ी आस्था से हृदयंगम कर भगवद्भक्ति की दुर्लभता को स्वीकार किया है क्योंकि भगवान् अपने सेवकों को मोक्ष तक बड़ी सरलता से दे देते हैं किन्तु अपनी भक्ति देने में वे बड़ी कृपणता करते हैं तथा बहुत आगा पीछा सोचते हैं।[3]

श्रीमद्भागवत में भक्ति का माहात्म्य सर्वत्र इतना स्फीत है कि उसे इस लघु-कलेवर-प्रबन्ध में संक्षिप्ततम रूप में भी रखना असम्भव है। स्थाली-पुलाक-न्याय से कुछ स्थलों को [illegible] है।[4]

[illegible] भक्ति-समर्थक प्राचीन साहित्य में, जिसमें महाभारत [illegible] और [illegible] का वर्णन 'नारायणीय धर्म' [illegible] है। इसमें भक्ति के ही विभिन्न रूपों एवं भक्त के [illegible] पूर्ण अहिंसा, सर्ववाद (Pantheism) पूर्ण प्रपत्ति ([illegible]) [illegible] धर्म है जिसका विशद वर्णन विशेषतया श्रीमद्-[illegible] धर्म के नाम से किया गया है। इस धर्म का [illegible] शरीर और बुद्धि से जो भी करे उसे भगवदर्पण [illegible]

[illegible]
[illegible] श्रीमद्भागवत ३, २, ९६
[illegible]
[illegible] स्वदनास्वादितं नो [illegible] भगवदीयत्वेनैव
श्रीमद्भाग० ५, ६, १७
[illegible]
[illegible] श्रीमद्भाग० ३, २६, १३
[illegible]
[illegible] श्रीमद्भाग० ५, ६, १८
[illegible] —
[illegible]
[illegible] रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, गरुड़-भुशुण्डिसंवाद
[illegible] २. २८, २. २८१, ३. २२१. ११. २४१,

करदे ।[1] भगवान् को अनन्यभाव से भजे । उनके नामों का संकीर्तन करे । विश्व में सब को भगवत्स्वरूप समझकर उन्हें प्रणाम करे । उसे जन्म, कर्म, वर्ण, आश्रम अथवा जाति के कारण देह में अहंभाव नहीं होना चाहिये ।[2] धन, अनित्य गृह, पुत्र, कुटुम्ब, पशु आदि भौतिक पदार्थों में उसे आसक्त नहीं होना चाहिए । तत्त्वज्ञ गुरु की शरण लेकर उससे श्रेय का उपदेश ग्रहण करे । मन को सब ओर से हटाकर गृह, स्त्री, पुत्रादि को समर्पण कर साधु-संग, समस्त प्राणियों के प्रति यथोचित दया, मैत्री एवं विनय, शौच, तप, तितिक्षा, मौन, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, एकान्त सेवन, यथा लाभ सन्तोष, शास्त्रों में श्रद्धा, निन्दा स्तुति से पृथक् रहना, सत्य भाषण एवं साधु सेवा पूर्वक भगवद्गुणानुवाद का गायन करते रहना, भागवतधर्म के सामान्य लक्षण हैं । इस प्रकार साधन भक्ति (वैधी-भक्ति) का आचरण करते-करते साधक को साध्य-भक्ति (प्रेमा-भक्ति) प्राप्त हो जाती है ।[3]

भक्ति के भेद—वस्तुतः एक होकर भी अधिकार और पात्रभेद से भक्ति के अनेक भेद हो जाते हैं ।[4] नारदभक्तिसूत्र में कहा गया है कि एक ही प्रेमरूपाभक्ति गुण माहात्म्यासक्ति आदि भेदों से ग्यारह प्रकार की हो जाती है ।[5] श्रीमद्भागवत में भी अनेक भेदोपभेदों द्वारा भक्तितत्त्व का सर्वांगीण निरूपण किया गया है । कहीं उसे निर्गुणभक्ति त्रिविधा (सात्विक, राजस, तामस) भक्ति चतुर्विधा भक्ति, पंचविधा भक्ति, षड्विधा भक्ति और कहीं नवधा भक्ति के रूप में विभक्त किया गया है ।

तामस-भक्ति—हिंसा, दम्भ और स्पर्धा का भाव रखकर भगवद्भक्ति करना तामस भक्ति है । इसमें भी हिंसा से प्रेरित अधम तामस, दम्भ से प्रेरित मध्यम तामस तथा स्पर्धा से प्रेरित उत्तम तामस भक्ति है ।[6]

राजस-भक्ति—विषयों की लालसा, यश अथवा ऐश्वर्य के लिए प्रतिमा आदि में

---

१ कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात् ।
करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तद् ॥ श्रीमद्भाग० ११. २. ३६

२ न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ।
सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥ श्रीमद्भाग० ११. २. ५१

३ (क) श्रीमद्भागवत ११. ३. २२–३१
(ख) श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ।
जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥
× × × ×
स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् ।
भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥ श्रीमद्भाग० ११. ३. २७, ३१

४ भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ।
स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥ श्रीमद्भाग० ३. २९. ७

५ गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति, परमविरहासक्तिरूपा एकधाप्येकादशधा भवति ॥
—नारदभक्ति सूत्र, ८२

६ अभिसन्धाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा ।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥ श्रीमद्भाग० ३. २९. ८

सात्त्विकभक्ति—पापक्षयार्थ कर्मों को भगवदर्पण करने के लिए अथवा 'यजनकरे' 'यजन करना कर्तव्य है' इस शास्त्राज्ञा का पालन करने के लिए ही भेदभाव से की गई भक्ति सात्त्विक भक्ति है। सात्त्विक भक्ति में अग्रणीया नहीं होता।[2]

निर्गुण भक्ति—यद्यपि यह शब्द कुछ वैचित्र्य लिए हुए है, तथापि भक्ति के विशुद्ध रूप को प्रकट करने के लिए भागवतकार ने इसका प्रयोग किया है। निर्गुणभक्ति द्वारा भक्त सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणों से अतीत हो जाता है। निर्गुणभक्ति का लक्षण है—भगवान् में अकारण अनन्य भक्ति होना, भगवद्गुणश्रवण मात्र से मन का अविच्छिन्न गति से भगवदुन्मुख हो जाना। निर्गुण भक्त कैवल्य मोक्ष भी ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं होता। यह निर्गुण भक्तियोग सर्वश्रेष्ठ है।[3] श्री वल्लभाचार्य ने अपने पुष्टि सम्प्रदाय में इसी निर्गुण भक्ति पर जोर दिया है। इस भक्ति का प्रवाह बहुत ही तीव्र होता है।[4] भक्त जब अपने अन्तःकरण में भगवान् का ध्यान करता है तब भगवान् उस पर अनुग्रह करते हैं और वह लौकिक वैदिक कर्मों में आसक्त अपनी बुद्धि को भगवद्-चिन्तन की ओर ले जाता है।[5]

ऐकान्तिक भक्ति—अनन्य भक्ति ही ऐकान्तिक भक्ति है। श्रीमद्भगवद्गीता में अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख हुआ है।[6] भगवान् के अतिरिक्त न तो किसी अन्य देवता

---

1. विषयानभिसन्धाय यश ऐश्वर्यमेव वा।
   अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः॥ — श्रीमद्भाग० ३. २९. ९.
2. कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन्वा तदर्पणम्।
   यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः॥ — श्रीमद्भाग० ३. २९. १०
3. मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
   मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥
   लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
   अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥
   स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः।
   येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते॥ — श्रीमद्भाग० ३. २९. ११. १४
4. [illegible] सर्वे [illegible] मनुग्रहम्। — ,, ४. १२. ११.
5. यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः।
   स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्॥ — श्रीमद्भाग० ४. २९. ४६
6. क—तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते। — गीता ७. १७
   ख—अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
   तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ — गीता ८. १४
   ग—अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
   तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
   येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
   तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥ — गीता ९. २२.२३
   घ—सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। — गीता १८. ६६

आदि का आश्रय लेना और न किसी बाह्य विषय-भोग की इच्छा करना अनन्य भक्ति है। नारदभक्तिसूत्र में भी अन्याश्रय के त्याग का विधान बताकर ऐकान्तिक भक्ति की मुख्यता स्वीकार की गई है।[1] श्रीमद्भागवत में अनन्य भक्ति अथवा एकान्त भक्ति को सत्पुरुषों के लिए भी दुष्प्राप्य बताकर उसके द्वारा केवल भगवत्प्राप्ति ही परमप्राप्य मानी गई है बाह्य विषय नहीं।[2]

पंचविधा भक्ति—जीव को किसी न किसी भाव द्वारा भगवान् में अपने चित्त को लगा देना चाहिये। जीव-कोटि की सीमा में आबद्ध होने के कारण वह काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग, द्वेष, भय आदि पाशों में निरन्तर बंधा हुआ है उनसे पीछा छुड़ाना उसके लिए सरल कार्य नहीं है। तब उसे क्या करना चाहिए? पाशमुक्त होने के लिए उसे अपने समग्र मनोविकारों को भी भगवान् की ओर मोड़ देना चाहिए। भक्ति शास्त्रों में ऐसा विधान है।[3]

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि भगवान् में मन लगाने के पाँच उपाय हैं। उन पाँचों उपायों में से किसी के भी द्वारा उनमें ऐसा मन लगादे कि उनसे पृथक् कुछ भी दिखाई न दे। वे पाँच उपाय हैं—(१) सुदृढ वैर, (२) सुदृढ राग, (३) भय, (४) स्नेह और (५) काम[4]। सुदृढ वैरानुबन्ध से मनुष्य भगवान् में जितना तन्मय होता है उतना सुदृढ राग से भी नहीं होता। उदाहरणतया भृङ्गी कीट जब किसी अन्य कीट को पकड़ कर दीवार पर बनाये हुए अपने छिद्र में बन्द कर देता है तो वह बन्दी कीट भय और उद्वेग के कारण प्रतिक्षण भृङ्गी कीट का स्मरण करते-करते तद्रूप हो जाता है। इसी प्रकार राम अथवा कृष्ण में निरन्तर वैरानुबन्ध रखने के कारण रावण, शिशुपाल, दन्तवक्र आदि तन्मय भक्त हो गये थे और इस प्रकार निष्पाप होकर उन्होंने सायुज्य मुक्ति प्राप्त की।[5] उपर्युक्त पाँचों उपाय अनुभूत भी हैं। सुदृढ वैर से रावण, शिशुपालादि ने, सुदृढ राग (प्रेमा भक्ति) से नारदादि मुनि जनों ने, भय से कंस ने, स्नेह से युधिष्ठिर अर्जुनादि पाण्डवों ने और काम से गोपियों ने भगवत्स्वरूप की उपलब्धि की है। यादव गण तो केवल भगवत्सम्बन्धमात्र से तद्रूप हो गए थे।[6]

---

१ अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता । भक्ता एकान्तिनो मुख्याः । नारदभक्तिसूत्र, सूत्र १०, ६७

२ तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया ।
एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्पादमूलं विना बहिः ॥ श्रीमद्भाग० ४. २४. ५५

३ तदर्पिताखिलाचारः सन् कामक्रोधाभिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम् ।
नारदभक्ति सूत्र, सूत्र ६५

४ तस्माद् वैरानुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा ।
स्नेहात्कामेन वा युञ्ज्यात्कथंचिन्नेक्षते पृथक् ॥ श्रीमद्भाग० ७. १. २५

५ श्रीमद्भाग० ७. १. २६–२८

६ गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ।
सम्बन्धाद्वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो ॥ श्रीमद्भाग० ७. १. ३०
कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥ श्रीमद्भाग० १०. २९. १५

वह क्रियात्मक रूप हमारे सामने आता है जिसे शास्त्रीय भाषा में वैधी भक्ति कहते हैं।

वैधी एवं रागानुगा भक्ति

(क) वैधीभक्ति श्रीमद्भागवत में अत्यन्त विस्तार से द्विविधभक्ति—वैधी एवं रागानुगाभक्ति—का निरूपण है। वैधी का अर्थ है बाह्य विधियों, आचारों, प्रतिमा पूजन आदि के द्वारा की गई भगवद्भक्ति। जब वैधीभक्ति के द्वारा साधक का मन स्वाभाविक रूप से भगवदुन्मुख हो जाता है तब वह रागानुगाभक्ति (सुदृढ़, गाढ, प्रेमासक्ति) का [illegible] है। [illegible] वैधीभक्ति रागानुगाभक्ति का साधन है। [illegible] के अन्तर्गत वैधी भक्ति का ही वर्णन है। [illegible] (१) वैदिक, (२) तांत्रिक और (३) [illegible] सैकती, मनोमयी और मणिमयी [illegible] चिह्नों का[4] नैवेद्य, तुलसी दल [illegible] भगवान् के गुण लीला और नामों का [illegible] के अन्तर्गत आता है। भक्तिशास्त्र [illegible] है।[5]

(ख) रागानुगाभक्ति – [illegible] स्वाभाविक प्रेममय तृष्णा को 'राग' कहते हैं।[6] [illegible] इष्टदेव के प्रति स्वाभाविक [illegible] है और तन्मय हो जाता है। [illegible] कृष्ण के प्रति जिस तीव्र रागात्मिका [illegible] उसमें गोपियों की कृष्णतन्मयता का [illegible] रागात्मिका भक्ति का लक्षण बताया [illegible] की जाने वाली भक्ति 'रागानुगा-भक्ति' [illegible] आदि सभी वृत्तियाँ 'राग' हैं। इनमें [illegible] भक्ति होगी। इनमे से किसी भी [illegible] देने से तन्मयता प्राप्त हो जाती

[illegible] श्रीमद्भाग० ११. ३. २१

[illegible]

[illegible] श्रीमद्भाग० ११. २७. ७

[illegible]

[illegible] श्रीमद्भाग० ११. २७. २०

[illegible] श्रीहरिभक्तिरसामृतसिंधु पृ० ८७

[illegible] श्रीहरिभक्तिरसामृतसिंधु पृ० ८८

है ।[१] काम सबसे अधिक प्रबल राग है । क्योंकि काम में इष्ट के सामीप्य की कामना अत्यन्त उत्कट रूप से विद्यमान रहती है । गोपियों की भक्ति 'कामरूपा' है[२] किन्तु उनकी इस कामरूपा भक्ति में यह विशेषता है कि उन्हें निरन्तर श्रीकृष्ण के परब्रह्मत्वरूप माहात्म्य का ज्ञान बना रहता है ।[३]

प्रेमाभक्ति—व्रजगोपिकाओं की कामरूपा भक्ति ही अपने उत्कृष्टतम रूप में 'प्रेमाभक्ति' हो जाती है । भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव और नारद की भक्ति भी इसी प्रकार की है । चित्त की अतिशय कोमलता और ममत्व का अतिशय गाढ भाव प्रेम कहलाता है । भगवान् के प्रति ममत्व प्राप्त कर लेना भक्ति का सर्वोच्च सोपान है, यही प्रेमाभक्ति है ।[४]

षड्विधा अथवा षडंगा भक्ति—भगवान् ने इस प्रेमाभक्ति प्राप्त करने के लिए श्रीमद्भागवत में षड्विधा वैधी भक्ति का भी एक स्थल पर विधान किया गया है । इस भक्ति के छः अंग ये है—(१) प्रणाम, (२) स्तुति, (३) सर्वकर्मार्पण, (४) उपासना, (५) ध्यान तथा (६) कथाश्रवण । इन छः अंगों से युक्त वैधी भक्ति किये बिना मनुष्य को भगवान् की प्रेमलक्षणाभक्ति प्राप्त होना असम्भव है ।[५]

नवधा भक्ति—एक अन्य स्थल पर श्रीमद्भागवत में नौ लक्षणों वाली भक्ति का का उल्लेख हुआ है ।[६] नवधाभक्ति के लक्षण ये हैं—(१) श्रवण, (२) कीर्तन, (३) स्मरण, (४) पादसेवन, (५) अर्चन, (६) वंदन, (७) दास्य, (८) सख्य और (९) आत्मनिवेदन । इस नवधा भक्ति के कुछ लक्षण तो वैधी भक्ति में आते हैं और सख्य, आत्मनिवेदनादि कुछ लक्षण रागानुगाभक्ति के अन्तर्गत । नवधा भक्ति के द्वारा भी प्रेमलक्षणाभक्ति को प्राप्त करना ही भक्त का लक्ष्य होता है । उपर्युक्त लक्षणों से कुछ अन्तर के साथ नवधाभक्ति का निरूपण गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में भी किया है ।[७] श्रीमद्भागवत में शतशः स्थलों पर उक्त नवधाभक्ति के श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि प्रकारों का वर्णन

---

१ कामाद् द्वेषाद्भयात्स्नेहाद्यथा भक्त्येश्वरे मनः ।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः ॥ — श्रीमद्भाग० ७. १. २९

२ श्रीमद्भाग०, ७. १. ३०

३ यथा व्रजगोपिकानाम् । तत्रापि न माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवादः । — नारदभक्तिसूत्र, सूत्र २१, २२
यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरंग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥ — श्रीमद्भाग० १०. २९. ३२

४ अनन्यममता विष्णौ ममता प्रेमसंगता ।
भक्तिरित्युच्यते भीष्म प्रह्लादोद्धवनारदैः ॥ — नारद पंचरात्र से भ० र० सिन्धु में उद्धृत पृ० ११५

५ तत्तेऽर्हत्तम नमःस्तुतिकर्मपूजाः
कर्मस्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ।
संसेवया त्वयि विनेति षडंगया किं
भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥ — श्रीमद्भाग० ७. ९. ५०

६ श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ — श्रीमद्भाग० ७. ५. २३

७ प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥ इत्यादि
रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, शबरी मिलन प्रसंग ।

निम्नलिखित श्लोक में नवधा भक्ति की जो सूची दी गई है उसका आधार सम्भवतः श्रीमद्भागवत ही ज्ञात होता है क्योंकि इन सभी की सविस्तर कथा इस पुराण में है

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकिः कीर्तने ।
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने ॥
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः ।
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेवं परा ॥[3]

भक्ति के साधन—भक्ति भगवत्कृपैकलभ्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु भगवत्कृपा का पात्र बनने के लिए भी भक्तिशास्त्रों में कतिपय साधन बताये गये हैं। इन साधनों को करते-करते भगवान् की कृपा से उनकी प्रेमाभक्ति प्राप्त हो जाती है।[4] श्रीमद्भागवत में अनेकशः स्थलों पर भक्ति के साधनों का निरूपण किया गया है। संक्षेप में, वे आठ ये बताये गये हैं— (१) श्रद्धापूर्वक भगवत्कथाश्रवण, (२) निरन्तर भगवन्नाम संकीर्तन, (३) पूजा में तत्परता, (४) स्तुतियों द्वारा भगवत्स्तवन, (५) भगवत्प्रतिमा को साष्टांग प्रणाम, (६) भगवद्भक्तों की विशेष पूजा, (७) समस्त प्राणियों में भगवद्दृष्टि, (८) सर्व कर्मार्पण एवं आत्मसमर्पण।[5] इनमें से अन्तिम साधन की चर्चा श्रीमद्भगवद्गीता में भी विशेष रूप से की गई है।[6]

भक्त-लक्षण—परम भगवद्भक्त का लक्षण है सब ओर से निरपेक्ष होकर भगवान् में चित्त लगाकर तन्मय हो जाना। भगवद्भक्त भगवान् को छोड़कर योग-सिद्धि, भूमण्डल का आधिपत्य, सार्वभौम राज्य, इन्द्र-पद, मोक्ष और ब्रह्मपद की भी कामना नहीं करता।[7] वह स्वभावतः अकिञ्चन, जितेन्द्रिय, शान्त, सर्वभूतहितरत और समस्त कामनाओं से रहित होता है।[8] उसका मन श्रीकृष्ण के चरण कमलों में, वाणी गुणगान में, कान कथा

---

1 [illegible] कथाः [illegible] सुभद्रा [illegible]
[illegible] ॥ श्रीमद्भाग० ११. १२. २३

2 श्रीमद्भागवत, ७. ५. २३

3 भक्तिरसामृतसिन्धु (श्री रूपगोस्वामी) पृ० ८७

4 तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्याः । तत्तु विषयत्यागात् संगत्यागाच्च । अव्यावृतभजनात् ।
लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात् ।
मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद् वा ।
भक्तिशास्त्राणि मननीयानि । तदुद्बोधक कर्माण्यपि करणीयानि ॥
—नारदभक्तिसूत्र, सूत्र, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ७६

5 श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥ आदि श्रीमद्भाग० ११. १९. २०–२४

6 अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ गीता १२. १०

7 न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥ श्रीमद्भाग० ११. १४. १४.

8 श्रीमद्भागवत ११. [illegible], [illegible] तथा ११. १४. १७

श्रवण में, नेत्र भगवत्प्रतिमा के दर्शन में, घ्राणेन्द्रिय भगवच्चरणों पर चढ़ी तुलसी के गंध-ग्रहण में, अंग (त्वचा) भगवद्‌भक्तों का अंग स्पर्श करने में, रसना नैवेद्य में, हाथ श्रीहरि के मन्दिर का मार्जन करने में, पैर भगवद्धामों की यात्रा में तथा सिर श्रीकृष्ण की चरण वन्दना में लगे रहते हैं।[1] भक्ति के सात्त्विक अनुभाव उदय होने पर उसकी वाणी गद्‌गद और चित्त द्रवीभूत हो जाता है। वह कभी बार-बार रोता है, कभी हँसता है, कभी निःसंकोच होकर उच्च स्वर से गाने लगता है और कभी नाचने लगता है।[2] प्रेमाभक्ति सम्पन्न भक्त के इस प्रकार के लक्षण श्रीमद्‌भागवत में अनेक स्थलों पर कहे गये हैं।

भक्तमहिमा—भक्त की अनन्त महिमा का इससे बढ़कर कोई प्रमाण नहीं हो सकता कि भगवान् स्वयं उसकी महिमा का बखान करें और स्वयं को पवित्र करने की कामना से भक्त की चरण रज के लिए सदा उसके पीछे-पीछे चलें।[3] भगवान् निरन्तर अपने भक्तों के अधीन रहते हैं, क्योंकि भक्त भगवान् के हृदय पर अधिकार कर चुके होते हैं। भगवान् एक बार अपनी आत्मा और अनपायिनी लक्ष्मी का भी परित्याग कर सकते हैं किन्तु अपने भक्त को कभी नहीं छोड़ सकते। भक्त भगवान् के हृदयरूप हैं और भगवान् भक्तों के हृदयरूप।[4] अपना अपराध करने वाले को भगवान् क्षमा कर देते हैं किन्तु भक्त का अपराध करने वालों को वे कदापि क्षमा नहीं करते। भक्त स्वयं ही अपने अपराधी को क्षमा करे तो करे, अन्यथा भक्त का अपराध क्षमा करने की शक्ति स्वयं भगवान् में भी नहीं है। भक्त की इस अमोघशक्ति और भक्त का लोकोत्तर माहात्म्य प्रकट करने के लिए श्रीमद्‌भागवत में भक्तप्रवर राजा अम्बरीष की मनोहारिणी आख्यायिका है जिसमें बताया गया है कि भक्त का अपराध करने वाले दुर्वासा ऋषि को अन्त में उसी की शरण में जाना पड़ा।[5] भगवान् की प्रतिज्ञा है कि उसके भक्त का तिरस्कार करने की शक्ति विश्व में किसी के पास नहीं है।[6]

---

१ श्रीमद्‌भाग० ९. ४. १८-२०

२ (क) नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥ श्रीमद्‌भाग० २. ३. २४

(ख) वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ श्रीमद्‌भाग० ११. १४. २४

३ निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥ श्रीमद्‌भाग० ११. १४. १६

४ अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥
नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥
साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥ श्रीमद्‌भाग० ९. ४. ६३, ६४, ६८

५ श्रीमद्‌भागवत ९. ४. ५

६ न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया ।
विभूतिभिर्वाभिभवेद् देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥ श्रीमद्‌भाग० १०. ७९. १६

निष्कर्ष

इस अध्याय में विवेचित विषय से हम निम्नांकित

१—परमार्थतः निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते हुए भी सगुण ब्रह्म की उपासना का विधान किया है और माना है।

२— [illegible] मनुष्य विग्रहधारी विष्णु ही श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृ

३—[illegible] ज्ञान की अपेक्षा भक्ति सुलभतर है। भक्ति साध

४—निर्गुण प्रेमाभक्ति प्राप्त करना पुरुष का चरम पुरुषार्थ

तृतीय अध्याय

भारतवर्ष के प्रमुख वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीमद्भागवत का स्थान

दृष्टिकोण—भारतवर्ष के दर्शन में सर्वत्र मानव को आत्यन्तिक क्लेश निवृत्ति का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। इस प्रयत्न को ही 'धर्म'[1] नाम से अभिहित किया गया है। इस धर्म के साधन रूप में यहाँ ज्ञान, कर्म तथा उपासना की त्रिवेणी सनातन काल से प्रवहमान है। इस त्रिवेणी का उद्गम स्थल तो भारतीय तत्त्वज्ञान के आधार वेद ही हैं, किन्तु उनके उपबृंहित रूप ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र, स्मृति एवं पुराणों में उस त्रिवेणी का संगम हमें स्पष्ट लक्षित होता है। देशकाल की आवश्यकताओं के अनुसार भारतवर्ष में कभी तो ज्ञान-भागीरथी की धारा प्रखर प्रवाह धारण कर लेती है, कभी कर्म-कालिन्दी में उत्ताल तरंगें उठने लगती हैं और कभी उपासना की गुप्त-सरस्वती प्रत्यक्ष हो जाती है। भारतवर्ष के धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन करने से इसी तथ्य का अनुभव होता है।

प्राचीन भारत के ब्राह्मण काल में बौद्धिक तत्त्व-चिन्तन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया जिसका चरमोत्कर्ष हमारा उपनिषद् साहित्य है, किन्तु इस निष्क्रिय तत्त्वचिन्तन के के उपरान्त, कर्म प्रधान युग आया और कर्म-मीमांसा होने लगी। किन्तु जब कर्मकाण्ड भी औचित्य की सीमा का अतिक्रमण कर गया तो तथागत गौतम बुद्ध ने वैराग्य और ज्ञान प्रधान अपना धर्मचक्र चलाया जो कई शताब्दियों तक भारतवर्ष के वातावरण में घूमता रहा। कालान्तर में बौद्ध धर्म जिन जटिल आचारों एवं विकृत धर्म-भावनाओं में परिवर्तित हो गया, उनका निराकरण युवा सन्यासी शंकर (वि० सं० ८४५) के अद्वैत ज्ञान-प्रधान वैदिकधर्म के द्वारा हुआ। दो शताब्दियों तक शंकर के वेदान्त का शंखनाद भारत में गूँजता रहा किन्तु बाद में उसकी तुमुल-ध्वनि से भारतीय हृदय दहल उठा और उसने वैष्णव आचार्यों द्वारा निनादित भक्ति की मुरली की हृदयहारिणी स्वर लहरी में परमानन्द का अनुभव किया। इसी समय सौभाग्य से भक्ति के चरम स्वरूप और आदर्श का दिग्दर्शन कराने वाले श्रीमद्भागवत महापुराण का स्निग्ध प्रकाश अखिल भारतवर्ष में फैल गया।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है तात्त्विक दृष्टि से श्रीमद्भागवत ने भी अद्वैत ब्रह्मवाद का ही प्रतिपादन किया है किन्तु उसने लोक जीवन के व्यावहारिक पक्ष में सर्वत्र भक्त्यैकलभ्य सगुण ब्रह्म (भगवान्) की भक्ति का ही उद्घोष किया है। भारत के

---

१ यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।

ग्रहण किया और विभिन्न दृष्टिकोण से उसका अध्ययन और सतर्क विवेचन प्रस्तुत किया यहाँ हम भारत के प्रमुख वैष्णव आचार्यों तथा उनके सम्प्रदायों का उल्लेख कर यह दिखाने का प्रयत्न करते कि उनमें श्रीमद्भागवत की कितनी मान्यता है क्योंकि तत्तत् सम्प्रदायों के अनुयायी कवि और भक्त ने श्रीमद्भागवत से प्रभावित होकर परवर्तीकाल में विविध प्रकार के कृष्ण काव्य का निर्माण किया है।

भारतवर्ष के धार्मिक इतिहास से विदित होता है कि ईसा की दसवीं शताब्दी से [illegible] ने एक व्यवस्थित शास्त्रीय रूप ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया था। दसवीं [illegible] शताब्दी तक निम्नलिखित वैष्णव सम्प्रदायों की स्थापना हो चुकी थी—

१—श्री विष्णुस्वामी द्वारा प्रवर्तित शुद्धाद्वैतवादी रुद्र सम्प्रदाय (९वीं शती)[1]।
२—श्रीरामानुजाचार्य द्वारा प्रवर्तित विशिष्टाद्वैतवादी श्रीसम्प्रदाय (१०३७ से ११३७ई०)
३—श्रीनिम्बार्काचार्य द्वारा प्रवर्तित द्वैताद्वैतवादी सनक सम्प्रदाय (११६२ ई०)
४—श्रीमध्वाचार्य द्वारा प्रवर्तित द्वैतवादी सम्प्रदाय (११९७ से १२७६ ई०)

इन चार प्रधान आचार्यों के तत्त्वज्ञान से प्रभावित होकर परवर्ती अनेक आचार्यों ने अपनी मौलिक प्रतिभा एवं तत्त्वचिन्तन के आधार पर और भी वैष्णव सम्प्रदायों की [illegible] की, जिनका समय १४वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक विस्तृत है। प्रमुख सम्प्रदायों का उल्लेख नीचे किया जाता है —

१—श्री रामानन्द का विशिष्टाद्वैतवादी सम्प्रदाय।
२—श्रीवल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवादी पुष्टि सम्प्रदाय।
३—श्री चैतन्य महाप्रभु का अचिन्त्यभेदाभेदवादी सम्प्रदाय।
४—श्री हितहरिवंश का राधावल्लभीय सम्प्रदाय।
५—श्री हरिदास का सखी सम्प्रदाय।

९वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक हुए सभी वैष्णव आचार्यों ने अपने साम्प्रदायिक ग्रंथों की रचना संस्कृत में की। ब्रजभाषा का प्रचार होने पर भी शास्त्रीय विवेचन का माध्यम संस्कृत भाषा ही रही, श्रीमद्भागवत को सभी ने भक्तिशास्त्र का और साम्प्रदायिक प्रस्थानरूप ग्रंथ स्वीकार किया।

श्रीरामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवादी सम्प्रदाय और श्रीमद्भागवत—

यद्यपि श्रीरामानुजाचार्य ने श्रीमद्भागवत पर कोई टीका नहीं लिखी किन्तु इनके सम्प्रदाय के परवर्ती आचार्यों ने श्रीमद्भागवत को अपने सम्प्रदाय में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया और उसकी टीका लिखी, श्री वीरराघवाचार्य की 'भागवतचन्द्रिका' टीका का [illegible] किया जा चुका है। श्री वीरराघवाचार्य ने लिखा है कि 'श्रीमद्भागवत महापुराण

[1] [illegible] से वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के आचार्य बिल्वमंगला-[illegible] को शंकर का [illegible] माना है। देखिए अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, प्रथम संस्क० [illegible]) किन्तु [illegible] ने विष्णुस्वामी को १३वीं शताब्दी का माना है (देखिये—A History of Sanskrit Literature, chapter on Philosophy and Religion, p. 476)

की व्याख्या अनेक विद्वानों ने की है। यतिराज श्रीरामानुज ने अपने श्रीभाष्य से मुझ मन्दमति को भी जो प्रशस्त मार्ग दिखा दिया है उसी मार्ग का अनुसरण करते हुए, मैं (श्रीमद्भागवत व्याख्या रूप) इस दुष्कर कार्य को पूर्ण करने का अभिलाषी हूँ। कृपया सुधीजन मेरा साहस क्षमा करें। सत्यवती सुत बादरायण व्यास ने गर्भ, जन्म, जरा, मरण आदि सांसारिक दुःखों से उत्पन्न और वेदार्थ को न जानने वाले प्राकृत जनों को देखकर दयालुता वश उनका उद्धार करने के हेतु वेद की दो प्रकार से व्याख्या की। अपने शिष्य महर्षि जैमिनि से उन्होंने पूर्वमीमांसा की रचना कराई तथा स्वयं शारीरिक सूत्रों से उत्तर मीमांसा की रचना की। पूर्वभाग के उपबृंहण के लिए तो उन्होंने पंचम वेद की भाँति प्रसिद्ध महाभारत का निर्माण किया और मुख्यतया उत्तरभाग का उपबृंहण करने वाले श्रीमद्भागवत पुराण की रचना की।[1] इस कथन से स्पष्ट है कि रामानुज मत में श्रीमद्भागवत को ब्रह्म सूत्रों की व्याख्या के रूप में स्वीकार किया गया है।[1] श्रीरामानुज मत का अन्तरंग अध्ययन करने से अनुभव होता है कि उसमें व्यवहार पक्ष में श्रीमद्भागवत की भक्ति या प्रपत्ति तथा अध्यात्म पक्ष में उसका अद्वैत दर्शन कुछ विशिष्टता के साथ ग्रहण किया गया है। इसीलिए सैद्धान्तिक दृष्टि से इस मत का नाम 'विशिष्टाद्वैत मत' है।

श्रीनिम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत मत एवं श्रीमद्भागवत—

श्री निम्बार्काचार्य भारतवर्ष में कई नामों से प्रसिद्ध हैं—यथा निम्बादित्य, भास्कराचार्य, नियमानन्द आदि। इनके स्थितिकाल के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। अधिकतर विद्वान् इन्हें श्री रामानुजाचार्य (सन् १०३७ से ११३७ ई०) का पश्चात्वर्ती तथा आनन्दतीर्थ (श्रीमध्वाचार्य) का समकालीन मानते हैं। डॉ० भण्डारकर के मतानुसार इनका समय ११६२ ई० है।[2] निम्ब अथवा नीम के वृक्ष पर विष्णु के सुदर्शन चक्र का आवाहन कर सूर्य के प्रकाश का चमत्कार इन्होंने जन साधुओं को दिखाया और उन्हें भोजन कराया था। ऐसी चमत्कार-कथा निम्बार्क सम्प्रदाय में प्रचलित है। तभी से इनका नाम निम्बार्क अथवा निम्बादित्य पड़ा। इस सम्प्रदाय की आचार्य-परम्परा में निम्बार्क चौथे स्थान पर आते हैं—(१) हंसावतार भगवान् नारायण, (२) सनक-सनन्दन सनातन-सनत्कुमार, (३) देवर्षि नारद तथा (४) श्री निम्बार्काचार्य। हंस, सनकादि तथा

१ श्रीमद्भागवतं पुराणमखिलं व्याख्यातुमिच्छाम्यहं
व्यासार्यैर्विहितं च भाष्यमनघं श्रुत्वा कृते।
मन्दानामपि मादृशामनघमार्ग्यदर्शनया दर्शितं
पन्थानं समुपाश्रितो विशुद्धया मन्माहते सम्मतम्।
गर्भजन्मजरामरणादि सांसारिकदुःखोपहतानवगतवेदार्थान् जनानवलोक्यानुकम्पितमनास्तदुद्दिधीर्षया × × वेदं व्याचिख्यासुस्सत्यवतीसुतो भगवान् जैमिनिना महर्षिणा पूर्वभागं व्याख्याप्य स्वयमुत्तरभागं समीचीनैः शारीरकसूत्रैर्व्याख्याय क्रमशः पूर्वभागोपबृंहणात्मकं पञ्चमवेदत्वेन प्रसिद्धं श्रीमहाभारताख्यमितिहासं निर्माय प्राधान्येन वेदान्तार्थोपबृंहणात्मकं श्रीमद्भागवताख्यपुराणमप्रचिकीर्षुः × × ×
श्रीमद्भागवत की वीरराघवकृत टीका का उपोद्घात पृ० ७ (वृन्दावन सं० १९९०)

२ Vaishnavism, shaivism......Page 63 (foot note , Poona 1928.

में माय है। श्रीमद्भागवत में उद्धव के प्रति श्रीकृष्ण ने हंसावतार नारायण और सनकादि का संवाद सविस्तर वर्णन किया है [3] भगवान् के हंसावतार के समय उनसे उक्त चारों ऋषियों ने सर्वप्रथम ब्रह्म विद्या सीखी। सनकादि ऋषियों के नाम पर द्वैताद्वैत सम्प्रदाय 'सनकसम्प्रदाय' और 'हंस सम्प्रदाय' भी कहलाता है।

सिद्धान्त—द्वैताद्वैत (भेदाभेद) मत में द्वैत और अद्वैत दोनों का सामंजस्य स्थापित [illegible]। इस मत का सारांश यह है कि दृश्यमान् जगत और जीव दोनों [illegible] किन्तु ब्रह्म की सत्ता जगत और जीव तक ही सीमित नहीं है वह असीम [illegible]-स्वरूप जगत का उपादान कारण है। अतः जगत् और जीव ब्रह्म [illegible] के साथ अंशी का जैसा भेदाभेद (द्वैताद्वैत) सम्बन्ध है, वैसा ही जगत् और जीव [illegible] के साथ भी। अंश समस्त अवयवों में अंशी का ही अंगभूत है [illegible] अभिन्न है। परन्तु अंशी अंश को अतिक्रमण करके भी स्थित रहता है। [illegible] की समस्त सत्ता विद्यमान नहीं है। अतः अंशी अंश से भिन्न भी [illegible] दोनों का सम्बन्ध 'भेदाभेदसम्बन्ध' भिन्नाभिन्नसम्बन्ध अथवा द्वैताद्वैतसम्बन्ध [illegible] है।[7] [illegible] सर्वशक्तिमान् है। जब ब्रह्म जगत् से अतीत रूप में विद्यमान रहता है [illegible] और जब परिणत होता है तब सगुण हो जाता है। ब्रह्म का सगुण [illegible] जीव जगत् को और स्वयं को ब्रह्म से अभिन्न अनुभव करने लगता है [illegible] मुक्त हो जाता है। मुक्त होने का एकमात्र साधन सगुण ब्रह्म की [illegible]। श्री निम्बार्काचार्य ने देवालयों में राधाकृष्ण की प्रतिमाओं की [illegible] उनका अर्चन करने का उपदेश दिया। इनके मत में श्रीमद्भागवत [illegible] ग्रंथ स्वीकार किया गया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है [illegible] प्रसिद्ध आचार्य श्री शुकदेव ने श्रीमद्भागवत पर 'सिद्धान्तप्रदीप' [illegible] है। उपक्रम में श्रीमद्भागवत का महत्त्व निरूपित करते हुए [illegible] भगवान् ने वेदव्यास के रूप में समस्त वेदों का विस्तार करने के

[illegible] विनिर्मिते।
[illegible] ब्रह्मवादिने॥
[illegible] श्रुत्वा [illegible]
[illegible] विनिश्चितम्॥ —नारदीय पुराणे, उत्तरखण्ड चरमाध्याय

[illegible] सनकादिभिः।
[illegible] बभूव ॥ श्रीमद्भाग० ११. १३. १४

[illegible] श्लोक ३१ से ४० तक।

[illegible] १. ४. २३ पर निम्बार्क कृत भाष्य 'वेदान्तपारिजातसौरभ'।

[illegible] स्वीकारम्। जीवब्रह्मणोर्भेदेऽपि वैलक्षण्यव्यवहारोऽवताराव- [illegible] न क्वापि शास्त्रव्याकोपो भक्तिर्निर्विरुद्ध। न च धर्मसांकर्यम्। घट [illegible] तस्मादभेदे तद्दर्शनात्।

निम्बार्कदिव्यदशश्लोकी पर श्रीहरिव्यासदेव का भाष्य।

लिए महाभारत की रचना की। इसके उपरान्त उन्होंने वेदान्त का उपबृंहण (अर्थ विस्तार और पुष्टि) करने के लिए नारद की आज्ञा से मुमुक्षुओं पर अनुग्रह करने के लिए तीन सौ पैंतीस अध्याय और बारह स्कन्ध युक्त कल्पवृक्ष के समान मनोरथ फल प्रदान करने वाले श्रीमद्भागवत महापुराण का निर्माण किया। श्रीमद्भागवत का वर्ण्य-विषय 'भगवान्' है, (जो षडैश्वर्य सम्पन्न है।) 'परब्रह्म, परमात्मा' आदि पद इसी भगवान् के वाचक हैं और ग्रन्थकार ने प्रारम्भ से उसी के लक्षण बताकर स्वरूप का निरूपण किया है।[2]

श्रीमद्भागवत में जिस गोपालकृष्ण की मधुर लीलाओं का विशद वर्णन है और हिन्दी के कृष्ण भक्ति साहित्य में जिनका विस्तार दृष्टिगोचर होता है, निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य शुकदेव ने उस गोपवेषधारी श्रीकृष्ण को परब्रह्म माना है। 'श्रीकृष्ण असंख्य दिव्य गुणों के धाम हैं। भगवान् के एकमात्र आश्रय हैं और समस्त सौन्दर्य के के निधान हैं। वे चराचर जगत् के कारण हैं। उनका चरित्र अनवद्य है। वे वेद से ज्ञातव्य परब्रह्म हैं। भक्त प्रेमपरायणार्थ गोपवेषधारी श्रीकृष्ण ही एकमात्र शरण्य हैं।[3]

'श्रीमद्भागवत के उपक्रम श्लोक में 'जन्माद्यस्य यतः' वेदान्त सूत्र के उद्धरण से वेदान्तशास्त्रों का तथा 'धीमहि' गायत्री पद के उद्धरण से गायत्री के फलितार्थ का प्रकाश किया गया है तथा श्रीमद्भागवत का लक्षण यही है —

उपक्रमश्लोके जन्माद्यस्य यत इति वेदान्तसूत्रोपन्यासो वेदान्तानां तथा धीमहीति-गायत्री पदोपन्यासश्च गायत्र्याः फलितार्थप्रकाशकं श्रीमद्भागवतमिति द्योतयति।[4]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि निम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत को कितना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

श्रीमध्वाचार्य का द्वैतवादी सम्प्रदाय और श्रीमद्भागवत—

श्रीमध्वाचार्य (११९८ ई०)[5] कर्नाटक प्रान्त के प्रमुख वैष्णव आचार्य थे। इनका जन्म-नाम 'वासुदेव' था और आगे चलकर इन्हीं का नाम 'पूर्णप्रज्ञ', 'आनन्दतीर्थ' और

१ श्री शुकदेवाचार्य ने सम्भवतः अपने इस मत का आधार श्रीमद्भागवत के इस श्लोक को माना है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥ श्रीमद्भागवत १. २. ११

२ अथ वेदान्तोपबृंहणार्थं श्रीमन्नारदाज्ञया मुमुक्षु-अनुग्रहाय पञ्चत्रिंशदधिकत्रिशताध्यायनिबद्धं द्वादशस्कन्धयुतं कल्पद्रुमवदभीष्टार्थदं श्रीमद्भागवतमहापुराणं प्रारिप्सुरेतद्विषयभूतं परब्रह्म परमात्मादि पदवाच्यस्य भगवतो लक्षणप्रमाणाभ्यां तत्प्रत्यक्ष्यं परब्रह्मस्वरूपं करोति जन्माद्यस्येति — सिद्धान्त प्रदीप, वृन्दावन से १९६० वि० में प्रकाशित श्रीमद्भागवत पृ० २६।

३ कमनीयगुणराशिः स्वप्रपन्नैकबन्धुः सकलभुवनहेतुः सर्वसौन्दर्यसेतुः।
विगलितकलदोषो वेदवेद्यः परेशः भवतु मम गतिः स ... गोपवेषः वही पृ० २६

४ श्रीमद्भागवत, श्री शुकदेवाचार्य कृत सिद्धान्त प्रदीप टीका, वृन्दावन से १९६० वि० में प्रकाशित पृ० २७।

५ 'Life and teachings of Madhva'—By Shri Padmanabhacharya. Nateson Madras.

उपदेश दिया। इन्होंने रामेश्वरम् से लेकर बदरिकाश्रम तक और पूर्व में नवद्वीप बंगाल तक पर्यटन किया था। इन्होंने अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया जिनमें गीतातात्पर्यनिर्णय भागवततात्पर्यनिर्णय महाभारततात्पर्यनिर्णय ब्रह्मसूत्र भाष्य तथा दशोपनिषद् भाष्य विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। श्रीमद्भागवत को लक्ष्य कर रचित 'श्रीमद्भागवततात्पर्यनिर्णय' नामक अपने ग्रन्थ में इन्होंने उक्त महापुराण का दार्शनिक सिद्धान्त बड़े ही प्रकाण्ड पाण्डित्य के साथ प्रतिपादित किया है।

[illegible] शंकर के अद्वैत से प्रायः विपरीत ही हो गया। [illegible] जीव की पृथक् सत्ता मानने से [illegible] का सामंजस्य घटित हो जाता है। इस दृष्टि से माध्व [illegible] प्रायः अन्य सब भागवत मतों का अन्तर्भाव [illegible] चैतन्य का गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय तो एक प्रकार से माध्व सम्प्रदाय के अन्तर्गत ही है। [illegible] सम्प्रदाय में उसी प्रकार दृढ़ विश्वास किया जाता है जैसे पुष्टि सम्प्रदाय में। [illegible] जीव की मुक्ति का कारण ज्ञान न मानकर भगवदनुग्रह ही मानते हैं।

द्वैतवाद 'अथवा पूर्णप्रज्ञ दर्शन' का सारांश यह है कि जीव और ब्रह्म दो नित्य पृथक् सत्ताएँ हैं। जीव अणु है। वह दास है। ब्रह्म सगुण सविशेष और स्वतंत्र है। जीव का परम पुरुषार्थ यही है कि वह सालोक्यादि मुक्तियों में से किसी को प्राप्त करे। जीव और ब्रह्म में [illegible]। दृश्य जगत् सत्य है। विकारमय और परिवर्तनशील होने पर भी [illegible] नहीं है। कारण यह है कि असत्य का ज्ञान नहीं होता। ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय के अधीन है। चिन्तन से भिन्न ज्ञान की स्थिति [illegible] है। ज्ञान ही ज्ञेय का प्रतिपादक एवं [illegible] है। ब्रह्म [illegible] का विषय नहीं हो सकता, वह शास्त्रैकगम्य है। विष्णु [illegible] हैं—(१) भक्ति, (२) त्याग और (३) [illegible]।

[illegible] में इस सम्प्रदाय का सारांश बड़ी [illegible] है—

> श्रीमन्मध्वमते हरिः [illegible] तत्त्वतो—
> [illegible] नीचोच्चभावं गताः।
> [illegible] तत्साधनम्।
> [illegible]वेद्यो हरिः॥

[illegible] तत्त्व है। जगत् सत्य है। ब्रह्म और जीव [illegible]। जीवों में उच्च नीच का तारतम्य है और वे हरि के अनुचर हैं। [illegible] है। आत्मज्ञान द्वारा जो आत्मानन्द

तीन हैं प्रत्यक्ष अनुमान और आप्तवाक्य। हरि केवल वेदशास्त्रों द्वारा ही ज्ञेय हैं।

भागवत-तात्पर्य निर्णय—श्रीमध्वाचार्य ने श्रीमद्भागवत के महत्त्व का स्वीकार करते हुए उसके गूढ़ रहस्य के उद्घाटन के लिये भागवत-तात्पर्यनिर्णय नामक एक विस्तृत विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ की रचना की। उनका विश्वास है कि श्रीमद्भागवत महापुराण ब्रह्मसूत्र, महाभारत, गायत्री और वेद से सम्बद्ध है;[1] इसके प्रमाण में उन्होंने गरुड़ पुराण के श्लोक उद्धृत किये हैं।[2] जिनका सारांश यह है कि श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रों का अर्थ, महाभारत के अर्थ का निर्णय, गायत्री का भाष्यरूप और वेदार्थ से परिपुष्ट है। यह पुराणों का सार रूप और साक्षात् भगवन्मुख से कथित है। श्रीमध्वाचार्य ने ब्रह्माण्ड पुराण के उद्धरणों से भी बताया है कि वेद एक विशाल वृक्ष है जिसमें धर्म रूपी पुष्प, अर्थ रूपी पत्ते, काम रूपी पल्लव और मोक्ष रूपी फल लगते हैं। इन फलों को महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास ने लोक में महाभारत और श्रीमद्भागवत आदि के रूप में तोड़कर वितरित कर दिया है। उन्हीं फलों को शुक (तोते अथवा शुकदेव मुनि) ने अपनी रसमयी वाणी से आर्द्र कर दिया है, ग्रंथ में गुरुप्रोक्त उक्त वेदार्थों की व्याख्या करदी है। कुछ फलों को वेदार्थ की व्याख्या करने वाले व्यास ने वृक्ष के आगे ही दिखा दिया है। सज्जनों को उन फलों का रसपान मोक्ष पर्यन्त करना चाहिए।[3]

भागवत-तात्पर्य-निर्णय में श्रीमद्भागवत के अधिकारी, विषय, प्रयोजन और फल का सम्यक् सविस्तर विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ की रचना का प्रयोजन श्रीमद्भागवत के गूढ़ रहस्य का उद्घाटन करना है। आचार्य ने श्रीमद्भागवत में वर्णित समस्त वस्तु का समर्थन श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, पुराण, इतिहास, संहिता और तंत्रों के आधार पर किया है

१ ब्रह्मसूत्रमहाभारतगायत्रीवेदसम्बन्धस्चायं ग्रंथः।

—भागवत तात्पर्य निर्णय पृ० ८८३ ('सर्वमूलसंग्रह' निर्णयसागर, शके १८३३)

२ अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः।
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहित॥
पुराणानां साररूपः साक्षाद् भगवतोदितः।
द्वादशस्कन्धसंयुक्तः शतविच्छेद संयुतः।
ग्रंथोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः। वही, पृ० ८८६

३ धर्मपुष्पस्त्वर्थपत्रः कामपल्लवसंयुतः।
महामोक्षफलो वृक्षो वेदोऽयं समुदीरितः॥
शाखितानि फलानीह कृष्णद्वैपायनेन तु।
भारतादीनि यन्नोद्ध तथा भागवतं भुवि॥
आर्द्रीकृतानि तानीह शुकमन्मुनिभिर्जनैः।
व्याचक्षद्भिर्गुरूक्तान्वेदार्थान्संप्रनिश्चितान्।
कानिचिद्दर्शयामास वृक्षस्याग्रे फलानि तु।
व्याचक्षाणो वेदार्थं भगवाँल्लोकपूजितः॥
एतेषामथ तेषां वा रसं पिबत सज्जनाः।
आमोक्षान्महतीं प्रीतिरस्मे मे पश्यतो भवेत्॥ भागवततात्पर्यनिर्णय पृ० ८८३

और श्रीमद्भागवत को अपना परम प्रमाण ग्रंथ स्वीकार किया है। 'भागवततात्पर्य निर्णय' में श्रीमद्भागवत के अनुसार ही बारह स्कन्धों का विभाजन है और भागवत के प्रत्येक स्कन्ध के प्रत्येक अध्याय का तात्पर्य आवश्यकतानुसार संक्षेप और विस्तार से लिखा गया है। भागवत के समस्त स्कन्धों का तात्पर्य प्रायः उतने ही अध्यायों में लिखा गया है जितने अध्याय उस स्कन्ध में हैं।

श्री विजयध्वजतीर्थ और श्रीमद्भागवत—

माध्व-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य विजयध्वजतीर्थ ने श्रीमद्भागवत पर 'पदरत्नावली' नामक प्रसिद्ध टीका लिखी है। श्रीमद्भागवत के विषय में उनकी मान्यता है कि कालदोषों से [illegible] भागवत-धर्मों का पुनरुत्थान इसी महापुराण के द्वारा होना सम्भव है। 'पाराशर्य [illegible] मुनि व्यास ने वेदों का अनेक शाखाओं में विभाजन किया। वेदार्थ के निर्णय के [illegible] व्यास ने ब्रह्मसूत्रों का निर्माण किया। किन्तु ब्रह्म सूत्रों के अनधिकारियों के मोक्ष [illegible] उन्होंने पुराण संहिताओं को प्रकाशित किया। पुराण संहिताओं में भी व्यास ने [illegible] वेदान्त के गूढ़ अर्थ की प्रकाशिका बारह स्कन्ध तथा अठारह सहस्र श्लोकों से [illegible] भागवतपुराणसंहिता का प्रणयन किया है। इस संहिता के द्वारा कालदोषों से [illegible] भागवत धर्मों का आविष्करण और पुनरुद्धार करना भी व्यास का उद्देश्य था।[1]

श्रीमद्भागवत शास्त्र में विश्व के समस्त प्राणियों के जन्म-मरण रूप आवागमन-चक्र [illegible] उन्मूलन करने के लिये भगवान् का गुण कीर्तन किया गया है। भगवान् निर्गुण और [illegible] उभय रूप हैं। इसलिये उनके लिए 'परं' विशेषण का प्रयोग किया गया है।[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि माध्व सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत का [illegible] महत्वपूर्ण एवं उच्च स्थान है। द्वैतमत के प्रवर्तक स्वयं श्री मध्वाचार्य ने इस [illegible] लेखनी उठाकर इस बात को सिद्ध कर दिया है। आगे चलकर इस सम्प्रदाय की [illegible] महत्त्वपूर्ण शाखा चैतन्य ने पल्लवित की और उसमें श्रीमद्भागवत को और भी महत्त्व-[illegible] प्राप्त हुआ।

श्रीवल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवादी सम्प्रदाय और श्रीमद्भागवत

महाप्रभु वल्लभाचार्य—(सं० [illegible]) ये भक्तिकाल के अत्यन्त प्रभावशाली [illegible] में अग्रगण्य हैं। ये अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि थे और किशोरावस्था में ही वेद वेदान्त [illegible] आदि शास्त्रों में पारंगत हो गये थे। सं० [illegible] में जगन्नाथपुरी में वैष्णव और

1. [illegible] × × × × [illegible] व्यासनामा मुरमथनः × × × × [illegible] प्रकाशित [illegible] भागवत-[illegible] × × × × मंगलाचरण [illegible]।

—वृन्दावन वाली प्रति पृ० १२

2. [illegible] सकल प्राणिनां संसारोन्मूलनाय [illegible]। वही, पृ० १२

समर्थन किया और विजयी हुए।[1] निराकार मायावाद का खण्डन और साकार शुद्ध ब्रह्मवाद का प्रतिपादन एवं प्रचार इनके जीवन का लक्ष्य था। वल्लभ ने भारत की कई यात्राएँ कीं और भक्तिमार्ग का प्रचार किया। अपनी तृतीय यात्रा (सं० १५६५) में उन्होंने विद्यानगर में हुए एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त की थी। इस शास्त्रार्थ में एक ओर रामानुज, निम्बार्क, विष्णुस्वामी और मध्व सम्प्रदायों के वैष्णव वि[illegible] और [illegible] शांकर मतानुयायी अद्वैतवादी तथा शक्तिसाकादि सर्वेश्वरवाद पंडित [illegible] प्रकाण्ड पाण्डित्य से गिरते हुए वैष्णव-पक्ष को विजय-वैजयन्ती [illegible] राजा कृष्णदेवराय ने उनका 'कनकाभिषेक' किया था।

वल्लभ का दार्शनिक सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैतवाद' है। उनसे [illegible] सिद्धान्त का प्रवर्तन कर चुके थे, किन्तु वल्लभ के समय में वह [illegible] वल्लभ ने उसे पुनः सबल बना दिया। हाँ, विष्णुस्वामी के उपासना [illegible] उपासना मार्ग अवश्य ही भिन्न है। इसी से मूलतः विष्णुस्वामी सम्प्रदाय [illegible] श्री वल्लभाचार्य वैष्णव धर्म की एक पृथक् शाखा के प्रवर्तक माने जाते हैं। यह शाखा 'पुष्टि सम्प्रदाय' कहलाती है। विष्णुस्वामी ने सगुण एवं तामस [illegible] प्रचार किया था किन्तु वल्लभ ने निर्गुण, प्रेमलक्षणाभक्ति को अपनाया [illegible] बाल, सख्य, कान्त एवं ब्रह्म-भावना का सामञ्जस्य है। इसके बीज उन्हें श्रीमद्भागवत से प्राप्त हुए हैं। श्रीमद्भागवत में तांत्रिक-उपासना-पद्धति का भी [illegible] अनुसार अभिषेक, पंचामृत-स्नानादि भी वल्लभ ने अपने सेवामार्ग में ग्रहण किये हैं।

श्रीमद्भागवत वल्लभ का सर्वाधिक प्रिय स्वाध्याय-ग्रंथ था। [illegible] उन्होंने चौरासी स्थानों पर श्रीमद्भागवत का पारायण किया था। ये स्थान "महाप्रभु जी की बैठक" कहलाते हैं। प्रथम बैठक गोकुल में गोविन्द घाट पर है। [illegible] उन्होंने श्रीमद्भागवत का पारायण किया था।

पुष्टि सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत का स्थान—प्रायः समस्त [illegible] आचार्यों अपने मत को वेद, ब्रह्मसूत्रों और गीता से प्रमाणित कर उनका प्रचार किया है। इस प्रकार उक्त ग्रंथ 'प्रमाणत्रय' अथवा 'प्रस्थानत्रय' हैं। किन्तु श्री वल्लभाचार्य ने [illegible] श्रीमद्भागवत को भी प्रमाणकोटि में रखकर सम्मिलित कर दिया, और 'प्रस्थानचतुष्टय' की स्थापना की[3]। महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने सर्वोत्तमस्तोत्र में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के १०८ नामों का उल्लेख किया है। [illegible] "श्रीभागवतगूढार्थप्रकाशनपरायण" है।[4] एक अन्य नाम है, [illegible]

१ वैष्णव मत पृ० ?

२ श्रीमद्भागवत— स्क० ११, अध्याय २७

३ वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥ — तत्त्वदीप[illegible]

४ श्रीभागवतगूढार्थप्रकाशनपरायणः।
साकारब्रह्मवादैकस्थापको वेदपारगः ॥ — श्री सर्वो[illegible]

होता है। इतना ही नहीं आचार्य ने श्रीमद्भागवत को उक्त [illegible] (वेद ब्रह्मसूत्र और गीता) का सन्देहवारक माना है।[2] इससे उसकी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध होती है। [illegible] में श्रीमद्भागवत को व्यास की समाधि भाषा उचित ही कहा है क्योंकि भगवान् वेदव्यास ने इस सात्वत-संहिता (श्रीमद्भागवत) का अनुभव समाधि में ही किया।[3] वल्लभ [illegible] और अपने अंश रूप में व्यास को [illegible] तदुपरान्त अपना परम पद प्राप्त कराने [illegible] समस्त और विस्तृत व्यास का कार्य [illegible] जाना शक्य नहीं है, क्योंकि जीव का [illegible]

[illegible] नहीं करते। द्वितीय की इच्छा [illegible] लीला करते है।[4] सबके उद्धार के [illegible] प्रभु ने [illegible] आविर्भूत होकर अपना परम रहस्यमय वेदसारभूत प्रमेय [illegible] में वह ज्ञान व्यास द्वारा वर्णित है, [illegible] उन भगवद्वचनों का वास्तविक मर्म [illegible] भगवद् ज्ञान उसी प्रकार उच्चरित है

---

1. [illegible]
   [illegible] सर्वो० श्लोक १६
   [illegible] करने में समर्थ (अर्थात् सुबोधिनी नामक [illegible] लेने वाली स्त्रियों में (गोपिकाओं) के [illegible]
2. [illegible]
   [illegible] तत्त्वदीपनिबन्ध, प्रकरण २
3. [illegible]
   [illegible] श्रीमद्भागवत, १ ७. २–६
4. [illegible]
   [illegible] त० दी० नि० प्रक० २
5. [illegible] फलप्रकरण सुबोधिनी में उद्धृत पृ० १२

होने के कारण अस्पष्ट हैं अतः भगवद्कथा का समझना उनके लिए और भी कठिन है। साथ ही भगवान् ने अपनी   को भी तिरोहित कर लिया है। केवल अपनी 'नामलीला' से क्रीड़ा करने के लिये ही उन्होंने अपने स्वरूप व्यास का प्रकाश किया है। अपना रहस्य-ज्ञान कराने और भक्तों को अपना परमपद प्राप्त कराने के लिए [illegible]

१ [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

४ [illegible]

५ [illegible]

६ [illegible]

७ [illegible]

द्वारा समस्त कृष्णात्मक ज्ञान श्रीमद्भागवत में आद्योपान्त कहा है।[1]

तत्त्वदीपनिबन्ध के भागवतार्थ प्रकरण में श्री वल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत के विषय में लिखा है कि [illegible] भक्ति-संवर्द्धन के लिए और प्रतिपाद्य ईश्वर की [illegible] के लिए होता है। श्रीमद्भागवत को वेद इसलिए नहीं कहा गया कि [illegible] मुक्ति के लिए है। ब्रह्म-निरूपण में नेति-नेति कहने के कारण [illegible] का निर्वाह करने में समर्थ नहीं है। जब प्राणी इस लोक में [illegible] भगवान् ने व्यास रूप से भागवत की रचना की। कलियुग में [illegible] है, अतः श्रीमद्भागवत उनकी अपेक्षा नहीं रखता और [illegible] बन्धन मुक्त हो जाता है। इस समय वेद, स्मृति और पुराणों [illegible] हो गये हैं किन्तु श्रीमद्भागवत सर्वथा फल साधक है।[2] '[illegible] पुराणे विश्वासः।' इस न्याय से आचार्य ने श्री व्यास की [illegible] गणना पुराणों में की। शास्त्र उपासना विधायक हैं किन्तु [illegible] अभिधायक होने के कारण महान् गौरवशाली है। सर्गादि रूप [illegible] प्रतिपादन है, अतः तत्तद् भावापन्न श्रोता का कर्मक्षय होकर [illegible] होती है। चूँकि इस पुराण में वेद का सार उद्धृत किया गया है, [illegible] सिद्ध है, किन्तु बुद्धावतार में भगवान् ने वेद का निराकरण किया है [illegible] वेद नहीं कहा। श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी ने कहा है कि बुद्धावतार में भगवान् [illegible] दैत्यों के लिए की है।[3] अपितु वेदार्थ के अनुष्ठान से वेद [illegible] भागवत द्वारा सिद्ध होती है, अतः वेद से भी अधिक भागवत का [illegible] देश (कालादि) सापेक्ष नहीं है।[4] इसलिये उससे

---

१. [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] कृष्णात्मकमादितः ॥ तत्त्वदीप निबन्ध, पृ० २

२. [illegible] भक्तिहेतुकम् ।
[illegible] स्वतः पुनः ।
[illegible] ।
[illegible] सोऽभवदिति
[illegible] यदि दम्भः ।
[illegible] भागवतं कृतम् ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ त० दी० नि० पृ० २

३. [illegible] सर्वेषां न [illegible] अपितु दैत्यादीनामेवेति ॥
त० दी० नि० प्र० २ आवरणभंग ।

४. [illegible] फलप्रकरण सुबोधिनी में उद्धृत पृ० १४

असन्दिग्ध रूप से निःश्रेयस की सिद्धि होती है। किन्तु श्रीमद्भागवत का अनुष्ठान आजीविका के लिए कदापि न करना चाहिये।[१]

इस प्रकार वेद रूप कल्पवृक्ष का भागवत एक रसात्मक फल है।[२] अतः प्रमाण, प्रमेय, साधन और फल से भी यह श्रेष्ठ है, क्योंकि यह वेदादि प्रमाणों का सन्देहवारक है।[३] श्री वल्लभाचार्य ने सुबोधिनी के फलप्रकरण में श्रीमद्भागवत को समस्त वेदों का आभरण रूप बताया है, क्योंकि यह शास्त्र भगवत्कीर्ति प्रतिपादक है।[४]

श्री वल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत को तुरीय (चतुर्थ) प्रस्थान मानकर ही सन्तोष नहीं किया, अपितु इसे लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का साक्षात् विग्रह भी माना और मेदपाट (मेवाड़) स्थित अपने सेव्यस्वरूप श्री गिरिराजधारी (श्रीनाथ जी) के बारह अंगों में श्रीमद्भागवत के बारह स्कन्धों की स्थिति स्वीकार की है। श्रुतियों में भगवान् को 'द्वादशावयव' वाला कहा गया है।[५] श्रीमद्भागवत भी द्वादश-स्कन्धात्मक होने के कारण पूर्ण पुरुषोत्तम रूप है, ऐसा सिद्ध करके श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत को असीम श्रद्धास्पद बना दिया है[६]। श्रीनाथ जी के द्वादशाङ्ग और श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कन्धों की संगति इस प्रकार है—

प्रथम, द्वितीय स्कन्ध— पाद-युगल।

---

१ साधनं परमेतद्धि श्रीभागवतमादरात्।
पठनीयं प्रयत्नेन निर्हेतुकमदम्भतः॥
अथवा सर्वदा शास्त्रं श्रीभागवतमादरात्।
पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतुविवर्जितम्।
वृत्त्यर्थं नैव युञ्जीत प्राणैः कण्ठगतैरपि॥ — त० दी० नि० प्र० ३

२ यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते॥
इस वचन से गायत्री बीज है, वेद वृक्ष है और श्रीमद्भागवत फल है। श्रीमद्भागवत में भी इसे वेद वृक्ष का फल ही कहा गया है—
निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्।
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयम्।
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥ — श्रीमद्भाग० १. १. ३

३ "उत्तरं पूर्वसन्देहवारकं परिकीर्तितम्॥" — त० दी० नि० प्र० ३

४ "भगवत्कीर्तिप्रतिपादकभागवतादिशास्त्रं सर्ववेदेष्वाभरणरूपम्॥" — फलप्रकरण सुबोधिनी, पृ० १५

५ 'द्वादशो ह वै पुरुषः' — ,, पृ० १६ पर उद्धृत

६ श्रोतुर्वक्तुश्च तद्भावे द्वितीये संप्रनिर्णयः।
इतीदं द्वादशस्कन्धं पुराणं हरिरेव सः॥
पुरुषे द्वादशत्वं हि सक्थी बाहू शिरोस्तनम्।
हस्तौ पादौ स्तनौ चैव पूर्वपादौ करौ ततः॥
सक्थी हस्तद्वयं चैको द्वादशस्कन्धपरः स्मृतः।
अङ्घ्रिसहस्तः पुरुषो मध्यमाकाशमेव तु।
स्तनौ मध्यं शिरश्चेति द्वादशाङ्गमुदीरितः॥ — त० दी० नि० प्र० ३

तृतीय, चतुर्थ स्कन्ध	—	बाहुयुगल ।
पंचम, षष्ठ स्कन्ध	—	सक्थि (जंघा) द्वय ।
सप्तम स्कन्ध	—	दक्षिण हस्त ।
द्वादशस्कन्ध	—	उत्क्षिप्त वामहस्त ।
अष्टम, नवम स्कन्ध	—	स्तनयुगल ।
दशम स्कन्ध	—	मध्यभाग (हृदय) ।
एकादशस्कन्ध	—	शिरोभाग ।

उपर्युक्त प्रकार से भागवत के स्वरूप का निरूपण करने के अतिरिक्त श्रीवल्लभाचार्य ने भागवत के अर्थ को सात प्रकार से समझने का आदेश दिया है, जिससे एक ही अर्थ को [illegible] विरोध नहीं रहता।[1] ये सात प्रकार के अर्थ हैं—(१) शास्त्रार्थ [illegible] [illegible] रणार्थ, (४) अध्यायार्थ, (५) श्लोकार्थ, (६) शब्दार्थ और [illegible] नन्दरूप श्रीहरि की लीला को शास्त्रार्थ कहा गया है और वह [illegible] की है। उसमें अधिकारी और साधन इन दो को और सम्मिलित [illegible] में द्वादश अर्थ हो जाते हैं।[2] इसी प्रकार अन्य अर्थों का [illegible] किया है जिन्हें विस्तार-भय से यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

[illegible] श्रीमद्भागवत का इस प्रकार निरूपण करने का कारण यह दिया है [illegible] अर्थात् श्रीमद्भागवत को धारण करने से स्वयं श्रीकृष्ण धृत हो [illegible] प्राप्त हो जाती है।[3]

[illegible] श्रीमद्भागवत को एक अत्यन्त क्लिष्ट और दुरूह ग्रंथ समझते हैं [illegible] भगवदनुग्रहैकलभ्य समझते हैं। इसलिये इस ग्रंथ पर अनेकानेक [illegible] टीका होने पर भी उन्होंने 'सुबोधिनी' की रचना की। इन्होंने [illegible] भगवद्वाणी है। उसका अर्थ विवेचन करने में वाक्पति [illegible] अतिरिक्त और कोई समर्थ नहीं है।[4] अतः श्रीहरि ने मुझे व्यास के

---

१ [illegible] वाक्यं पदेऽपि वै ।
[illegible] मुक्ति ॥ — तत्त्वदीप निबन्ध, प्र० ३

२ [illegible] शास्त्रार्थं [illegible]
[illegible] कीर्त्यमूलकः
[illegible] मुक्तिराश्रयः ।
[illegible] — तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३
[illegible] हि शास्त्रैव न चान्यथा ।
[illegible] — तत्त्वदीपनिबन्ध, प्र० ३

३ [illegible] भवति वै धृतः ।
[illegible] ॥ — ,, ,, प्र० ३

४ [illegible] 'मुखादग्निरजायत' अतः अग्नि और वाणी दोनों की उत्पत्ति मुख से होने [illegible] लौकिक भगवद्वाणी का रहस्य समझने में समर्थ हैं। वल्लभ सम्प्रदाय [illegible] 'वैश्वानरावतार' माना जाता है। कुछ लोग उन्हें 'भगवद्वदनवैश्वानर' [illegible]

समान मानव शरीर देकर कृपा पूर्वक आज्ञा दी है। इसी से मैं बड़ी प्रसन्नता से व्यास रूप विष्णु के प्रिय बहुत से गूढ़ार्थों को प्रकट कर रहा हूँ"।[१] वल्लभाष्टक में भी कहा गया है कि वल्लभाचार्य ही श्रीमद्भागवत का यथार्थ स्वरूप प्रकट करने में समर्थ हो सके हैं। वागीश के अतिरिक्त वाक् (श्रुति) का भाव समझने में कोई समर्थ नहीं हो सकता क्योंकि पतिव्रता स्त्री अपने पति के सामने ही अपना स्वभाव प्रकट करती है।[२]

जैसा पहले कहा जा चुका है, श्री वल्लभाचार्य श्रीमद्भागवत को अलौकिक ग्रंथ मानते हैं और तर्क से इसको अर्थ संगति लगाना अनुचित समझते हैं।[३] इसीलिये उन्होंने अपनी भागवत टीका सुबोधिनी में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है कि "मैंने श्रीमद्भागवत का लक्षणा द्वारा अर्थ करके उसे जड़ जीवब्रह्मपरक सिद्ध नहीं किया है और न न्यून अर्थ से अन्य की पूर्ति की है। मैंने परोक्ष कथन के बिना इसका अर्थ किया है और उपर्युक्त सातों अर्थों की संगति बिना विरोध के बिठाई है। ग्रंथ के शब्दों से जो अर्थ निकलता है उसी का प्रतिपादन किया है।" इस प्रकार आचार्य ने इसमें अपनी कल्पना का भी प्रवेश वर्जित कर दिया है। शास्त्र से स्कन्ध प्रकरण आदि उत्तरोत्तर दुर्बल है यही संगति यहाँ रखी गई है।[४] श्रीमद्भागवत में तीन प्रकार की भाषा है—(१) समाधि भाषा, (२) मतान्तर भाषा और (३) लौकिकी भाषा। इनका भेद विभिन्न स्थलों पर लक्षणों से ज्ञात हो जायगा।[५]

श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत पर पर्याप्त साहित्य सर्जन किया है। यहाँ संक्षेप में उसका विवरण दिया जाता है।

---

१ अर्थं तस्य विवेचितुं नहि विभुर्वैश्वानराद्वाक्पतेः।
अन्यस्तत्र विधाय मानुषतनुं मां व्यासवच्छ्रीपतिः।
दत्त्वाज्ञां च कृपावलोकनपटुर्यस्मादतोऽहं मुदा।
गूढार्थं प्रकटीकरोमि बहुधा व्यासस्य विष्णोः प्रियम्॥ सुबोधिनी, १

२ न ह्यन्यो वागधीशाच्छ्रुतिगणवचसां भावमाज्ञातुमीष्टे।
यस्मात् साध्वी स्वभावं प्रकटयति वधूरग्रतः पत्युरेव॥ —श्री विट्ठलेशकृतं वल्लभाष्टकम् ४

३ अलौकिकास्तु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।
त० आ० भागवतार्थ प्रकरण निबन्धस्थ श्लो ४. १२

४ लक्षणां नैव वक्ष्यामि न न्यूनादन्यपूरणम्।
आर्थिकं तु प्रवक्ष्यामि परोक्षकथनादृते।
अविरोधेन सप्तानामर्थानामिह संगतिः।
उत्तरोत्तरदौर्बल्यं वाच्यं संक्षेपतः परम्।
भाषात्रयविरोधश्च कल्पभेदात्समाहितः।
भाषा त्रय विभेदश्च लक्षणैर्ज्ञाप्यते पुनः।
अर्थत्रयं तु वक्ष्यामि निबन्धेऽस्ति चतुष्टयम्॥ सुबोधिनी, १

५ एषा समाधिभाषा हि व्यासस्यामिततेजसः।
लौकिकी चान्यभाषा च समाधेः पौर्विके तु ते।
ते प्रकारमभिप्रायात् सर्वथा पूर्ववन्नहि।
न तद्विरोधो दोषाय ते वक्ष्येऽवसरे स्फुटे॥ त० दी० नि०, प्र० २

[illegible] सुबोधिनी ।

[illegible] सूक्ष्मटीका ।

[illegible] ार्थप्रकरणम् ।

[illegible] ानुक्रमणिका ।

[illegible] नामसहस्रम् ।

[illegible] नामावलिः ।

[illegible] अथवा खण्डशः प्राप्त हैं ।

[illegible] सुबोधिनी टीका—प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं दशम स्कन्ध [illegible] के प्रथम चार अध्यायों पर ही उपलब्ध है, सम्पूर्ण भागवत [illegible] लिखित निरोध स्कन्ध (दशम स्कन्ध) की टीका पढ़ लेने [illegible]

[illegible] टीका—यह केवल भागवत के प्रथम श्लोक (जन्माद्यस्य [illegible]) [illegible] सुना जाता है कि समस्त टीका जूनागढ़ के मदनमोहन [illegible] किन्तु अभी देखी नहीं गई है ।

(३) श्रीमद्भागवतार्थप्रकरण—यह आचार्य के प्रसिद्ध ग्रंथ तत्त्वदीपनिबन्ध [illegible] आचार्य ने श्रीमद्भागवत के अर्थ का बड़ी ही निपुणता से [illegible] का परिहार कर पूर्ण समन्वय स्थापित किया है ।

[illegible] —यह ग्रंथ बहुत सूक्ष्म कारिकाओं में समाप्त [illegible] महत्त्वपूर्ण है । अष्टछाप के दो महाकवि सूर और परमा-[illegible] सुनाकर उन्हें भगवल्लीला का स्फुरण कराया था । यह ग्रंथ [illegible] भाग में मुद्रित हो चुका है ।

(५) [illegible]—वल्लभ सम्प्रदाय में यह स्तोत्र बहुत प्रसिद्ध एवं [illegible] है । [illegible] में भगवान् का जो पुरुषोत्तमत्व प्रतिपादित है, उसी का [illegible] है । प्रथम स्कन्ध से लेकर द्वादश स्कन्ध की समाप्ति तक [illegible] का वर्णन है, उनका उल्लेख करते हुए आचार्य ने [illegible] सम्प्रदाय में यह मान्यता है कि एक बार पुरुषोत्तम नाम [illegible] भागवत के पाठ का पुण्यफल प्राप्त हो जाता है ।

[illegible]—इस ग्रंथ में निरोधस्कन्धीय (दशमस्कन्ध की) [illegible] नामों का प्रकारभेद से संग्रह किया गया है । जैसा कि [illegible] के लिए भक्त ने निरोध लीला के आधार पर त्रिविध [illegible] है । प्रथम बाललीला के नामों के पाठ से श्रीकृष्ण में [illegible] लीला के नामों के पाठ से श्रीकृष्ण में आसक्ति और

[illegible] राजलीला के [illegible] के [illegible] श्रीकृष्ण के [illegible] में [illegible] है, अतः भक्ति की प्राप्ति के इच्छुकों [illegible] सदा [illegible] करना चाहिए।[1]

श्रीमद्भागवत [illegible] है [illegible] कि [illegible] भगवान् [illegible] है [illegible] श्रीमद्भागवत [illegible] है। [illegible] श्रीकृष्ण [illegible] [illegible] की [illegible] हैं [illegible] किया [illegible] इस [illegible] [illegible] हैं [illegible] हैं [illegible] [illegible] में [illegible] साक्षात् [illegible] [illegible] करते [illegible] भक्ति से प्राणियों का उद्धार करना [illegible] [illegible] [illegible] करते हैं [illegible] किया है। [illegible] अनेक [illegible] श्रीमद्भागवत [illegible] [illegible] हो गए हैं। [illegible] का [illegible] करने के लिए श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने 'तत्त्वार्थदीपनिबन्ध' की रचना की और [illegible] की टीका लिखी। श्री पुरुषोत्तमजी ([illegible]) [illegible] 'आवरणभंग' नाम की टीका लिखी। श्री [illegible] ने [illegible] 'भागवत-प्रकाशित-सिद्धान्त' नाम से लिखा।

'तत्त्वार्थदीपनिबन्ध' की प्रकाश नामक टीका में वल्लभ ने लिखा है कि श्रीकृष्ण अपने स्वरूप से सब प्राणियों के उद्धार के लिए प्रयत्नशील हैं। उनका सर्वोद्धार प्रयत्नत्व सिद्ध करने के लिए वेदव्यास ने सर्वमुक्तक [illegible] निर्माण किया और श्रीमद्भागवत का मत (श्रीकृष्ण का सर्वोद्धार प्रयत्नत्व) किस प्रकार सिद्ध होता है, उसका निरूपण करने के लिए श्रीवल्लभाचार्य ने 'तत्त्वदीपनिबन्ध' की रचना की है।[2]

श्री पुरुषोत्तम जी ने अपनी [illegible] टीका 'आवरणभंग' में लिखा है कि भगवान् ने अपने अवतार काल में [illegible] सबका [illegible] से उद्धार किया। अब [illegible] [illegible] उद्धार करने के लिए [illegible] उन्होंने श्रीमद्भागवत की रचना की है। [illegible] होने के [illegible] सब को [illegible] है और भगवान् [illegible] होने [illegible] श्रीमद्भागवत से प्रकट हो जाते हैं।

---

1 [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥
—[illegible] की [illegible], श्लोक १, २, ३

2 तत्त्वार्थदीपनिबन्धः [illegible] १-२

वल्लभाचार्य का प्रयत्न सफल हुे । यद्यपि इस ग्रंथ का प्रधान लक्ष्य भागवतार्थ का निरूपण है तथापि पहले उसका कथन न कर शास्त्रार्थ (गीतार्थ) का वर्णन किया गया है क्योंकि श्रीमद्भागवत वेदादि समस्त शास्त्रों का निर्णायक है। श्रीमद्भागवत ही तत्त्वदीप है। 'तदनुग्रह कृपया तत्त्वदीपं पुराणम्' (श्रीमद्भा० १२. १२. ६८) उसी के आधार पर आचार्य ने अपने ग्रंथ का नामकरण किया है। तत्त्वार्थदीपनिबन्ध में आचार्य ने तीन प्रकरण [illegible]:

१—शास्त्रार्थ प्रकरण (गीतार्थ प्रकरण)
२—सर्व निर्णय प्रकरण और
३—भागवतार्थ प्रकरण[1]।

इस तीसरे प्रकरण में ही आचार्य ने श्रीमद्भागवत का अर्थ-प्रतिपादन किया है। [illegible] प्रथम (दो [illegible]) प्रकरण तीसरे का ही प्रतिपादक है। इसका प्रमाण शास्त्रार्थ प्रकरण के [illegible] सम्बन्धी उल्लेखों से मिलता है। इसमें कहा गया है कि 'ईश्वर' वाचक नाम [illegible] उपनिषद् में 'ब्रह्म' स्मृतियों में 'परमात्मा' और भागवत में 'भगवान्' शब्द का प्रयोग हुआ है। [illegible] ने अपने तीन प्रकरणों में क्रमशः तीनों नाम प्रयुक्त किये हैं।[2] इसी प्रकार भगवान् का स्वरूप निर्धारण करते हुए भी कहा गया है कि वेद के पूर्वकाण्ड [illegible] में श्रीहरि क्रियाशक्ति विशिष्ट यज्ञरूप हैं। दूसरे, अर्थात् ज्ञानकाण्ड में [illegible] [illegible]विशिष्ट) ब्रह्मरूप हैं और क्रिया एवं ज्ञान उभयविशिष्ट अवतारी कृष्ण का निरूपण श्रीमद्भागवत में किया गया है।[3]

श्रीचैतन्यमहाप्रभु का अचिन्त्यभेदाभेदवादी सम्प्रदाय और श्रीमद्भागवत

महाप्रभु श्रीचैतन्य—श्री चैतन्य अथवा गौराङ्ग का जन्म नवद्वीप बंगाल में सं० १५४२ (वि० [illegible] १४८५) में हुआ था। उस समय बंगाल की धार्मिक स्थिति बड़ी शोचनीय थी। लोग [illegible] और 'मनसादेवी' की स्तुति पूजा को ही धर्म का सर्वस्व मानते थे। [illegible] विद्वान् ब्राह्मणों पर भी शास्त्र का प्रभाव न था। बंगाल का तत्कालीन सबसे [illegible] और चैतन्य का जन्म स्थान नवद्वीप भौतिकता का शिकार बना हुआ था। [illegible] के [illegible] इने गिने ही थे।[4]

१ [illegible] सर्वनिर्णयः।
[illegible] यथामति ॥ त० दी० नि० प्र० १, ५

२ [illegible] भागवते तथा।
[illegible] भगवानिति शब्द्यते।
[illegible] ॥ त० दी० नि० प्र० १, ६

३ [illegible] महत्तनुः परे।
[illegible] श्रीभागवत ईर्यते ॥ त० दी० नि० प्र० १, ११

४ [illegible], अध्याय २

इस समय बाईस वर्ष के युवक चैतन्य की ख्याति एक प्रकाण्ड पण्डित के रूप में फैल चुकी थी। जब वे अपने स्वर्गीय पिता का पिण्ड करने गया गये तो वहाँ उन्हें 'ईश्वर-पुरी' नामक एक वैष्णव विद्वान का साक्षात्कार हुआ, यहीं से चैतन्य की जीवन धारा पलट गई। ईश्वरपुरी से चैतन्य ने भक्ति-धर्म की दीक्षा ले ली, उन्हें सदैव श्रीकृष्ण की अनन्त मधुरिमा के दर्शन हुए, अब वे भगवद्विरह से अहर्निश पीड़ित रहने लगे। वे हरिनाम संकीर्तन करते हुए नवद्वीप में विचरण करने लगे। निन्दक पण्डितों के कारण उन्हें अपनी वृद्धा माता और तरुणी पत्नी को घर छोड़कर पुरी जाकर रहना पड़ा। उन्होंने ६ वर्ष तक भारतवर्ष का पर्यटन किया और रामेश्वर, वृन्दावन तथा रामकेलि (गौड़ बंगाल) तक गए। पर्यटन काल में ही भारतवर्ष के दो धुरन्धर विद्वान, जिनसे सहस्रों शिष्य आकर वेदान्त पढ़ा करते थे, चैतन्य के भक्ति सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए। ये थे प्रकाशानन्द सरस्वती तथा वासुदेव सार्वभौम। इनके कारण चैतन्य सम्प्रदाय का प्रचार बड़ी शीघ्रता से हुआ। इनके अतिरिक्त बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् श्री रूपगोस्वामी, श्रीसनातनगोस्वामी तथा उनके भतीजे श्री जीवगोस्वामी भी चैतन्य के सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। इन तीनों आचार्यों ने श्री चैतन्य के दार्शनिक मत तथा भक्ति सिद्धान्त पर अपूर्व साहित्य की सृष्टि की है। चैतन्य का मत अत्यन्त लोकप्रिय हुआ और इसका कारण यह था कि चैतन्य ने लोक-मानस का स्पर्श किया था। सौन्दर्य, प्रेम, माधुर्य और आनन्द की ओर मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है ही। चैतन्य ने लोगों को भगवान् का यही मधुर रूप दिखाया और आश्वासन दिया कि ईश्वर के इस रूप का अनुभव हो जाने पर मनुष्य की समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

चैतन्य का दार्शनिक सिद्धान्त—परब्रह्म श्रीकृष्ण—ब्रह्म अनादि और अनन्त है। वह सर्वव्यापक है। ब्रह्म में अपरिमित शक्तियाँ और गुण अपनी चरमावस्था में विद्यमान हैं। ब्रह्म का अर्थ है, 'सबसे बड़ा'। 'बृहन्तोगुणा अस्मिन्निति ब्रह्म'। ब्रह्म अपने आकार गुणों और शक्तियों में सबसे बड़ा है।[1] वह पर-ब्रह्म श्रीकृष्ण ही हैं। वासुदेव, विष्णु, नारायण, शिव तथा अन्य देव जिनके नाम रूपों तथा शक्तियों का वर्णन शास्त्रों में है, श्रीकृष्ण के ही विभिन्न रूप हैं। ये शक्ति और गुणों में श्रीकृष्ण से न्यून हैं।[2] श्रीकृष्ण अद्वितीय हैं। वह सर्वतन्त्रस्वतंत्र हैं। वह विश्व का आदिकारण है। वह प्रत्येक वस्तु में तथा प्रत्येक वस्तु उसमें विद्यमान है। किन्तु श्रीकृष्ण एक मानव देहधारी हैं।[3] यद्यपि स्थूल दृष्टि से देखें तो वह एक प्राकृत मानव शरीर में ही सीमित है, किन्तु वस्तुतः वह अनन्त और सर्वव्यापक है।[4] वह सर्वथा परिपूर्ण, आद्यन्त-रहित, अपरिमित, चिरतारुण्य-युक्त तथा परम सुन्दर है।[5] वह श्रीकृष्ण का निज रूप है और अपनी इस अचिन्त्य शक्ति

१ श्री चैतन्यचरितामृत २ ४. ५३ तथा विष्णुपुराण १ १२. ५७
२ श्री लघुभागवतामृतम् १. ५. ८६ से ९० तक
३ श्रीमद्भागवतम् ३. २ १२
४ श्रीचैतन्यचरितामृत २. ५. ७५
५ वही २. २१. ८३

[illegible] का आश्रय है।[1] वह दिक्काल-
[illegible] और चित् तो ब्रह्म (श्रीकृष्ण) के गुण
[illegible] और माधुर्य के समस्त सम्भवरूप
[illegible] इसीलिए उसे 'रस' कहते हैं—
[illegible] 'कृष्ण' कहलाता है। 'कृष्ण' ही उनके
[illegible] सम्प्रदाय में 'कृष्ण' नाम को सर्वोच्च
[illegible] है वृन्दावन, व्रज अथवा गोकुल।

[illegible] उपाय है, अनन्य-प्रेम। प्रेम का
[illegible] आत्म समर्पण—प्रेमी और प्रेमास्पद
[illegible] की मात्रा और उपासना पद्धति के
[illegible] के भक्त का सामान्य लक्षण है
[illegible] लिए प्रेममय सेवा। वे स्वयं को

[illegible]

[illegible] और स्वयं को सेवक मानते हैं।
[illegible] समवयस्क हैं उनके सहचर हैं।
[illegible] होने के कारण परब्रह्म श्रीकृष्ण
[illegible] सहचर नन्द और यशोदा अपने को
[illegible] अपने आश्रित, कातिल और रक्षणीय
[illegible]

[illegible] प्रमुख है। शेष उनकी सखियाँ
[illegible] विकास हुआ है। शास्त्रीय शब्दावली
[illegible] के सम्पन्न व्यवहार, यहाँ तक कि
[illegible] और आस्वाद्य हैं[2]। श्रीकृष्ण
[illegible] का भी बन्धन अथवा संकोच नहीं
[illegible] रही है।

[illegible] में मानसिक इन्द्रिय सुख की गन्ध
[illegible] के सम्बन्ध हैं श्रीकृष्ण और गोपियों
[illegible] स्त्री-पुरुषों को अपने-अपने वासनात्मि

का भान रहता है किन्तु महाभाव में श्रीकृष्ण और गोपियों को सम्बन्धिप्यादि का अनुसंधान नहीं रहता। दाम्पत्य ही सब से अधिक घनिष्ठ और प्रगाढ़ सम्बन्ध है और यदि इसमें से क्षुद्र इन्द्रिय सुख की वासना को निकाल दिया जाय तो यह सम्बन्ध पवित्रतम बन जाता है। कृष्ण और गोपियों का प्रेम ऐसा ही है। उसका उद्देश्य प्रेम के अतिरिक्त कुछ नहीं—विशुद्ध प्रेम।

महाभाव का चरम रूप मादन है। यह आनन्दमयी उन्मत्तावस्था है। एकमात्र राधा ही इसकी अधिकारिणी है। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण भी नहीं। जब राधा में मादन भाव जाग्रत होता है तो श्रीकृष्ण के मिलन और नैकट्य के आनन्द के साथ ही विरह की अत्यन्त तीव्र वेदना भी उसमें मिली रहती है।

मानवजीवन का उद्देश्य—आनन्द की कामना मनुष्यमात्र में सहज है। उसकी समस्त क्रियाएँ आनन्द सम्पादन के लिये ही होती हैं किन्तु पार्थिव वस्तुओं से अक्षय आनन्द की आशा व्यर्थ है। अतः आनन्द, माधुर्य और प्रेम के एकमात्र निधान श्रीकृष्ण ही हमें अक्षय और वास्तविक आनन्द दान दे सकते हैं। अतः श्रीकृष्ण की प्राप्ति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य होना चाहिये। इस उद्देश्य तक पहुँचने के लिए चैतन्य सम्प्रदाय में निम्नांकित पाँच साधनों पर जोर दिया गया है।

१—श्रीकृष्ण भक्तों का संग
२—श्रीकृष्ण-नाम का अखण्ड कीर्तन
३—श्रीकृष्ण की प्रेम लीलाओं का श्रवण
४—श्रीकृष्ण की प्रकटलीला के धाम वृन्दावन में निवास (यदि शरीर से न हो तो मानसिक रूप से ही)
५—श्रीकृष्ण की प्रतिमा का प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण-भाव से अर्चन

उक्त साधनों पर दृष्टिपात करने से यह तो स्पष्ट ही हो जाता है उक्त पाँचों साधनों का सविस्तर विवेचन और माहात्म्य श्रीमद्भागवत में है। इन साधनों की सफलता के श्रद्धा, साधु-संग, आचार-पालन, आदि जिन सात सोपानों का चैतन्य सम्प्रदाय में सविस्तर वर्णन है उनका बहुत ही युक्तियुक्त और वैज्ञानिक विवेचन श्रीमद्भागवत में किया गया है।[2] अतः यह कहना अनुचित न होगा कि चैतन्य-सम्प्रदाय की आधार भूमि तत्त्वतः और व्यवहारतः श्रीमद्भागवत ही है। अतः आगे हम चैतन्य सम्प्रदाय के भागवत सम्बन्धी साहित्य का विवेचन करेंगे।

चैतन्य सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत का महत्त्व

भक्ति के समस्त आचार्यों का लक्ष्य भक्ति सिद्धान्त को स्थापित कर शंकर के मायावाद का उन्मूलन करना था। चैतन्य सम्प्रदाय मध्व सम्प्रदाय के ही अन्तर्गत है। अतः चैतन्य सम्प्रदाय के आचार्यों ने मध्वाचार्य (आनन्दतीर्थ) की स्तुति भक्ति प्रवर्तक के

---

१ उज्ज्वलनीलमणि (स्थायिभाव) १५३
२ श्रीमद्भागवत ३. २५. ३२-४४

[illegible] श्रीमद्भागवत के [illegible] (प्रद्युम्न) [illegible] इसी प्रकार [illegible] श्रीमद्भागवत [illegible] हैं। [illegible]

[illegible]

[illegible] श्रीमद्भागवत [illegible]

[illegible] है। [illegible]

[illegible]

यहाँ उनका विवरण दिया जाता है। साथ ही यह भी दिखाया जायगा कि उक्त सम्प्रदाय में भागवत को कितना महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

श्रीभागवत सन्दर्भ—इसका प्रसिद्ध नाम 'षट् सन्दर्भ' है। इसके रचयिता श्री जीवगोस्वामी हैं। इस ग्रंथ को चैतन्य सम्प्रदाय में बहुत मान्यता है। इसमें श्रीमद्भागवत का सांगोपांग अर्थ और रहस्योद्घाटन किया गया है। अतः इस 'सन्दर्भ' नाम ही बहुत उपयुक्त है। सन्दर्भ का लक्षण आचार्यों ने यह किया है कि जिसमें किसी महान् ग्रंथ के गूढार्थ का प्रकाश, उसकी सारोक्तियों की श्रेष्ठता, उसकी नानार्थवत्ता और उसके आस्वाद्यत्व का प्रतिपादन हो, वह 'सन्दर्भ' कहलाता है।[1] श्रीभागवतसन्दर्भ में ६ सन्दर्भों द्वारा श्रीमद्भागवत की उक्त रूप से वैज्ञानिक व्याख्या की गई है। अतः स्पष्ट है कि जीवगोस्वामी ने श्रीमद्भागवत को अपने मतानुसार किस मनकी संलग्नता के साथ व्याख्यात किया है। श्रीभागवत सन्दर्भ में छः सन्दर्भ हैं। इसीलिये इस ग्रंथ को 'षट् सन्दर्भ' भी कहते हैं। इन सन्दर्भों के नाम क्रमशः ये हैं—

प्रथम—तत्त्वसन्दर्भः
द्वितीय—भगवत्सन्दर्भः
तृतीय—परमात्मसन्दर्भः
चतुर्थ—श्रीकृष्णसन्दर्भः
पंचम—भक्तिसन्दर्भः
षष्ठ—प्रीतिसन्दर्भः

श्रीभागवत सन्दर्भ के अनुबन्ध चतुष्टय में कहा गया है कि श्रीकृष्ण इस ग्रंथ के विषय उनका वाच्य-वाचक-लक्षण सम्बन्ध, उनका प्रेम-लक्षण प्रयोजन और भक्त अधिकारी हैं। किन्तु पुरुष (जीव) भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणापाटव इन दोष चतुष्टय से युक्त होने के कारण उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रत्यक्षादि प्रमाण भी सदोष होंगे और वे अत्यन्त अलौकिक अचिन्त्य स्वभाव वस्तु (श्रीकृष्ण) को स्पर्श भी नहीं कर सकेंगे। अतः अनादि-सिद्ध, समस्त लौकिकालौकिक ज्ञान के आदि कारण अप्राकृत वचन लक्षण वेद ही उस अलौकिक वस्तु (श्रीकृष्ण) के परिज्ञान में प्रमाण है। किन्तु शब्द प्रमाणभूत वेद सम्प्रति दुरूह है और वेदार्थ का निरूपण करने वाले मुनियों में भी परस्पर विरोध है, अतः वेद के अर्थ का निर्णय करने वाले इतिहास और पुराण रूप शब्द प्रमाण पर ही विचार करना चाहिये।[2] वेदार्थ को इतिहास पुराणों के द्वारा पुष्ट करना चाहिये।[3]

---

१ गूढार्थस्य प्रकाशश्च सारोक्तिः श्रेष्ठता तथा।
नानार्थवत्त्वं वेद्यत्वं सन्दर्भः कथ्यते बुधैः॥
—टीकाकार बलदेव विद्याभूषण द्वारा जीवगोस्वामिकृत श्रीभागवत सन्दर्भ के अन्तर्गत तत्त्व सन्दर्भः की टीका में।

२ वेदार्थनिर्णायकस्येतिहासपुराणात्मकः शब्द एव विचारणीयः। श्री भाग० सं० तत्त्व स० ६, पृ० ७

३ इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

असम्भव है और सुवर्ण ककरण की पूर्ति सासे से असम्भव है। अत इतिहास-पुराण भी वेद हैं। ऋग यजु साम अथर्वाणि वेद और इतिहास पुराणादि भी ईश्वर के निःश्वास हैं।[२] इतिहास-पुराण को पंचम वेद नाम से भी स्पष्ट अभिहित किया गया है[३] अत इतिहास-पुराण का वेदत्व सिद्ध होता है[४] किन्तु पुराणों के इस प्रकार प्रमाण-कोटि में [illegible] उनके भिन्न-भिन्न देवता प्रतिपादक [illegible] उनका अर्थ दुरधिगम है।[५] अतः मत्स्यपुराण [illegible] विभागानुसार पुराणों की श्रेष्ठता का [illegible] है और ब्रह्म का दर्शन होता है। अतः [illegible] साधन है, यह सिद्ध हुआ।[७] समस्त वेद-[illegible] ब्रह्मसूत्रों का प्रणयन किया और उनका [illegible] अर्थ का सार, सर्व-प्रमाण-चक्रवर्त्ति हमारा परम [illegible] श्रीमद्भागवत [illegible] रचा।[८] समस्त पुराणों की रचना कर [illegible] ने अपने सूत्रों के अकृत्रिम भाष्यभूत [illegible] किया। इसमें समस्त शास्त्रों का समन्वय है, [illegible] करता है।[९] इसमें गायत्री में प्रयुक्त [illegible] मंत्र का आदिरूप है और उसका प्रत्यक्ष [illegible] धीमहि' आदि पदों से गायत्री के सर्व लोका- [illegible] बोध [illegible] है। 'धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परम.'

१ [illegible] पृ० ७, वेदार्थस्येति बोध्यम्-टीका पृ० ७

२ [illegible] यजुर्वेदः
[illegible] मैत्रेयीयाज्ञवल्क्य सम्वाद
—भागवत सन्दर्भ, त० संदर्भ पृ० ७

३ [illegible]

४ [illegible] त० सन्दर्भ, पृ० १०, पंक्ति १

५ [illegible]

६ [illegible]
यदुक्तं मात्स्ये, तद् सन्दर्भ, पृ० १२

७ [illegible] सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनमिति न्यायात् सात्त्विकमेव
श्रीभाग० संद० प्रथमः तत्त्व सं०

८ [illegible] तात्पर्यसारं ब्रह्मसूत्रोपजीव्यं च "भवद्भुवि [illegible] प्रमाणानां चक्रवर्तिभूतमस्मदभिमतं श्रीमद्-[illegible]
श्रीभाग० सन्द०, त० सन्द० पृ० १२

९ [illegible]

के ध्यानादि लक्षणों से युक्त धर्म को ही धर्म कहता है यह बात स्पष्ट किया जायगा।[1] मत्स्यपुराण में लिखा है कि जिसमें गायत्री को अधिकृत कर धर्म-विस्तार वर्णित है वह वृत्रासुर वधोपेत ग्रंथ भागवत कहलाता है।[2]

श्रीमद्भागवत भगवान् और भक्त दोनों को प्रिय है, अतः यह परमस्वाभिमत है।[3] ऐसा पद्मपुराण में कहा गया है।[4] स्कन्दपुराण में भी कहा गया है कि श्रीमद्भागवत का भगवद् विग्रह के सामने भक्ति सहित पाठ करने से कुलसहित भगवद्धाम प्राप्त होता है।[5] श्री जीवगोस्वामी ने अनेक पुराणों के आधार पर श्रीमद्भागवत को पुराणों का श्रेष्ठ कहा है।[6] और परमार्थ के इच्छुकों को एकमात्र श्रीमद्भागवत पर विचार करने की सम्मति दी है।[7]

श्री जीवगोस्वामी ने श्रीमद्भागवत का महत्त्व प्रतिपादन करने के लिये श्रीमद्भागवत पर अनेक आचार्यों की टीकाओं, भाष्यों और निबन्धों की चर्चा की है।[8] उनमें से उल्लेखनीय ये हैं—

१—तन्त्रभागवत – यह हयशीर्ष पंचरात्र के शास्त्र प्रस्ताव में परिगणित है और श्रीमद्भागवत का भाष्यभूत है।

२—श्रीहनुमद्भाष्य

३—वासनाभाष्य

४—सम्बन्धोक्ति

५—विद्वत्कामधेनु

६—तत्त्वदीपिका

७—भावार्थदीपिका

८—परमहंसप्रिया

९—शुकहृदया, ये व्याख्यायें हैं और

---

१ श्रीभागवतसन्दर्भे प्रथमः त० सन्द०, १६, पृ० १४

२ यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः। वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते॥

उद्धृत—श्रीभाग० सन्द० पृ० ११

३ श्रीमद्भागवतस्य भगवत्प्रियत्वेन भागवताभीष्टत्वेन च परमसाम्मत्यम्। तत्त्वसन्द० पृ० १४

४ पुराणं त्वं भागवतं पठस्व पुरतो हरेः।
चरितं दैत्यराजस्य प्रह्लादस्य च भूपते।
× × रात्रौ तु जागरः कार्यः श्रोतव्या वैष्णवीकथा।
गीता नामसहस्रञ्च पुराणं शुकभाषितम्।
पठितव्यं प्रयत्नेन हरेः सन्तोषकारणम्॥ उद्धृत तत्त्व सं० पृ० १४

५ श्रीमद्भागवतं भक्त्या पठते हरिसन्निधौ। जागरे तत्पदं याति कुलवृन्दसमन्वितः।

६ पूर्वं सदन्तत्वेन मत्स्यादिभिर्न तदेवसंक्षिप्य सूक्तत्वेन पुनः प्रकटितं तस्मात् विस्तीर्णत्वेन साधारं श्रीभागवतमिति॥ तत्त्व सं०, पृ० २५

७ तदेवं परमार्थविवित्सुभिः श्रीभागवतमेव साम्प्रतं विचारणीयमिति स्थितम्॥ तत्त्व संदर्भे अ०२२ पृ०, २६

८ तत्त्वसंदर्भे पृ०, १७

१—मुक्ताफल

२—हरिलीला,

३—भक्ति रत्नावली। ये तीन निबन्ध ग्रंथ है।

श्री जीवगोस्वामी ने श्रीमद्भागवत के ही आधार पर श्रीमद्भागवत को श्रीकृष्ण का रूप ही माना है।[१] हेमाद्रिकार के वचन के आधार पर 'मुक्ताफल' से उद्धरण देते हुए उन्होंने कहा है, 'वेद प्रभु के समान, पुराण मित्र के समान और काव्य प्रिया के समान उपदेश देते हैं। इन तीनों का समन्वय श्रीमद्भागवत में मौजूद है।[२]

श्री जीवगोस्वामी ने श्रीमद्भागवत को परम निःश्रेयस की प्राप्ति के लिये विचारणीय बनाया है और पौर्वापर्य्य के अविरोध के साथ अपने षट्सन्दर्भ में उसका विस्तृत व्याख्यान किया है।[३] उन्होंने श्रीधर स्वामि की टीका का अनुसरण किया है। साथ ही द्रविड देश के विख्यात भक्तों, श्री (लक्ष्मी) से प्रवृत्त श्री वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य श्री रामानुजाचार्य के श्रीभाष्यादि में उल्लिखित मतों का भी प्रामाण्य स्वीकार किया है।[४] यही नहीं उन्होंने दक्षिण और गौड देश के विख्यात माधवेन्द्रपुरी आर्य, विजयध्वज, व्यासतीर्थादि विद्वानों के गुरु श्रीमध्वाचार्य के भागवततात्पर्यनिर्णय, भारततात्पर्यनिर्णय और ब्रह्मसूत्र के भाष्य से भी उदाहरण उद्धृत किए हैं। श्रीमद्भागवत का प्रामाण्य सिद्ध करने के लिए गरुड, पद्म स्कन्दादि पुराण, महासंहिता, तंत्र भागवत, ब्रह्मतर्कादि तंत्र ग्रंथों से उद्धरण लिये हैं।[५]

श्री जीवगोस्वामी ने भागवत सदर्भ (षट् संदर्भ) में श्रीमद्भागवत का प्रयोजन भगवदासक्ति जनक भगवत्प्रेम ही बतलाया है। और वह प्रेम तल्लीना श्रवणादि लक्षण भगवद्भजन से ही उत्पन्न होता है।[६] श्रीमद्भागवत के उन श्लोकों को श्री जीवगोस्वामी ने उद्धृत किया है जिनसे श्रीमद्भागवत का भक्तिपरकत्व सिद्ध होता है।[७]

---

१ अतो विस्पष्टं श्रीकृष्णप्रतिनिधिरूपमेवेदम्। यत उक्तं प्रथमस्कन्धे—
कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह।
कलौ नष्टदृशामेषः पुराणार्कोऽधुनोदितः॥ त० सन्दर्भ, पृ० १६

२ वेदाः पुराणं काव्यञ्च प्रभुर्मित्रं प्रियेव च।
बोधयन्तीति हि प्राहुस्त्रिवृद्भागवतं पुनः॥ त० सन्दर्भ, पृ० २०

३ अतोऽत्र परमनिःश्रेयसनिश्चयाय श्रीभागवतमेव पौर्वापर्याविरोधेन विचार्यते। तत्रास्मिन् सन्दर्भ षट्कात्मके ग्रन्थे सूत्रस्थानीयमवतारिकावाक्यम्। विषय वाक्यं श्रीभागवतवाक्यम्......।
तत्त्व संदर्भ २७, पृ० ३०

४ तत्त्वसन्दर्भ [illegible], पृ० [illegible]

५ वही, पृ० ५२

६ अथ प्रयोजनाख्यः पुरुषार्थश्च तादृशसदासक्तिजनकं तत्प्रेम सुखमेव। ततोऽभिधेयमपि तादृशतत्प्रेम-लक्षणं श्रवणादिलक्षणं भगवद्भजनमेवेत्यायातम्। (श्रीभाग० सन्द०, त० सन्द० २६) पृ० २३

७ अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम्॥
यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा॥ श्रीमद्भा० प्र० स्क० अ० ७, ६–७

पर प्रत्येक दृष्टिकोण से विचार किया है और उसका परमतात्पर्य स्थापित किया है।

भागवत सन्दर्भ के छहों सन्दर्भ एक से एक अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम तत्त्वसन्दर्भ में श्री जीवगोस्वामी ने श्रीमद्भागवत के मूल तत्त्वों—महाविष्णु आदि का विस्तार वर्णन किया है और सर्गादि के लक्षण कहे हैं।[1] पुराणों के पाँच और दस लक्षणों के आधार पर अल्प और महापुराण के जो मत हैं उनकी समीक्षा करते हुए उन्होंने श्रीमद्भागवत को महापुराण कहा है।[2]

श्री जीव ने कहा है कि मैंने भागवत सन्दर्भ में क्रमशः विस्तार से षट् सन्दर्भों में श्रीमद्भागवत का तात्पर्य निर्णय किया है।[3] प्रथम तत्त्वसंदर्भ में परमार्थभूत वास्तव में वेद्यवस्तु ब्रह्म का निरूपण है। द्वितीय सन्दर्भ में भगवत्तत्त्व, तृतीय में परमात्मतत्त्व, चतुर्थ में श्रीकृष्णतत्त्व, पंचम में भक्तितत्त्व और अन्तिम षष्ठ सन्दर्भ में प्रीतितत्त्व का बहुत ही मार्मिक विवेचन हुआ है। वास्तव में श्री चैतन्य सम्प्रदाय के आचार्य प्रवर जीवगोस्वामी ने 'षट् सन्दर्भ' द्वारा श्रीमद्भागवत का जो गूढ़ रहस्योद्घाटन किया है, वह अन्य सम्प्रदायों में दुर्लभ है।

बृहद्भागवतामृतम्—इस विशाल ग्रंथ के रचयिता श्री सनातनगोस्वामी हैं। इस पर बलदेव विद्याभूषण की 'दिग्दर्शिनी' नामक विस्तृत टीका है। यह एक परमविद्वत्तापूर्ण विस्तृत ग्रन्थ है। इसमें दो खण्ड हैं। प्रथमखण्ड का नाम है 'भगवत्कृपासार-निर्धार-खण्ड'। इस खण्ड में ७ अध्याय हैं। द्वितीय खण्ड का नाम है 'गोलोक माहात्म्यखण्ड'। इसमें भी बड़े-बड़े ७ अध्याय हैं।

बृहद्भागवतामृत में श्रीमद्भागवतोक्त भक्ति का ही—विशेषकर गोपी प्रेम का ही—अत्यन्त विस्तृत विवेचन एवं प्रतिपादन किया गया है। इसमें जनमेजय और जैमिनि का सम्वाद है।[4]

---

१ तत्त्वसन्दर्भ, पृ० ४६

२ अस्य श्रीभागवतस्य महापुराणत्वं प्रकारान्तरेण च कथ्यते तत्रैव ...—
तत्त्वसन्द० पृ० ४९

३ अथ क्रमेण विस्तरतस्तस्यैव तात्पर्यं निर्णेतुं सन्दर्भाभिधेयमत्रै ... षड्भिः सन्दर्भैर्निर्णेष्यमाणेषु प्रथमं तस्य वाच्यवाचकता सम्बन्धीदं शास्त्रं, तत्र धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्रादि पद्ये सामान्यकारतयावदाह। वेद्यं वास्तवमत्र वस्त्विति॥
टीका च—'अत्र श्रीमति सुन्दरे भागवते वास्तवं परमार्थभूतं वस्तु वेद्यं न तु वैशेषिकादिवद् द्रव्यगुणादि रूपम्' इत्येषा॥ श्री वेदव्यासः।१।१।२। तत्त्वसंद० पृ० ३७

४ भगवद्भक्तिशास्त्राणामयं सारस्य संग्रहः
अनुभूतस्य चैतन्यदेवे तत्प्रियरूपतः॥
श्रृण्वन्तु वैष्णवाः शास्त्रमिदं भागवतामृतम्।
सुगोप्यं प्राह यद् प्रेम्णा जैमिनिर्जनमेजयम् ॥१३-१४॥ श्रीबृहद्भागवतामृतम्, खण्ड १, अध्याय १

[illegible] जिस प्रकार गोपी प्रेम को अत्यन्त उत्कृष्ट बताया गया है उसी [illegible] करता है।[1] श्रीमद्भागवत में जिन-जिनकी महिमा वर्णित [illegible] उदाहरणार्थ मथुरा, वृन्दावन, यमुना, गोवर्धन, श्रीकृष्ण [illegible] की भी स्तुति की गई है।[2]

[illegible] में कहा गया है कि इस ग्रन्थ में धर्म, अर्थ, काम और [illegible] भक्ति का निरूपण किया गया है। भक्ति से ब्रह्म- [illegible] प्राप्त होती है। वह भक्ति गोपीनाथ भगवान् श्रीकृष्ण [illegible] ही करनी चाहिए और वह भक्ति भी प्रेम लक्षणा होनी [illegible] के व्रजजनों के प्रेम को आदर्श मानकर सर्व निरपेक्ष [illegible] ऐसी भक्ति करते हैं तो उन लोगों को वैकुण्ठ से भी [illegible] श्रीकृष्ण के साथ निरन्तर स्वैर विहार रूप परमफल प्राप्त होता है।[3] [illegible] श्रीकृष्ण ही सेव्य हैं। श्रीमद्भागवत में भी कपिलदेव ने [illegible] की उपासना का उपदेश दिया है—

[illegible] सुस्मितानुग्रहकातरम् ।
[illegible] यावन्न च्यवते मनः ॥ श्रीमद्भाग० ३. २८. १७,१८

इस प्रकार [illegible] वैकुण्ठ के ऊपर श्रीमद्गोलोक में विहार करते हैं। [illegible] की महिमा वर्णनादि महाप्रसाद भी अत्यन्त दुष्प्राप्य है [illegible]। किन्तु शंका निवृत्त करते हुए कहते है कि भगवान् की [illegible] यह संभव है। अपने चरण कमलों का प्रेमदान करने के [illegible] लोक से अवतीर्ण हुए हैं। अतः उनका प्रसाद सुप्राप्य है [illegible] लिए अवतीर्ण हुए हैं, तथापि वह प्रयोजन गौण और [illegible] प्रयोजन है। श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध में कुन्ती की [illegible] —

[illegible] मुनीनाममलात्मनाम् ।
[illegible] विधानार्थं कथं पश्येमहि स्त्रियः ॥ श्रीमद्भाग० १. ८. २०

[illegible] प्रकार की है—

[illegible] भक्तियोगं कारयितुमवतीर्णं त्वां कथं वयं स्त्रियः [illegible] को भी अपने गुणों से आकृष्ट कर उनसे भक्तियोग

---

1. [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] श्रीबृहद्भाग० २. १. ७
2. [illegible]
3. [illegible] भगवतो भक्तिर्निरूप्यते ।
[illegible] मुरारिणा सम्पद्यते ॥ श्री बृहद्भागवतामृत टीका, १. १
4. [illegible]

करने के लिए अवतीर्ण हुए उन्हें हम किसी कैसे प्रेम करती हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का व्रज-गोपियों से नित्य प्रेम है अतः उनका नाम है व्रजगोपिकावल्लभ।[1] फिर श्रीकृष्ण का गोपियों से महान् प्रेम है वे गोपियाँ भी परम माहात्म्यवती हैं। वे श्रीकृष्ण की नित्य सिद्ध, निरतिशय प्रेम विषया हैं। इसीलिये निश्चय [illegible] और अत्यन्त महान् माहात्म्य है।[2] श्री चैतन्यदेव यद्यपि भगवदवतार हैं तथापि [illegible] रूप से प्रेमभक्ति का विशेष प्रकाशन करने के लिए वे मूर्तिमान् [illegible] हैं।[3] इसीलिए गोपियों का ही सबसे अधिक माहात्म्य प्रतिपादन किया गया है। श्रीमद्भागवत में भी श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा है:—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥

(श्रीमद्भागवत १० ३२. २२)

अतः गोपियों का महत्व अनिर्वचनीय है।

बृहद्भागवतामृत पूर्णतया श्रीमद्भागवत को ही आधार मानकर उसके समस्त भक्ति तत्व का सर्वांगीण वर्णन करता है तथा अपने सिद्धान्तों की प्रामाणिकता के लिए श्रीमद्भागवत के वचन ही उद्धृत करता है।

श्रीलघुभागवतामृतम्—इस ग्रंथ के रचयिता श्री रूपगोस्वामी हैं। इस पर श्रीबलदेव विद्याभूषण की 'टिप्पणी' नामक विस्तृत टीका है। लघुभागवतामृत में 'पूर्वखण्ड' और 'उत्तरखण्ड' नामक दो खण्ड हैं। ग्रंथकार ने लघुभागवतामृत के दो भेद किये हैं—कृष्णामृत और भक्तामृत।[4] श्री रूपगोस्वामि ने कहा है कि श्री सनातन गोस्वामी ने बृहद्भागवतामृत में जो कुछ विस्तार से कहा है, मैं उसे संक्षेप से कहूँगा।[5]

लघुभागवतामृत में श्रीमद्भागवत को आधार मानकर अनेक विषयों का बहुत सुन्दर सप्रमाण निरूपण किया गया है। विशेषकर भगवत्तत्व और अवतारतत्त्व का निरूपण अत्यन्त वैज्ञानिक रूप से किया गया है। इसमें श्रीमद्भागवत के आधार पर श्रीकृष्ण के 'स्वयंरूप', 'तदेकात्मरूप' और 'आवेशरूप' इन त्रिविध रूपों का निरूपण है।[6] और फिर

---

१ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] —बृहद्भागवत १।१।१
यथा—
गोपीषु श्रीमन्नन्दव्रजवल्लभीषु यस्य नित्यं प्रेम [illegible]॥ वही पृ० ३

२ वही, पृ० ३

३ यद्यपि श्रीचैतन्यदेवो भगवदवतार एव तथापि प्रेम भक्ति विशेष प्रकाशनार्थं—
स्वयमवतीर्णत्वात् स गरवै स्वयं गोपीभावेऽपि [illegible]॥ बृहद्भागवतामृत टीका, पृ० १

४ लघुभागवतामृत, १।१।६

५ श्रीमत्प्रभुपदाम्भोजैः श्रीमद्भागवतामृतम्।
यद् व्यक्तानि तदेवेदं संक्षेपेण निषेव्यते॥२॥ लघुभागवतामृत १।१।२

६ लघुभाग० १।१।१०

गुणावतार और लीलावतार कहे गये हैं । इनका क्रमशः विस्तृत विवचन है । पुरुषावतारों में भागवतोक्त प्रथम द्वितीय और तृतीय, गुणावतारों में ब्रह्मा रुद्र विष्णु अवतार और लीलावतारों में चतुःसन, नारद वराह मत्स्य यज्ञ नर-नारायण कपिल, दत्तात्रेय हयशीर्ष हंस ध्रुवप्रिय ऋषभ पृथु, नृसिंह कूर्म धन्वन्तरि मोहिनी वामन परशुराम, राम, [illegible] बलराम और श्रीकृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि अवतारों का निरूपण किया गया है।[1]

[illegible] के आधार पर विष्णु का सत्त्वतनुत्व और निर्गुणत्व यहाँ भी प्रतिपादित किया गया है।[2] जैसाकि श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ।
स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत् ॥

श्रीमद्भागवत (१०।८८।५)

[illegible] भजन करने से निर्गुणता प्राप्त होती है । सत्त्वतनु से सब प्रकार का मंगल [illegible] होता है, यह भागवत में कहा भी गया है । अतः विष्णु भक्ति की नित्यता है ।[3] [illegible] में विष्णु के भजन का आग्रह किया गया है । (श्रीमद्भाग० १।२।२६)

[illegible] में भी भागवत के आधार पर विष्णु से ब्रह्मा रुद्रादि की न्यूनता प्रतिपादित की गई है ।[4]

[illegible] विरुद्ध अचिन्त्य-शक्ति के आश्रय हैं, किन्तु अचिन्त्यत्वादि दोषों के [illegible] नहीं हैं । यह भी इस ग्रन्थ में श्रीमद्भागवत के षष्ठ स्कन्धीय गद्य के आधार पर [illegible] किया गया है ।[5]

[illegible] भागवतोक्त वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चारों व्यूहों का प्रतिपादन तथा चतुर्व्यूह के सम्बन्ध में मतभेदों का उल्लेख करते हुए उसकी वैज्ञानिक [illegible] की गई है ।[6]

१ [illegible]
२ [illegible] प्राप्तेनित्यं तनुः स्मृतः ।
× × ×
[illegible] प्रतिष्ठिताः । [illegible] ॥ लघुभागवतामृत ॥२६॥ पृ० ३८
३ [illegible] स्फुरितीरितम् ॥३०॥
[illegible] नित्यता ॥ ,, पृ० ३६
४ [illegible] सुपर्वणाम् ।
[illegible] न्यूनतातिप्रकाशिता ॥ लघुभागवतामृत ॥३३॥ पृ० ४१
५ [illegible] विरुद्धाचिन्त्यशक्तित्वं तथैव । (भाग० ६।६।३४-३७)
लघुभागवतामृत पृ० १२६
६ [illegible] पृ० [illegible]-१२१

और गौण कारण श्रीकृष्ण नामा की नित्यता आदि विषय निरूपित किए गये हैं।

श्रीकृष्ण की माधुरी सबसे अधिक गोकुल में प्रकट हुई है।[1] यह माधुरी चतुर्विधा है

१—ऐश्वर्य माधुरी

२—क्रीडा माधुरी

३—वेणु माधुरी

४—श्रीविग्रह माधुरी[2]

लघुभागवतामृत के उत्तरखण्ड में भक्त-पूजा की आवश्यकता और भक्त की महत्ता प्रतिपादित की गई है और विष्णु की आराधना से भी वैष्णव की आराधना श्रेष्ठ बताई गई है।[3] श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है—मद्भक्तपूजाभ्यधिका। (११।१९.२१) जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में प्रह्लाद, पाण्डव, यादवगण, उद्धव और व्रज गोपिकाओं को परम भक्तों के रूप में महत्त्व प्रदान किया गया है, उसी प्रकार लघुभागवतामृत में भी इनका महत्त्व प्रतिपादन किया गया है। गोपियों को तो भगवान् ने लक्ष्मी और अपनी आत्मा से भी अधिक प्रिय बताया है।[4] श्रीमद्भागवत में उद्धव के द्वारा गोपियों का महत्त्व निरूपण कराया गया है। (श्रीमद्भाग० १०. ४७. ६१) गोपियों में भी राधा सर्वश्रेष्ठ है।[5] पद्मपुराण में आया है —

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।
सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा॥

लघुभाग० में उद्धृत, पृ० २७१

आदिपुराण में—

त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या यत्र वृन्दावनं पुरी।
तत्रापि गोपिकाः पार्थ तत्र राधाभिधा मम॥

लघुभाग० में उद्धृत, पृ० २७२

---

१ तत्रापि गोकुले तस्य माधुरी सर्वतोऽधिका ॥२८२॥ — लघुभाग० पृ० २५४

२ चतुर्धा माधुरी तस्य व्रज एव विराजते।
ऐश्वर्यक्रीडयोर्वेणोस्तथा श्रीविग्रहस्य च ॥२८३॥ — लघुभाग० पृ० २५५

३ आराधनं मुकुन्दस्य भवेदावश्यकं यथा।
तथा तदीयभक्तानां नो चेद्दोषोऽस्ति दुस्तरः॥ — लघुभाग० उत्तरखण्ड १ पृ० २६१

४ न तथा मे प्रियतमो ब्रह्मा रुद्रश्च पार्थिव।
न च लक्ष्मीर्न चात्मा च यथा गोपीजनो मम— — लघुभाग० में उद्धृत, पृ० २७०

५ तत्रापि सर्वगोपीनां राधिकातिवरीयसी।
सर्वाधिक्येन कथिता पद्मपुराणमादिषु॥ — लघुभाग० पृ० २७१

इस प्रकार पूर्व विवेचित 'बृहद्भागवतामृत' (रचयिता श्री सनातनगोस्वामी) और 'लघुभागवतामृत' (रचयिता श्रीरूपगोस्वामी) श्रीमद्भागवत के अभिप्राय को विपुलीकृत करने वाले दो श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। श्रीमद्भागवत के रसात्मक भक्तितत्व की जितनी मार्मिक [illegible] वैष्णव सम्प्रदायों के भक्ति साहित्य में दुर्लभ है।

[illegible] गोस्वामी का दूसरा प्रसिद्ध ग्रंथ हरिभक्ति- [illegible] का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। भक्ति की एक [illegible] उसका जो अत्यन्त विशद, सूक्ष्म और वैज्ञानिक [illegible] इतिहास में एक नवीन वस्तु है। यह भक्ति का [illegible] श्रीमद्भागवत कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ पर [illegible] टीका में इस बात की पुष्टि की है। उन्होंने [illegible] भागवत के रस के आधार पर ही भक्तिरसामृतसिन्धु [illegible] थ के अवलोकन से यह बात प्रति पद अनुभव की [illegible] वैधीभक्ति के समस्त प्रकारों का सांगोपांग [illegible] क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर चार [illegible] प्रथम पूर्व भाग में उत्तमा भक्ति के लक्षण, भक्ति [illegible] विवेचन, रागानुगा (भावभक्ति) का विस्तृत [illegible] है। श्री जीवगोस्वामी ने भक्ति के साधन रूप में [illegible] है।[2] द्वितीय दक्षिण भाग में साहित्य शास्त्र [illegible] रस का निरूपण किया गया है। विभावानुभाव [illegible] भागवत से लिए गये हैं।[3] तृतीय पश्चिम भाग में [illegible] मुख्य भक्ति रस का सांगोपांग मनोहारी वर्णन है। [illegible] रस, अद्भुत भक्ति रस, वीरभक्ति रस, करुण [illegible] रस और बीभत्स भक्तिरस का विस्तृत विवेचन है। [illegible] का वर्णन है।

[illegible] श्रीकृष्णविरहिणाम् [illegible] प्रकाशितैः स्वहृदयविद्य [illegible] भक्तिरसामृतसिन्धुनामानं ग्रन्थपूर्वैस्त्वमारभितवा [illegible] विश्व यथाति।

भक्तिरसामृतसिन्धु, पूर्वभाग, लहरी १, पृ० १

[illegible]

[illegible] मद्भुतम्।

[illegible] भावुकाः॥

श्रीमद्० १. १. ३, भक्तिरसामृतसिन्धु पृ० ५४

[illegible] में—

[illegible] मनं जिताहः।

[illegible] प्रविश्वमन्वत।

श्रीमद्भागवत० १. २. १३, भक्तिरसामृतसिन्धु पृ० १३२

उज्ज्वलनीलमणि—इस ग्रंथ के रचयिता भी श्री रूपगोस्वामी हैं। अपने ग्रंथ भक्तिरसामृतसिन्धु में श्री रूप गोस्वामी ने शृङ्गार भक्ति रस के अतिरिक्त अन्य सभी भक्ति रसों का सविस्तर निरूपण कर दिया था किन्तु चैतन्य सम्प्रदाय में शृङ्गार-भक्ति का जो उज्ज्वल रूप गृहीत हुआ है उसका साङ्गोपाङ्ग, सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचन करने के लिए उन्होंने शृङ्गार भक्ति रस पर यह स्वतन्त्र ग्रंथ लिखा। चैतन्य सम्प्रदाय की भक्ति में शृङ्गार रस को 'उज्ज्वल रस' अथवा 'मधुर रस' कहा जाता है। यह सबसे मुख्य रस है, भक्तिरसराट् है और अत्यन्त गोपनीय माना गया है।[1] श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कहा कि भागवत प्रसंगों में अविरत संलग्न श्री रूप ने भक्तिरसामृतसिन्धु में भी अप्रकाशित नीलमणि के समान समुज्ज्वल परम रहस्यमय 'उज्ज्वल रस' का उद्घाटन अपने अत्यन्त अन्तरंग सुहृदजनों के लिए किया है।[2]

भक्तिरत्नावली—इस भक्ति प्रतिपादक ग्रंथ के रचयिता स्वामी श्री विष्णुपुरी थे। ये श्री चैतन्य के समकालीन थे। विष्णुपुरी ने श्री चैतन्य की प्रेरणा से श्रीमद्भागवत के अनन्य भक्ति प्रतिपादक सारभूत अंशों को लेकर 'भक्तिरत्नावली' का संग्रह किया। उस पर अपनी मौलिक संस्कृत टीका लिखी। वस्तुतः श्री विष्णुपुरी जी चैतन्य सम्प्रदाय से सम्बद्ध नहीं थे। वे विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। अतः भक्तिरत्नावली चैतन्य सम्प्रदाय का ग्रन्थ नहीं है। किन्तु इसके रचयिता के चैतन्य से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण ही यहाँ इसका उल्लेख कर दिया गया है। इस ग्रन्थ में श्रीमद्भागवतोक्त भक्ति की महिमा, नवधाभक्ति और भगवच्छरणागति का विशद विवेचन है। श्री विष्णुपुरी ने कहा है कि जो लोग किसी कारण से समस्त श्रीमद्भागवत का श्रवण मननादि नहीं कर सकते उनके लिए मैंने 'भक्तिरत्नावली' का ग्रथन किया है।[3]

ऊपर हमने भारतवर्ष के मुख्य-मुख्य वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीमद्भागवत की महती मान्यता का दिग्दर्शन कराते हुए तत्तत् आचार्यों एवं सम्प्रदायानुयायी विद्वानों द्वारा प्रणीत भागवत-साहित्य का संक्षिप्त आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। परवर्ती और समकालीन हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-साहित्य के स्रष्टा विभिन्न कवि उपर्युक्त जिन-जिन सम्प्रदायों के अनुयायी रहे हैं, उन पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव इन्हीं सम्प्रदायाचार्यों द्वारा स्थापित हुआ है।

श्रीमद्भागवत की भक्ति पद्धति से चैतन्य सम्प्रदाय, वल्लभ सम्प्रदाय तथा हितहरिवंश का राधावल्लभ सम्प्रदाय विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं।[4] किन्तु तथ्य यह है कि

---

१ मुख्यरसेषु पुरा यः संक्षेपेणोदितो रहस्यत्वात् ।
पृथगेव भक्तिरसराट् स विस्तरेणोच्यते मधुरः ॥ उज्ज्वलनीलमणि, पृ० ४

२ उज्ज्वलनीलमणि श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीकृत आनन्दचन्द्रिका व्याख्या, पृ० २

३ निखिलभागवतश्रवणालसा
बहु कथाभिरथानवकाशिनः
श्रममवं ननु तानु मार्थको-
भवतु विष्णुपुरी प्रथनग्रहः ॥ भक्तिरत्नावली पृ० ७

४ राधावल्लभ सम्प्रदाय: सिद्धान्त और साहित्य (डॉ० विजयेन्द्र स्नातक) पृ० १५

और अन्य कवियों के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं। अ
का वैज्ञानिक विवेचन [illegible] [illegible] हिन्दी [illegible]
रूप में प्रकाशित किया है :

चतुर्थ अध्याय

मध्ययुगीन कृष्णभक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले श्रीमद्भागवत के सामान्य तत्त्व

दूसरे अध्याय में हम कह चुके हैं कि श्रीमद्भागवत महापुराण का व्यावहारिक दर्शन भक्ति दर्शन है। किन्तु यह भक्ति तत्त्व इतना व्यापक और विशाल है कि उसके एकदेश का भी सम्यक् निरूपण करना दुष्कर कार्य है। इसी प्रकार इस पुराण का ज्ञानपक्ष भी इतना दुरूह, गम्भीर, विशाल और समन्वयी है कि 'मुह्यन्ति यत्सूरयः' की उक्ति उस पर सर्वथा चरितार्थ होती है। मूल रूप से, श्रीमद्भागवत का आचार-पक्ष और विचार-पक्ष दोनों ही अतिशय शक्तिशाली है और इन दोनों ही पक्षों का गहरा प्रभाव समस्त मध्ययुगीन भारतीय भक्ति-साहित्य पर पड़ा है। प्रस्तुत पंक्तियों में विशेषकर मध्ययुगीन हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य के सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत के उन तत्त्वों के निरूपण की चेष्टा की गई है, जिनका स्पष्ट प्रभाव हम भक्ति-साहित्य पर प्रथम स्थूल दृष्टिपात में ही अनुभव कर सकते हैं। इन भागवतीय तत्त्वों को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—(१) सामान्य और (२) विशिष्ट। सामान्य तत्त्व न केवल हिन्दी के ही सगुण कृष्णभक्ति और रामभक्ति साहित्य को प्रभावित करते हैं, अपितु अन्य भारतीय भाषाओं के सगुण भक्ति-साहित्य के अतिरिक्त उनके निर्गुण भक्ति-साहित्य पर भी उनका गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ नाम महिमा को लीजिए। भगवन्नाम की अमोघ शक्ति के सम्बन्ध में निर्गुण भक्त कबीर[1], सगुण कृष्णभक्त सूर[2] और सगुण रामभक्त तुलसी[3] तीनों ही एकमत हैं। इस प्रकार 'नाम माहात्म्य' वह सामान्य भक्ति-तत्त्व सिद्ध होता है, जो समस्त मध्ययुगीन भारतीय भक्ति-साहित्य का एक प्रमुख वर्ण्य विषय है। इसी प्रकार

१ कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल
आदि अन्त सब सोधिया, दूजा देखौं काल ॥
—कबीर ग्रंथावली पृ० ५ (सं० श्याम सुन्दर दास, ना० प्र० सभा १९४७)

२ को को न तर्यौ हरिनाम लिएँ।
सुवा पढ़ावत गनिका तारी, व्याध तर्यौ सरघात किएँ।
अन्तर दाह जु मिट्यौ व्यास कौ इक चित ह्वै भागवत किएँ॥
—सूरसागर (ना० प्र० सभा काशी) पद ८८

३ ब्रह्म राम ते नामु बड़, बरदायक बरदानि।
रामचरित सतकोटि महँ, लिय महेस जियँ जानि॥
—रामचरितमानस, बालकाण्ड, (अंग्रेजपद्य)

ने ही [illegible] है हमारी यह स्थापना नहीं है। श्रीमद्भागवत से पूर्व भारतीय साहित्य में उनका अस्तित्व न हो यह बात भी नहीं है। भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता का स्थापन गीता में अत्यन्त ओजस्वी शब्दों में हो चुका था किन्तु फिर भी भक्ति के पक्ष का जो प्रबल समर्थन श्रीमद्भागवत के द्वारा हुआ उसके कारण भागवत को मध्यकाल में सबसे प्रभावशाली [illegible] [illegible] हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में— 'इस काल की समाप्ति के [illegible] भागवत पुराण का अभ्युदय होता है। उत्तरकालीन [illegible] और [illegible] इस पुराण ने अधिक प्रभावित किया है।'[1] वास्तव में बात यह है कि श्रीमद्भागवत पुराण में [illegible] पुरातन आध्यात्मिक भारतीय वाङ्मय का अद्भुत [illegible] है। यह पुराण समस्त पूर्वालोचित सिद्धान्तों एवं तत्त्व-चिन्तन का [illegible] प्रस्तुत करता है। अतः यह स्वीकार करना अनुचित नहीं है कि भक्ति-[illegible] श्रीमद्भागवत ही है।

[illegible] प्रमुख रूप से कृष्ण-भक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले [illegible] करेंगे। इनको विशिष्ट कृष्णभक्ति-सम्प्रदायों में [illegible] ने [illegible] और स्वतन्त्र कृष्णभक्त कवियों ने सामान्य रूप से ग्रहण किया है। [illegible] लीजिए। यद्यपि हरिवंशपुराण और विष्णुपुराण में [illegible] और कैशोर लीलाओं का वर्णन है तथापि कृष्ण की बाल, [illegible] और प्रौढ़ लीलाओं का जो सांगोपांग, क्रमिक, विस्तृत और मनोरम वर्णन श्रीमद्भागवत [illegible] साहित्य में अद्वितीय है और इसीलिए श्रीमद्भागवत को [illegible] समझना उचित समझते हैं। यद्यपि मध्यकालीन कृष्णभक्त कवियों ने [illegible] लीलाओं के अतिरिक्त अन्य पुराणों एवं अन्य ग्रंथों में [illegible] किया है किन्तु वह अत्यल्प है। 'प्राधान्येन व्यपदेशा [illegible] बात करने वाले भक्त कवियों का प्रधान उपजीव्य श्रीमद्भागवत ही [illegible] है। [illegible] लीला के अतिरिक्त गोपी-प्रेम, कृष्ण का अलौकिक [illegible] आदि ये [illegible] तत्त्व हैं जिनके एकमात्र निधान श्रीकृष्ण हैं। श्रीमद्भागवत में [illegible] अद्भुत चित्रण है, वैसा अन्यत्र अप्राप्य है। अतः श्रीमद्भागवत [illegible] मार्गाधार के रूप में स्वीकार करना भी न्याय्य [illegible] आरम्भ में कहा गया है, निम्न पंक्तियों में केवल [illegible] होगा। अतः उनका क्रमशः संक्षिप्त विवेचन किया [illegible]

[illegible] —भक्ति की अपरिसीम महत्ता की स्वीकृति श्रीमद्भाग[illegible] है वैसी अन्यत्र अप्राप्य है। विस्तार में न जाकर हम [illegible] हैं—

1 [illegible] द्विवेदी) पृ० ६८

यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ।
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चिद् यदि वाञ्छति ॥
न किञ्चित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम ।
वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥[1]

अर्थात्—स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान-धर्म तथा अन्यान्य श्रेय साधनों से जो कुछ स्वर्ग, अपवर्ग अथवा मेरा परमधाम आदि प्राप्त होते हैं, वह सब यदि इच्छा करे तो मेरा भक्त मेरी भक्ति द्वारा ही सुगमता से प्राप्त कर सकता है। मेरे अनन्य भक्त मेरे देने पर भी भक्ति के अतिरिक्त कैवल्य की भी कामना नहीं करते।" हिन्दी-भक्ति-साहित्य में सर्वत्र इस विचारधारा का समर्थन प्राप्त होता है, यह स्पष्ट ही है।

२—स्तुति—भगवत्-स्तवन भक्ति का ही एक प्रमुख अंग है। आर्त होकर भगवान् की असीम शक्ति, अपनी अत्यन्त शक्तिहीनता, भगवान् की भक्तवत्सलता और अपनी कल्मषपरता का ऋजुभाव से कथन करने से जीव को परमशान्ति का अनुभव होता है। भगवान् भी परितुष्ट होते हैं—'स्तोत्रं कस्य न तुष्टये।' वैदिक ऋचाएँ स्तुति के अतिरिक्त और क्या हैं? आदि मानव ने सबसे पहले स्तुति को ही अपनी वाञ्छा सिद्धि का साधन बनाया। संस्कृत का स्तोत्र साहित्य कितना समृद्ध एवं मनोरम है, सुधीजनों को यह बताने की आवश्यकता नहीं है। स्तोत्र साहित्य में कितने ही ऐसे अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं जो भक्तों को महाकाव्यों के रसास्वादन से भी अधिक अपने भक्तिरस के आस्वादन की ओर आकर्षित करते हैं। स्तुति की महती शक्ति का उल्लेख करते हुए उपमन्यु ने अपनी शिव स्तुति में कहा है कि 'हे प्रभो! तुम्हारी तो स्मृति ही पतितपावनी है। यदि कहीं उसमें स्तुति का योग और हो जाय तो कहना ही क्या है। दूध तो स्वभाव से ही मधुर होता है, यदि कहीं उसमें सफ़ेद शक्कर और मिल जाय तो उसका स्वाद कितना मधुर और हृद्य हो जाय।[2]

श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है कि बिना स्तुति-युक्त वैधी भक्ति के भगवान् की प्रेमलक्षणाभक्ति प्राप्त होना सम्भव नहीं है।[3] भक्ति के साधनों में स्तुतिगान एक प्रमुख और अनिवार्य साधन बताया गया है।[4] श्रीमद्भागवत में भगवान् की जितनी अधिक संख्या में और जितनी सुन्दर स्तुतियाँ हैं वैसी अन्य पुराणों में दुर्लभ हैं सम्भवतः अलभ्य हैं। ऐसा लगता है मानो यह पुराण भगवत्स्तुति के उद्देश्य से ही रचा गया है।

१ श्रीमद्भागवत ११।२०।३२-३४।

२ त्वदनुस्मृतिरेव पावनी स्तुतियुक्ता नहि वक्तुमीश सा।
मधुरं हि पयः स्वभावतो ननु कीदृक् सितशर्करान्वितम् ॥ —उपमन्युकृत शिवस्तवन श्लोक २।

३ श्रीमद्भागवत ७।९।५०।

४ परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिविधिः स्तवनं मम। —श्रीमद्भागवत ११।१९।२०।

भगवद्गुणानुवाद के लिए प्रणीत मानो यह पुराण एक विशाल स्तोत्र ही है। समस्त [illegible] स्तुतिपरक ही है। नारद मुनि के प्रस्ताव और व्यासदेव की [illegible] जान पड़ता है। ग्रंथकार का मत है कि बुद्धिशाली महापुरुषों ने [illegible], यज्ञानुष्ठान, सत्कथन, ज्ञान और दान आदि समस्त सत्कर्मों का [illegible] गान का गुणगान करना ही बतलाया है।[1] भागवतकार को जहाँ [illegible] किसी-न-किसी पात्र के लिए में, किसी भी रूप में स्थित भगवान् [illegible] है। स्तुति का फल शुद्ध बुद्धि की प्राप्ति है।[2] श्रीमद्भागवत की [illegible] है पर छोटी-बड़ी समस्त स्तुतियों की संख्या लगभग एकसौ पचीस [illegible] अनेक बहुत बड़ी और अनेक केवल एक-एक श्लोक आकार वाली [illegible] अनेक स्तुतियाँ गद्यात्मक भी हैं।[3] इन स्तुतियों में सगुण एवं निर्गुण [illegible] स्पष्ट है। नीचे भागवत की समस्त स्तुतियों का उल्लेख किया [illegible] है -

प्रथम स्कन्ध –

[illegible] भगवत्स्तुति	अध्याय ८
[illegible] कृष्णस्तुति	,, ९

[illegible] स्कन्ध

[illegible] भगवत्स्तुति	अध्याय ४
[illegible] भगवत्स्तुति	,, ९

[illegible] स्कन्ध

[illegible] भगवत्स्तुति	अध्याय ९
[illegible] ऋषिगणकृत वराह स्तुति	,, १३
[illegible] कृत भगवत्स्तुति	,, १६
[illegible] वराह स्तुति	,, १९

[1] [illegible] का विवक्षित सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः
[illegible] उत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्। श्रीमद्भागवत १।५।२२

[illegible] भगवान्हरिः। श्रीमद्भागवत १२।५।१

[illegible] वदम्।
[illegible] भगवाननुवर्ण्यते। श्रीमद्भागवत १२।६।४

[illegible] तम तुमम्।
[illegible] अनिदानस्तुतम्॥ श्रीमद्भागवत १२।१२।१९

[2] [illegible] निशम्यते।
[illegible] कृतार्थे लिनकों मतिम्। श्रीमद्भागवत ८।४।२५

[3] [illegible] स्कन्ध ५, अध्याय ३, स्कन्ध १२, अध्याय ६ आदि।

४ स्कन्ध —

पंचम स्कन्ध—

राजा रहूगणकृत भगवत्स्तुति
शिवकृत भगवत्स्तुति
भद्रश्रवाग्णकृत हयग्रीव स्तुति
प्रह्लादकृत नृसिंह स्तुति
लक्ष्मीकृत भगवत्स्तुति
मनुकृत मत्स्यावतार स्तुति
अर्यमाकृत कूर्मावतार स्तुति
पृथ्वीकृत वराहावतार स्तुति
हनुमत्कृत राम स्तुति
नारदकृत नरनारायण स्तुति
हंसादि चतुर्वर्णकृत सूर्य स्तुति
श्रुतधरादि चतुर्वर्णकृत चन्द्र स्तुति
कुशलादि चतुर्वर्णकृत अग्नि स्तुति
पुरुषादिचतुर्वर्णकृत जलदेवता स्तुति
ऋतव्रतादि चतुर्वर्णकृत वायुदेवता स्तुति
पुष्करद्वीपवासिकृत ब्रह्म स्तुति
नारदकृत संकर्षण स्तुति

षष्ठ स्कन्ध

प्रजापतिदक्षकृत भगवत्स्तुति (हंसगुह्यस्तोत्र
सवसाध्वादिकृत भगवत्स्तुति
विश्वरूपोपदिष्ट भगवत्स्तुति (नारायण कव
देवगणकृत भगवत्स्तुति
वृत्रासुरकृत भगवत्स्तुति
नारदकृत संकर्षण स्तुति
चित्रकेतुकृत संकर्षण स्तुति
शुकदेवोपदिष्ट विष्णु स्तुति
शुकदेवोपदिष्ट लक्ष्मीनारायण स्तुति

सप्तम स्कन्ध—

ब्रह्माकृत नृसिंह स्तुति
रुद्रकृत नृसिंह स्तुति
इन्द्रकृत नृसिंह स्तुति
ऋषिगणकृत नृसिंह स्तुति

नागपत्नीगणकृत कृष्ण स्तुति
इन्द्रकृत कृष्ण स्तुति
सुरभिकृत कृष्ण स्तुति
वरुणकृत कृष्ण स्तुति
गोपीगणकृत कृष्ण स्तुति
गोपीगणकृत कृष्ण स्तुति (गोपीगीत)
नारदकृत कृष्ण स्तुति
अक्रूरकृत कृष्ण स्तुति
सुदामामालीकृत कृष्ण स्तुति
अक्रूरकृत कृष्ण स्तुति

दशम स्कन्ध उत्तरार्ध—

मुचुकुन्दकृत कृष्ण स्तुति
जाम्बवान्कृत कृष्ण स्तुति
पृथ्वीकृत कृष्ण स्तुति
माहेश्वरज्वरकृत कृष्ण स्तुति
श्री रुद्रकृत कृष्ण स्तुति
राजानृगकृत कृष्ण स्तुति
यमुनाकृत बलराम स्तुति
कौरवगणकृत बलराम स्तुति
नारदकृत कृष्ण स्तुति
राजागणकृत कृष्ण स्तुति
नारदकृत कृष्ण स्तुति
राजागणकृत कृष्ण स्तुति
पाण्डवगणकृत कृष्ण स्तुति
मुनिगणकृत कृष्ण स्तुति
वसुदेवकृत कृष्ण स्तुति
बलिकृत कृष्ण स्तुति
राजा बहुलाश्वकृत कृष्ण स्तुति
श्रुतदेवकृत कृष्ण स्तुति
वेदकृत कृष्ण स्तुति

एकादश स्कन्ध—

देवगणकृत नरनारायण स्तुति
करभाजनोपदिष्ट भगवत्स्तुति
देवगणकृत कृष्ण स्तुति
उद्धवकृत कृष्ण स्तुति

द्वादश स्कन्ध—

श्रीमद्भागवतोक्त स्तुतियों का सारांश

परब्रह्म परमेश्वर समस्त भूतप्राणियों के बाहर-भीतर अलक्षित भाव से स्थित है। वह अनादि, अनन्त, अखण्ड और अविनाशी है।[1] वह महामहिम अलक्ष्यगति परमपुरुष जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय रूप लीला के लिए सत्त्व, रज और तम रूप तीन शक्तियों का आश्रय लेकर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीन रूप धारण करता है।[2] ब्रह्म का साकार नारायण रूप समस्त अवतारों का मूल उद्भव स्थान है, जिसे उसने लोकानुग्रहार्थ धारण किया है। ब्रह्म का जो आनन्दमात्र निर्विकल्प और अखण्ड तेजोमय निर्गुण स्वरूप है वह साकार सगुण रूप से किंचित् भी भिन्न नहीं है। वह वस्तुतः अजन्मा होकर भी स्वनिर्मित देव, तिर्यङ्, मनुष्य आदि योनियों में स्वेच्छा से शरीर धारण कर धर्म मर्यादा की रक्षा के लिए अनासक्त भाव से विविध क्रीड़ाएँ करता है।[3] समस्त लोक उसकी माया से बराबर जन्म लेकर संसार चक्र में भ्रमण कर रहे हैं। किन्तु बुद्धिमान् लोग भवरोग-निवृत्ति के लिए उस भगवान् की अनन्य भक्ति का आश्रय लेकर अकुतोभय हो जाते हैं।[4] भगवान् की महिमा अनन्त है। उसकी माया के प्रभाव और गुणों का अन्त ब्रह्मा, सनकादि नारद और स्वयं दस-सहस्र फणावली नागेन्द्र शेष भी नहीं जानते।[5] पृथ्वी के रज-कणों को गिनना सम्भव है किन्तु भगवान् के गुणों और पराक्रमों की गणना असम्भव है।[6] आदिपुरुष नारायण क्रीड़ार्थ मत्स्य, कूर्म, वराह, हयग्रीव, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि आदि रूप धारण करते हैं। उनके प्रभाव से समस्त लोक निःशोक होकर उनकी लीलाओं का गान करता हुआ आनन्द प्राप्त करता है।[7]

---

१. श्रीमद्भागवत १।८।१८।

२. नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने॥ श्रीमद्भागवत २।४।१२।

३. श्रीमद्भागवत ३।९।

४. श्रीमद्भागवत १०।८७।३२।

५. नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये।
गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनाऽपि समवस्यति नास्य पारम्॥
श्रीमद्भागवत २।७।४१।

न अन्तस्त्वद्विभूतीनां सोऽनन्त इति गीयते॥ श्रीमद्भाग० ११।१६।३९।

६. श्रीमद्भागवत २।७।३९, ४० तथा ११।४।२।

७. श्रीमद्भागवत १०।४०।

की अनुक्रमता उपर्युक्त विचारों का ही समावेश पाया जाता है, यह स्पष्ट है।

३—नाम महिमा—समस्त भक्ति-साहित्य में भगवन्नाम की अनन्त महिमा की [illegible] के [illegible] में थोड़ी चर्चा पहले की जा चुकी है। यद्यपि निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप [illegible] है [illegible] नाम रूप की अपेक्षा रखता है, तथापि मध्य युग के सभी निर्गुण साधकों ने [illegible] उस परम तत्त्व का नाम द्वारा संकेत किया है। सगुण भक्त तो [illegible] ब्रह्म के उपासक होने के कारण उनके नाम का माहात्म्य स्वीकार करते [illegible] हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—× × ×"मध्ययुग के भक्तों में भगवान् [illegible] माहात्म्य बहुत अधिक है। मध्ययुग की समस्त धर्म-साधना को नाम की [illegible] सकता है। चाहे सगुण मार्ग के भक्त हों चाहे निर्गुण मार्ग के, नाम जप [illegible] की कोई सन्देह नहीं। इस अपार भवसागर में एकमात्र नाम ही नौका [illegible] गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में 'राम न सकहिं नाम गुन गाई' [illegible] अनन्त माहात्म्य स्वीकार किया है। महाप्रभु चैतन्य के सम्प्रदाय में नाम [illegible] सर्वाधिक बल दिया गया है। सभी वैष्णव सम्प्रदायों में नाम जप और [illegible] भक्ति का अमोघ साधन माना गया है। किसी सम्प्रदाय में पंचाक्षर, [illegible], किसी में द्वादशाक्षर और किसी में द्वात्रिंशाक्षर मन्त्र के जप का विधान है। [illegible] भगवन्नाम की महिमा का सविस्तर वर्णन है, जिनमें श्रीमद्भागवत और [illegible] उल्लेखनीय हैं।[2]

[illegible] में भगवन्नाम की अपार दुरितक्षयकारिणी अमोघ शक्ति का कुछ आभास [illegible] अजामिल के उपाख्यान का वर्णन है।[3] अजामिल का नाम मानो महा पातकी के [illegible] है। किन्तु अज्ञानवश ही (भगवद् बुद्धि से नहीं) अपने पुत्र 'नारायण' का [illegible] यमदूतों के पाश से मुक्त और पवित्र हो गया। विवश होकर भी भगवान् का [illegible] करोड़ों जन्म के पापों का नाश कर देता है। चोर, मद्यप, मित्र-द्रोही, [illegible], गुरु-स्त्रीगामी जैसे पापी भी पाप मुक्त हो जाते हैं। स्त्री, राजा, माता-पिता तथा [illegible] जैसे महान् पापों का प्रायश्चित्त भगवन्नाम ग्रहण मात्र से हो जाता है। [illegible] व्रतों से भी मनुष्य उतना शुद्ध नहीं होता जितना भगवन्नामोच्चारण से। [illegible] हँसी से आव के आलाप को पूर्ण करने के लिए अथवा अवहेलना से भी लिया

1 [illegible] (डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी) पृ० ५।
2 [illegible] सर्वसिद्धिदायक।
[illegible] ॥
—श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धु पृ० ५६ पर पद्मपुराण का वचन।
[illegible] मार्गशीर्ष माहात्म्य, अध्याय ११।
3 श्रीमद्भागवत ६।१, २।

पीड़ितावस्था अथवा दण्ड आदि से आहतावस्था में विवश होकर लिया हुआ भगवन्नाम भी यातना का अन्त कर देता है।[2] पापों की न्यूनाधिकता के अनुसार छोटे-बड़े प्रायश्चितों का विधान है। किन्तु तप दान और जप आदि प्रायश्चितों से केवल वे पाप ही नष्ट हो जाते हैं पापी का पाप-दूषित चित्त शुद्ध नहीं होता किन्तु ज्ञान अथवा अज्ञान किया हुआ भगवन्नाम सर्कीतन चित्त को शुद्ध कर देता है। जिस प्रकार भगवान् और गुणकारी औषधि बिना गुण जाने सेवन किये जाने पर भी लाभ पहुँचाती ही है, उसी प्रकार भगवन्नाम को प्रभाव ज्ञान सहित ग्रहण किया जाय या बिना जाने, अपना फल अवश्य देता ही है।[3]

नाम का उपयोग केवल पातकनाश और चित्त-शुद्धि ही नहीं किन्तु भक्त भगवल्लीलाओं का आनन्द लेने के लिए भी नाम का गायन करते हैं क्योंकि इन नामों के उच्चारण से भगवान् के अनेक दिव्य गुणों का ज्ञान होता है।[4] लौकिक-व्यापार में प्रवृत्त मनुष्य के हृदय में स्थित होते हुए भी भगवान् उससे बहुत दूर रहते हैं किन्तु उनका गुण गान करने वाले भक्त के अत्यन्त निकट रहते हैं।[5] भगवन्महिमा का गान न करने वाले मनुष्य की जिह्वा मेंढक की जिह्वा के समान है।[6] श्रीमद्भागवत में भगवन्नाम की महिमा अनेक प्रसंगों एवं स्थलों पर कही गई है।[7] विस्तारभय से केवल दिङ्मात्र प्रदर्शन किया गया है।

४—गुरु महिमा—समस्त विश्व के और विशेषतया भारतवर्ष के आध्यात्मिक साहित्य में गुरु की बड़ी महिमा है। वैदिक काल से आज तक गुरु का सर्वोच्च स्थान

---

१ अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि।
यद्व्याजहार विवशो नामस्वस्त्ययनं हरेः॥ —श्रीमद्भागवत ६।२।७

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥ —श्रीमद्भागवत ६।२।१४

गोस्वामी तुलसीदास ने इसे यों कहा है—

भाँय कुभाँय अनख आलस हू। नाम जपत मंगल दिसि दस हू॥
—श्री रामचरितमानस बा० १।२८

२ श्रीमद्भागवत ६।२।१४।

३ यथागदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया।
अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः॥ —श्रीमद्भागवत ६।२।१९

४ यथा हरेर्नाम पदैरुदाहृतैस्तद्गुणकर्माभिधानम्। —श्रीमद्भागवत ६।२।११

५ हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम्।
आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यन्त्युपेतगुणात्मनाम्॥ —श्रीमद्भागवत १० पू० ४७।

६ जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः। —श्रीमद्भागवत २।३।२०।

७ श्रीमद्भागवत १।१।१२, १।२४।२०, १०।३४।१७ आदि।

[illegible] गुरु ही [illegible] है। गुरु और गोविन्द में, गोविन्द का ज्ञान कराने वाला गुरु ही अधिक [illegible] है। गुरु ब्रह्मा है विष्णु है महेश्वर है किंबहुना साक्षात् परमब्रह्म है। गुरु के बिना ज्ञान नहीं हो सकता ज्ञान के लिए गुरु की शरण ग्रहण करनी ही पड़ती है। [illegible] हुआ है हो रहा है।

[illegible] है। साधारण मनुष्य [illegible] करनी चाहिये, क्योंकि गुरु [illegible] हुए, सर्वदा अनुगमन [illegible] संलग्न रहना चाहिए।[2] [illegible] शिष्य के लिए गुरुकुल- [illegible] गुरु का निवास होता है। [illegible] जाते हैं यही अपना [illegible] जितना तुष्ट होता है [illegible] से नहीं होता।[4] ज्ञान [illegible] वाले मनुष्य का समस्त [illegible] है।[5] गुरु के चरणों का आश्रय [illegible] प्रकार विपत्तिग्रस्त हो [illegible] पर यात्रा करने वाले वणिग्जन।[6]

२. सत्संग--[illegible] पुरुष को भगवदुन्मुख [illegible] में सत्संग पर असकृत् [illegible] भगवद्भक्तों की एक क्षण की [illegible] मनुष्य जीवन में प्राप्त

---

१ [illegible]
[illegible] --श्रीमद्भागवत ११।१७।२७

२ [illegible]

३ [illegible] --श्रीमद्भागवत ११।१०।५

४ [illegible]
[illegible]
[illegible] --श्रीमद्भागवत १०।८०।३४

५ [illegible]
[illegible] --श्रीमद्भागवत ७।१५।२६

६ [illegible]

७ [illegible] --नारदभक्तिसूत्र ३८

होने वाले भोगों की तो बखाना ही क्या है ! भगवद्भक्त सन्तों के चरणों से तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं। भव-भय से मुक्त होने के लिए सत्संग रामबाण औषधि है।[१] जिसे जन्म-मरण रूप अति दुःसाध्य रोग के सर्वश्रेष्ठ वैद्य (भगवान्) के पास पहुँचना हो उसे सत्संग के मार्ग से जाना चाहिए।[२] यदि बुद्धिमान् साधक भगवान् से कुछ चाहता है तो यही कि यदि भगवन्माया से प्रेरित होकर स्वकर्मानुसार भव प्रवाह में भटकना पड़े तब भी जन्मजन्मान्तर तक उसे सत्संग प्राप्त हो।[३] क्योंकि साधुओं का समागम श्रोता और वक्ता दोनों ही को अभिमत होता है, उनके सम्भाषण सभी प्राणियों का कल्याण करते हैं।[४] विशुद्ध सच्चिदानन्दघन वासुदेवात्मक ब्रह्म का ज्ञान महापुरुषों की चरण रज को शिरोधार्य किए बिना यज्ञ, तप, वेदाध्ययनादि अनेक साधनों से भी प्राप्त करना असम्भव है।[५] वेदोक्त कर्मों में आसक्त-पुरुष जब तक महापुरुषों की चरण धूलि का सेवन नहीं कर लेते तब तक उनको बुद्धि चरम ध्येय (भगवान्) तक पहुँच ही नहीं सकती।[६] इस प्रकार श्रेयोमार्ग के पथिक के लिए श्रीमद्भागवत में सत्संग की अनिवार्यता का उल्लेख किया गया है। सत्संग से जो और भी बड़ी बात होती है, वह है भक्त को भगवान् से भी अधिक प्रिय भगवद्भक्ति की ध्रुव प्राप्ति। भक्ति की प्राप्ति में चाहे अन्य साधन असफल हो जाएँ, किन्तु सत्संग मोघ नहीं हो सकता।[७] सत्संग में सबसे बड़ी विशेषता है उसका सर्वसंगनिवारकत्व। सत्संग हो जाने पर फिर अन्य संग की इच्छा नहीं रहती। सत्संग के द्वारा ही विभिन्न युगों में दैत्य, राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, विद्याधर, स्त्री, वैश्य, शूद्र और अन्त्यजों ने भगवत्प्राप्ति की। सर्वसाधनहीन, निरक्षर गोपियों ने केवल सत्संग जनित भक्तिभाव से ही परमपद प्राप्त कर लिया था।[८]

६—**वैराग्य**—अध्यात्म पथ के पथिक को दृढ़ वैराग्यवान् होना चाहिए। अपनी मनोगत समस्त कामनाओं का प्रामाणिकता से परित्याग करके जब साधक अपने से अपने में ही तुष्ट होकर—आत्माराम होकर—स्थित होता है तब उसको स्थितप्रज्ञ कहते हैं। किन्तु स्थितप्रज्ञ होने के लिए पहले अपनी समस्त इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा लेना अनिवार्य

---

१ तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ —श्रीमद्भागवत ४।३०।३४

तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया ।
भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः ॥ —श्रीमद्भागवत ४।३०।३७

२ श्रीमद्भागवत ४।३०।३८ ।

३ श्रीमद्भागवत ४।३०।३३

४ श्रीमद्भागवत ४।२२।१९ ।

५ न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् । —श्रीमद्भागवत ५।१२।१२

६ श्रीमद्भागवत ७।५।३२ ।

७ महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च । —ना० भ० सूत्र ३९
सत्संगलब्धया भक्त्या मयि मां स उपासिता ॥ —श्रीमद्भागवत ११।११।२५

८ श्रीमद्भागवत ११।१२

है, जिसकी इन्द्रियाँ वश में होती हैं वही वास्तव में स्थितप्रज्ञ कहलाने का अधिकारी है।[१] इन्द्रियदमन ही वैराग्य है। भारतीय अध्यात्म विद्या में वैराग्य के द्वारा मन जैसी महान् चंचल शक्ति का निग्रह भी शक्य बताया गया है।[२] योगदर्शन में भी अभ्यास और वैराग्य की अनिवार्यता स्वीकार की गई है।[३] भक्ति शास्त्रों में तो भक्ति की साधना के लिए विषयों से वैराग्य द्वारा प्रथम सोपान ही बताया गया है।[४]

श्रीमद्भागवत के पद्मपुराणोक्त माहात्म्य में ज्ञान और वैराग्य को भक्ति के दो पुत्रों के रूप में बताया गया है।[५] इससे ज्ञात होता है कि भारतीय अध्यात्म साधना में ज्ञान और वैराग्य को साधन भी माना गया है और साध्य भी।[६] किन्तु श्रीमद्भागवत में ज्ञान और वैराग्य को अधिकतर भक्ति के साधन रूप में ही गृहीत किया गया है। इनके द्वारा साध्य फल प्रेमा भक्ति ही है।

श्रीमद्भागवत में वैराग्योत्पादन के लिए विविध उपाख्यानों का वर्णन एवं विषयों का निरूपण किया गया है। इनमें पुरञ्जनोपाख्यान, भवाटवी वर्णन, ययाति-चरित, प्रकृति-पुरुष-विवेक, संसार का मिथ्यात्व निरूपण, वर्णाश्रम धर्म वर्णन और देह-गेह में आसक्त पुरुषों की अधोगति के वर्णन प्रमुख विषय हैं।[७]

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि यह दुर्मति जीव अपने नाशवान् शरीर से सम्बन्ध रखने वाले गृह धन आदि को मोहवश नित्य मानता है। जिस-जिस योनि में जन्म लेता है, उसी-उसी में आनन्द मानने लगता है और उससे इसे वैराग्य नहीं होता। यह जीव अपने स्त्री पुत्र, गृह, पशु, धन और बन्धु-बान्धवों में अत्यन्त आसक्त होकर अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता है। इनके पालन-पोषण की चिन्ता से अहर्निश इसके प्राण जलते रहते हैं फिर भी दुर्वासनाओं से युक्त होकर यह निरन्तर इन्हीं के लिए नाना दुष्कर्म करता ही रहता है। कुलटा और मायाविनी स्त्रियों की चिकनी-चुपड़ी बातों और छोटे बालकों के कल-भाषणों से आक्षिप्त मन वाला यह प्राणी गृहस्थ के अति दुःखदायी

---

१. वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता। —गीता २।६१

२. असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ —गीता ६।३५

३. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। —पातञ्जलयोगदर्शन समाधिपाद सूत्र १२

४. तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्याः।
तत्तु विषयत्यागात् संगत्यागाच्च॥ —ना० भ० सूत्र ३४, ३५

५. अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ।
ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ॥ —भागवतमाहात्म्य अध्याय २ श्लोक ४५

६. वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यदहैतुकम्॥ —श्रीमद्भागवत १।२।७

७. द्रष्टव्य—श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३, अध्याय २९, ३०। स्कन्ध ४, अध्याय २५, २६। स्कन्ध ५, अध्याय १३, १४। स्कन्ध ९, अध्याय १८, १९। स्कन्ध ११, अध्याय ३, २०, २१–२२

हो जाता है तो कुटुम्ब के भरण-पोषण में असमर्थ यह पुरुष अत्यन्त दीन होकर दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगता है। कुटुम्ब-भरण में असमर्थ इस पुरुष का स्त्री पुत्रादि भी पहले की भाँति आदर नहीं करते जैसे किसान बूढ़े बैल का। वृद्धावस्था के कारण उसका रूप नष्ट हो जाता है। रोग के कारण पुरुषार्थ का क्षय हो जाता है किन्तु फिर भी अपने पुत्रादि द्वारा अपमानपूर्वक दिये गए रोटी के टुकड़ों पर गृह-रक्षक कुत्ते की भाँति पड़ा-पड़ा मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहता है।[1] इस प्रकार श्रीमद्भागवत में देह-गेह में आसक्त मनुष्य की दयनीय दशा का वर्णन कर मुमुक्षु पुरुष के हृदय में वैराग्य का संचार करने का प्रयत्न दृष्टिगत होता है। वैराग्य के अनेक साधनों में श्रीमद्भागवत में प्रमुखतया हम निम्नांकित तीन विषयों का निरूपण पाते हैं—

(क) रमणी के मोहक रूप की निन्दा।

(ख) अर्थ-निन्दा।

(ग) मनुष्य शरीर की दुर्लभता।

(क) नारी—जहाँ भारतीय साहित्य में [illegible] में अभ्यर्चनीय बताया गया है,[2] वहीं इन्द्रिय[illegible] मदिर रूप यौवन को अध्यात्म मार्ग का एक [illegible] भक्ति-साहित्य में नारी के इस मादक रूप को [illegible] निरन्तर सचेत रहने का जो आदेश दिया गया है [illegible] ही है। भक्ति के चरम लक्ष्य को लेकर [illegible] वैराग्य का निरूपण अनेक स्थलों पर है और [illegible] उल्लेख प्रबल शब्दों में किया गया है। नारी [illegible] हिन्दी भक्ति-साहित्य में नारी के प्रति किसी [illegible] करने के लिए एक साधन रूप में गृहीत है। [illegible] सबसे बड़ा बन्धन स्त्री है। विश्व में कोई [illegible]

---

१ आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु।
निरूढमूलहृदय आत्मानं बहु मन्यते॥
सन्दह्यमानसर्वाङ्ग एषामुद्वहनाधिना।
करोत्यविरतं मूढो दुरितानि दुराशयः॥ [illegible]
विशेष द्रष्टव्य—श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३, अध्याय [illegible]

२ देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद, प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य [illegible]

३ (क) किमत्र हेयं कनकं च कान्ता।
(ख) द्वारं किमेकं नरकस्य नारी। — [illegible]

४ दीपशिखा सम जुवति तन, मन जनि होसि पतं[illegible] — [illegible]

[illegible] । अतः योग के परम पद पर आरुरुक्षु पुरुष को स्त्री-संग का सर्वथा त्याग [illegible] । यह स्त्री रूपिणी भगवन्माया अत्यन्त प्रबल है । योगी के लिए तो यह नरक [illegible] में आच्छादित मृत्यु कूप ही है ।[1]

[illegible] अर्थ-निन्दा—'धन दुर्मदान्ध पुरुष कभी भी भगवत्प्राप्ति नहीं कर सकता', इस [illegible] की पुष्टि श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर हुई है । धन नाश से ही [illegible] का संचार होता है और वैराग्य से भगवद्भक्ति प्राप्त होती है, यह क्रम [illegible] में एक भिक्षु ब्राह्मण के उपाख्यान[2] में अर्थ की अनर्थता और अर्थ [illegible] की बात कही गई । वैराग्य के लिए धन नाश प्रथम सोपान है ।[3] [illegible] मनुष्य पन्द्रह अनर्थों का शिकार होता है । अतः कल्याण-कामी पुरुष को [illegible] परित्याग कर देना चाहिए । वे पन्द्रह अनर्थ हैं—चोरी, हिंसा, मिथ्या-[illegible] काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, स्त्री, द्यूत, और [illegible] व्यसन ।[4] धन के कारण ही मनुष्य का अपने प्रियजनों से वैमनस्य होता है । [illegible] कारण ही मनुष्य की सात्त्विकता नष्ट हो जाती है और वह पूर्णतया [illegible] जाता है । अतः साधक को अनर्थों के आश्रय रूप धन में आसक्ति नहीं [illegible]

[illegible] मानवदेह की दुर्लभता—विधाता की इस विशाल सृष्टि में मनुष्य प्राणी को [illegible] कृति होने का सौभाग्य प्राप्त है—न 'मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' ।

---

1 [illegible] बन्धस्त्वान्यप्रसंगतः ।
[illegible] पुंसो यथा मत्संगिसंगतः ॥
[illegible] कोऽन्यस्त्वासिद्धनधीः पुमान् ।
[illegible] योषिन्मय्येह मायया ॥
[illegible] स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम् ।
[illegible] कान्तान्त्र विजृम्भेण केवलम् ॥
[illegible] आतु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ।
[illegible] वदन्ति या निरयद्वारमस्य ॥
[illegible] योषित् [illegible] निर्मिता ।
[illegible] तृणैः कूपमिवावृतम् ॥ —श्रीमद्भागवत ३।३१, ३५, ३७, ३८, ३९, ४०
अन्यत्र भी—६।१८।३९–४२ ।

2 [illegible] ।

3 [illegible] दीर्घं वरत्यस्तपस्विनः ।
[illegible] निर्वेदः सुमहानभूत् ॥ —श्रीमद्भागवत ११।२३।१६

4 [illegible] कामः क्रोधः स्मयो मदः ।
[illegible] संस्पर्धा व्यसनानि च ॥
[illegible] अर्थमूला मता नृणाम् ।
[illegible] श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥ —श्रीमद्भागवत ११।२३।१७-१८-१९ ।

5 [illegible] अन्य लोकमिमं पुमान् ।
[illegible] मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ॥ —श्रीमद्भागवत ११।२३।२२

अन्य प्राणियों को जहाँ केवल इन्द्रिय-प्रेरणा से प्रवृत्त होकर ही कर्म करने पड़ते हैं वहाँ मानव-प्राणी इन्द्रिय-जयी होकर उत्तम ज्ञान और बुद्धिबल से अपने कर्मों को अभीष्ट दिशा की ओर मोड़ सकता है। जहाँ अन्य योनियाँ भोग भूमि हैं, वहाँ मानव योनि कर्मभूमि है। मानव के कर्मों का ही शुभाशुभ फल होता है। मानव का यह विशेषाधिकार ही उसके सर्व-श्रेष्ठत्व का कारण है। धर्माचरण के द्वारा मानव अपने परम पुरुषार्थ मोक्ष को सबसे अधिक सुविधापूर्वक प्राप्त कर सकता है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखते हुए भारत के प्राचीन तत्त्व-चिन्तकों ने मानवदेह को बहुत दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण बताया है। आत्मा में विवेक और वैराग्य का हेतु मानवदेह ही है। किसी अन्य देहधारी में वैराग्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती।[1] अध्यात्म प्रधान संस्कृत साहित्य में अनेक स्थलों पर मानव देह को सुदुर्लभ बताया गया है।[2] सूर, तुलसी आदि के द्वारा विरचित हिन्दी भक्ति-साहित्य में यह विचार पुरातन संस्कृत साहित्य से ही आया है।[3] श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि परमेश्वर ने अपनी अजेय माया शक्ति से विविध स्थावर-जंगम सृष्टि की रचना की, किन्तु उसे सन्तोष न हुआ और जब ब्रह्मदर्शन की योग्यता रखने वाले पुरुष शरीर की रचना की तभी उसे प्रसन्नता हुई। अतः सिद्ध होता है कि परमेश्वर को भी प्रसन्नता प्रदान करने वाला यह मानव देह ही सर्वश्रेष्ठ है। यह देह भी अनित्य है, किन्तु परम पुरुषार्थ का साधन है। अतः अनेक जन्मों के अनन्तर इस दुर्लभ नर देह को पाकर बुद्धिमान् पुरुष पुनः मृत्यु-मुख में जाने से पूर्व निःश्रेयस का प्रयत्न कर ले। विषय सुखों को प्राप्त करने में इस अमूल्य वस्तु (नर देह) का उपयोग न करे। क्योंकि विषय-सुख तो सभी योनियों में प्राप्त हो जाते हैं।[4]

इस प्रकार पूर्वोक्त तीन विषयों के निरूपण में श्रीमद्भागवत में वैराग्य का उपदेश दिया गया है और यहाँ तक कहा गया है कि बिना भगवदनुग्रह के वैराग्य-प्राप्ति नहीं होती। वैराग्य तो संसार से पार जाने के लिए नौका रूप है।[5]

---

१. देहो दुर्लभ विरक्तिविवेकहेतुः। —श्रीमद्भागवत [illegible]

२. नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥ —श्रीमद्भा० ११.२०.१७

३. (क) परम भाग मुक्ति के फल तें सुन्दर देह धरी। —सूरसागर प्र० सं० पद ७१
(ख) बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥ —रामचरितमानस उत्तरकाण्ड

४. सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान्।
तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः॥
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible] —श्रीमद्भागवत [illegible]

५. नूनं मे [illegible]
[illegible] —श्रीमद्भागवत [illegible]

निष्कर्ष

[illegible] विवेचन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते है—

[illegible] [illegible]ाणिक ब्राह्मण धर्म ने भगवत्प्राप्ति के लिए भक्ति को प्राधान्य दिया और [illegible] [illegible]र्वाधिक प्रचार, महत्त्व-ख्यापन एवं परमार्थ-साधन में उसका सर्वश्रेष्ठत्व [illegible] [illegible]मद्भागवत पुराण द्वारा हुआ।

[illegible] [illegible]र्व भाव से एवं सर्वात्मना शरणागत होकर स्तुतिगान करना परमेश्वर की [illegible] [illegible]मोघ साधन है। श्रीमद्भागवत में इन भगवत् स्तुतियों का उत्कृष्टतम [illegible] [illegible] परवर्ती भक्ति-साहित्य ने उससे अक्षय प्रेरणा ग्रहण की है।

[illegible] [illegible]ध्यात्म मार्ग में गुरु के जिस महनीय और अनिवार्य पद की प्रतिष्ठा भारतीय [illegible] में हुई है, श्रीमद्भागवत ने उस परम्परा को और सशक्त बनाया है और [illegible] [illegible]हित्य को प्रेरणा प्रदान की है।

[illegible] [illegible]क्ति के सर्व सामान्य साधनों—यथा भगवन्नाम संकीर्तन, सत्संग, वैराग्य [illegible] [illegible]मद्भागवत में जो वर्णन है, वह परवर्ती हिन्दी भक्ति साहित्य में सादर [illegible] [illegible] है।

[illegible] श्रीमद्भागवत प्रमुखतया कृष्णभक्ति परक ग्रंथ होने के कारण उपर्युक्त सामान्य [illegible] [illegible] लिए भी कृष्णभक्त हिन्दी कवियों का प्रधान उपजीव्य है।

पंचम अध्याय

मध्ययुगीन कृष्णभक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले भागवतोक्त तत्त्व (विशेष)

रसिक शिरोमणि, रसात्मा, रसेश्वर श्रीकृष्ण ही वह विशिष्टतत्त्व है जिसका [illegible] अनुसंधान और समाराधन मध्यकालीन सगुण भक्तों के एक विशाल वर्ग का [illegible] है। 'रसो वै सः', 'रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति' आदि श्रुतियों का [illegible] में श्रीकृष्ण ही हो गया। इस 'अखिलरसामृतमूर्ति',[1] वंशी विभूषित [illegible] कृष्णतत्त्व अथवा शतशत विद्युल्लताओं (गोपीजनों) से आवेष्टित कादम्बिनी [illegible] ध्येय, गेय, श्रेय और प्रेय माना गया। इसके अतिरिक्त किसी अन्य तत्त्व [illegible] की आवश्यकता स्वीकार नहीं की गई।[2] श्रीमद्भागवत ने पहले ही से [illegible] की प्रतिष्ठा कर रखी थी। रास पंचाध्यायी में यही कृष्ण अपनी स्वरूपभूता [illegible] के साथ आत्म-रमण में प्रवृत्त दिखाया गया है।[3] श्रीमद्भागवत में [illegible] का विकास वयःक्रम से दिखाया गया है। प्रारम्भ में जो कृष्ण शैशव की [illegible] लीलाओं के कारण अनन्त वात्सल्य, और सख्य का केन्द्र होता है, कैशोर में वही [illegible] बन जाता है, और तारुण्य एवं प्रौढावस्था में वही प्रेम एवं श्रद्धा के सीमा [illegible] दिखाई देता है। हिन्दी कृष्ण-काव्य में हम श्रीकृष्ण के इन सभी रूपों के [illegible] कर सकते हैं

---

१ अखिलरसामृतमूर्तिः प्रसृमररुचिरुद्धतारकापालिः।
कलितश्यामाललितो राधाप्रेयान् विधुर्जयति॥ श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धु, पृ० १

२ स्मृतापि तरुणातपं करुणया हरन्ती नृणा-
मभंगुरतनुत्विषां वलयिता शतैर्विद्युताम्।
कलिन्दगिरिनन्दिनीतटसुरद्रुमालम्बिनी,
मदीयमतिचुम्बिनी भवतु काऽपि कादम्बिनी॥ पंडितराज जगन्नाथ—रसगंगाधर, [illegible]

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्। पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्। कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

३ बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरु-
नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा-
मुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार। श्रीमद्भागवत १०. २९. ४६

... दशमस्कन्ध में श्रीकृष्ण अपनी समस्त विभूति और शक्ति के विस्तार के ... श्रीकृष्ण के 'लीलावन्तत्व' और पुरुषोत्तमत्व का पूर्णतया स्थापन करते ... ही है जो कृष्णभक्त हिन्दी कवियों का प्रधान उपजीव्य है। दशमस्कन्ध ... कृष्णचरित और कृष्ण-लीला हिन्दी कवियों का प्रियतम वर्ण्य विषय है। ... मध्यकालीन कृष्णभक्त कवियों की कृष्णलीला सम्बन्धी कृतियों का ... पूर्वार्ध ही है तो अनुचित न होगा। अष्टछाप के कवियों के लिए यह ... में कही जा सकती है। साधारणतया दशमस्कन्ध के जिन विशिष्टतत्त्वों ... कवियों ने ग्रहण किया है। उन्हें हम स्थूल रूप में चार शीर्षकों में ... सकते हैं—

१—श्रीकृष्ण की विविध लीलाएँ।

२—श्रीकृष्ण की अलौकिक रूप माधुरी।

३—श्रीकृष्ण का परब्रह्मपरमेश्वरत्व।

४—श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का अलौकिक प्रेम।

... चार प्रमुख तत्त्वों में अनेक अवान्तर तत्त्वों का समावेश है, यथा—श्रीकृष्ण ... विविध लीलाओं के अन्तर्गत श्रीकृष्ण के जातकर्म, नामकरणादि संस्कार ... बालक, गौ, गोकुल, वृन्दावन, यमुना, गोवर्धन आदि विषयों का समावेश है। ... अलौकिक रूप माधुरी में उनका वर्ण, अंग-विन्यास, ललितत्रिभंगीमुद्रा एवं ... वेषभूषादि का विवेचन करना समीचीन है। श्रीकृष्ण के परब्रह्मत्व के ... अद्भुत और अलौकिक कर्म-क्षमता की ओर संकेत पाया जाता है। ... गोपियों के अलौकिक प्रेम में गोपियों की विरहभावना, भ्रमरगीत, रासलीला ... गोपियों की कृष्ण के प्रति माहात्म्य-ज्ञान-पूर्ण प्रेमलक्षणाभक्ति आदि ... विवेचन प्रासंगिक होगा। अतः निम्न पंक्तियों में उपर्युक्त चारों तत्त्वों का ... निरूपण किया जायगा।

१—श्रीकृष्ण की विविध लीलाएँ

(अ) दशमस्कन्ध पूर्वार्ध—(व्रजलीला)

लीला—लीला सगुण ब्रह्म-भगवान् का अचिन्त्य चरित है। निर्गुण और निराकार ... में कोई सरोकार नहीं है, किन्तु भक्तों का भगवान् भक्तों का अनुरंजन करने ... क्रीड़ाएँ करता है। भक्तगण भी उसकी क्रीड़ा में सम्मिलित होते हैं। भक्तों ... में भाग लेना और भगवल्लीलाओं का गान करना अत्यन्त प्रिय कृत्य है। ... की दिव्यलीलाओं का ज्ञान हो जाने पर भक्त का पुनर्भव नहीं होता।[१] ... लीलाओं के ज्ञान द्वारा भक्त जो सबसे बड़ी वस्तु प्राप्त करता है वह है भगवान् का

१ ... दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
... पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥ गीता, ४. ९

प्रेम। श्रीमद्भागवत में एकाधिक स्थलों पर यह बात कही गई है।[1] कृष्णकथायें त्रिभुवन को पवित्र करने वाली हैं।[2] भगवान् के अवतार-हेतु में दिखाया जा चुका है कि दुष्टदलन और साधुरक्षण के अतिरिक्त अपनी लीला के विस्तार से भक्तों को अनुगृहीत करना भगवान् को कहीं अधिक प्रिय है। श्रीमद्भागवत में भक्तलीला का प्रभूत माहात्म्य वर्णित है और दशमस्कन्ध का लक्ष्य है भगवत् [illegible][3]

कृष्णलीला का सूत्रपात—परीक्षित् [illegible] हुआ कि कृष्ण ने अपने पिता वसुदेव का घर [illegible] ज्ञाति भाइयों के साथ कहाँ-कहाँ रहे? उन्होंने [illegible] कीं? अपने मामा कंस का वध क्यों किया [illegible] यादवों के साथ द्वारकापुरी में कितने दिन [illegible] सब प्रश्नों का यथावत् और सविस्तर उत्तर दे[illegible] गोरूप धारिणी पृथ्वी ने ब्रह्मा जी की शरण [illegible] पृथ्वी तथा समस्त देवताओं को आश्वासन [illegible] श्रीकृष्ण का आविर्भाव होगा। जब तक श्रीकृष्ण [illegible] अपने अंशों से मर्त्यलोक में उत्पन्न होकर [illegible] कला रूप शेष-सकर्षण (बलराम) और विष्णु [illegible][4]

उधर पृथ्वी पर राजा शूरसेन मथुरा [illegible] सान्निध्य में वसुदेव ने देवक की पुत्री देवकी [illegible] घर जा रहे थे तो देवकी का भाई कंस उन्हें [illegible] सुनी कि इस देवकी का आठवाँ बालक [illegible] करने उद्यत हुआ। किन्तु वसुदेव ने उसे वचन [illegible] दिये जायेंगे। अनिष्ट की आशंका से कंस ने [illegible] अपनी प्रतिज्ञानुसार क्रमशः उनके छः पुत्रों का [illegible] (बलराम) को वासुदेव की आज्ञा से योगमाया [illegible] वासुदेव की आज्ञा से योगमाया ने कन्या रूप [illegible] वासुदेव ने कृष्ण रूप से देवकी के गर्भ में प्रवेश किया।[5]

---

१. श्रीमद्भागवत ३. २५. २३
सोऽहं परस्य सुहृदः परदेवताया लीलाकथास्तव [illegible]
[illegible]नुगृणन् गुणविप्रयुक्तो दुर्गाणि [illegible]

२. अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाम्बुनाम्
पर्यटामि तवोद्गायल्लीला भुवनपावनीः [illegible]

३. अवतीर्ण यदोर्वंशे भगवान् भूतभावनः।
कृतवान्यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् [illegible]
तथा श्रीमद्भागवत १०, १, ३

४. श्रीमद्भागवत १०, १

५. श्रीमद्भागवत १०, २

[illegible] अप्सराएँ और विद्याधरियाँ नृत्य करने लगीं और किन्नर-गन्धर्व गान करने लगे। [illegible] चतुर्भुज रूप में अवतरित हुए थे।[1] वसुदेव देवकी ने [illegible] स्तुति की। उन्हें अपने वास्तविक रूप का परिचय देकर [illegible] आदेश दिया और कहा कि यदि तुम कंस से डरते हो [illegible] यशोदा से कन्या रूप में उत्पन्न मेरी योग माया को [illegible] पुरुष विष्णु एक प्राकृत शिशु हो गये।[2] वसुदेव शिशु [illegible] कपाट स्वतः खुल गये। गोकुल जाने के लिए वर्षा पूरित [illegible] और [illegible] में शेष ने फरग-मण्डल से छाया की। वसुदेव ने नन्द- [illegible] शय्या पर सुला दिया और सद्योजात कन्या को लेकर [illegible]। उधर नन्द पत्नी यशोदा को केवल यह तो ज्ञान [illegible] किन्तु श्रम और निद्रा से अचेत रहने के कारण उसका [illegible] कंस सूचना पाते ही कारागृह में पहुँचा और कन्या को [illegible] किन्तु वह उसके हाथ से छूटकर एक देवी का रूप धारण [illegible] और कंस से बोली, "रे मूढ़ तेरा अन्तक अन्यत्र उत्पन्न हो [illegible] देवकी को मुक्त कर दिया और उनसे क्षमा याचना की। [illegible] मन्त्रणा की। उन्होंने कंसारि को खोजकर उसका वध [illegible]।[3]

[illegible] में कृष्ण का जन्मोत्सव—पुत्रोत्पत्ति जानकर नन्द ने गोकुल में महान् [illegible] ब्राह्मणों को बुलवाया। ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर [illegible] संस्कार कराया। यदुकुल के पुरोहित गर्ग से यथा समय नाम- [illegible] को पूर्णतया अलंकृत बीस लाख गौएँ दान की। ब्राह्मण, [illegible] आशीर्वाद देने और स्तुति गान करने लगे। गायनवादन [illegible] गृहों में चन्दनादि का छिड़काव किया गया। उन्हें चित्रविचित्र

---

1. [illegible]
[illegible]
[illegible] पुष्कलः।
[illegible] संस्कारवद्गोपुकम्।
[illegible] सान्द्रपयोदसौभगम्॥ श्रीमद्भागवत १०. ३. ८-९

2. [illegible] कुर्वत मम।
[illegible]॥
[illegible] समारम्या।
[illegible] प्राकृतः शिशुः॥ श्रीमद्भागवत १०. ३, ४६, ४७

3. [illegible]
[illegible] स्मृतिः॥ श्रीमद्भागवत १०. ३. ५४

4. [illegible]

से सजाया गया। गोपगण बहुमूल्य वस्त्र आभूषण पहनकर और पगड़ियों से वेष्टित होकर बहुमूल्य उपहार लेकर नन्द द्वार पर आने लगे। यशोदा के यहाँ पुत्र जन्म सुनकर गोपियाँ अत्यन्त मुदित हुई। वे सुन्दर वस्त्र आभूषण और अञ्जनादि से अपना शृङ्गार कर नाना उपहार लेकर यशोदा के घर चलीं। वहाँ शिशु की मङ्गलकामना करते हुए उन्होंने उस पर हल्दी तेल मिश्रित जल [illegible] [illegible] [illegible][1]

[illegible]

(क) विविध बाल-लीलाएँ एवं दैत्य-वध (गोकुल-वृन्दावन-लीलाएँ)

१ पूतना-वध — [illegible] (अध्याय [illegible])

२—शकट भंजन—[illegible] (अ० [illegible])

३—तृणावर्त वध—[illegible] (अ० [illegible])

४—[illegible] [illegible]

५—[illegible] [illegible]

६—[illegible] [illegible]

७—[illegible] [illegible]

८—[illegible] [illegible]

९—[illegible] [illegible]

१०—[illegible] [illegible]

११—[illegible] [illegible]

१ [illegible]

[illegible]

१२—भाण्डा में छिद्र कर देना । (८. ३०)

१३—गोपियों के घरों में मल-मूत्रादि कर देना । (८. ३१)

१४—मृत्तिका-भक्षण । (८. ३२)

१५—[illegible] यशोदा को मुख में ब्रह्माण्ड-दर्शन कराना और पूर्ववत् मातृस्नेह [illegible] । (८. ३७—३९)

१६—स्तन-पान-हठ (९. ४) यशोदा के दधिमंथन के समय बालकृष्ण उनके [illegible] लिए आते हैं। यशोदा जब कृष्ण को अतृप्त छोड़कर अँगीठी से उफनता [illegible] के लिए चली जाती है तो कृष्ण क्रुद्ध होकर दधि भाण्ड फोड़ देते हैं। [illegible] निकालते हैं। घर के एकान्त में माखन खाते हैं, (९. ६)। किन्तु जब [illegible] हैं और पात्र को फूटा हुआ पाती हैं, तब भी कुछ नहीं कहती, हँस देती हैं। [illegible]

१७—उलटी पड़ी हुई ओखली पर खड़े होकर छींके पर का माखन वानरों को [illegible] । (९. ८)

१८—उलूखल-बन्धन दधि मथते यशोदा ने देखा कि कृष्ण माखन की चोरी करके वानरों को लुटा रहे हैं। यशोदा ने चुपके से उन्हें पकड़ लिया और छड़ी से धमकाया। [illegible] उन्हें ऊखल से बाँधने लगीं किन्तु रस्सी हर बार दो अँगुल छोटी पड़ [illegible]। [illegible] रस्सियों को जोड़ने पर भी छोटी पड़ती रही। जब यशोदा परिश्रम से [illegible] हो गईं तो कृष्ण माता की दयावश स्वयं बँध गये। इससे कृष्ण ने अपनी [illegible] प्रकट की। (९. ८—१९)

१९—यमलार्जुनोद्धार—यक्षपति कुबेर के मदोन्मत्त पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव [illegible] के शाप से यमलार्जुन वृक्ष हो गये थे, कृष्ण ने उनका उद्धार किया। रस्सी-[illegible] वृक्षों के बीच में फँसाकर वृक्षों को समूल उखाड़ दिया और उससे यक्षपुत्र प्रकट हो गये। (१०. १—२७)

२०—गोपियों के कथन पर नृत्य करने लगना। (११. ७)

२१—मल्लों के समान ताल ठोककर कुश्ती लड़ना। (११. ८)

२२—फल बेचनेवाली से अन्न देकर फल मोललेना और उसे रत्न-राशि देना। (११. १०—११)

२३—वृन्दावन के समीप बलराम और अन्य गोप कुमारों के साथ खेलते हुए बछड़े चराना। (११. ३८)

२४—वंशी बजाना, ढेले फेंकना, पैरों के घुँघरू बजाना, कृत्रिम गाय बैल बनना। (११. ३९)

२५—बलराम और कृष्ण का साँड़ बनकर लड़ाई का अभिनय करना। (११. ४०)

२६—मयूर आदि पक्षियों की बोली का अनुकरण करना। (११. ४०)

कर अन्तरिक्ष में घुमाकर एक कपित्थ वृक्ष पर दे मारा। (११. ४३-४४

२८—प्रातराश (कलवा) लेकर वृन्दावन में वत्सचारण करना। (११. ४५

२९—**बकासुर वध**—बकरूप धारण करके आये हुए एक दैत्य ने कृष्ण को निगल लिया। किन्तु कृष्ण ने उसे चोंच चीर कर मार डाला। (११. ४६-५३)

३०—आँख मिचौनी, पुल बाँधना, बानर की भाँति उछलना, कूदना आदि क्रीड़ाओं में कुमारावस्था व्यतीत करना। (११. ५९)

३१—वत्सचारण के समय गोप बालकों के छींके आदि चुराना। छींके वाले को पता लग जाता तो चुराने वाला उसे दूसरे के पास और दूसरा तीसरे के पास फेंक देता। जब छींके वाला तंग हो जाता तो हँस कर लौटा देते थे। (१२. ५)

३२—कृष्ण को भाई मानकर गोप बालकों का उन्हें छूकर आनन्दित होना। (१२. ६)

३३—बाँसुरी बजाना, नरसिंहा (सिंगी) बजाना, भ्रमरों के साथ गाना, कोकिल के साथ कूजना और आनन्दित होना। (१२. ७)

३४—आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की छाया के साथ दौड़ना, हंसों के साथ उनकी गति का अनुकरण करते हुए चलना, बगुलों के पास उन्हीं के समान ध्यानस्थ के समान बैठना, मयूरों के साथ मिलकर नाचना। (१२. ८)

३५—बन्दर के बच्चों को पकड़कर खींचना, उनके साथ स्वयं भी वृक्षों पर चढ़ना, उनकी ओर घुड़कना, एक शाखा से दूसरी शाखा पर उछलना। (१२. ९)

३६—किसी नदी के कछार में थोड़े से जल में गोते लगाना, उसमें फुदकते हुए मेढकों के साथ [illegible] जल में [illegible] प्रतिबिम्ब देखकर हँसना, [illegible] की प्रतिध्वनि को [illegible] (१२. १०

३७—अघासुर-वध—[illegible] (१२. [illegible]

३८—ब्रह्मा द्वारा वत्सहरण—[illegible] परीक्षा के लिए ब्रह्मा ने जब बछड़ों और गोप बालकों का हरण कर लिया तो कृष्ण ने स्वयं [illegible] और बालकों के रूप में परिणत कर लिया। इसका उद्देश्य ब्रह्मा के [illegible] गर्व-चूर्ण करना था। (अध्याय १३)

३९—अपने वत्सरूप [illegible] बालकों और [illegible] बलराम [illegible] आत्यन्तिक प्रेम उत्पन्न करना। (१३. २८-३६)

[illegible] लीलाएँ एवं दैत्यवध (वृन्दावन लीला)

[illegible] (पाँच वर्ष से अधिक) अवस्था में प्रवेश करने पर बछड़ों के स्थान [illegible] गोप बालकों से घिरे वन में विहार की इच्छा से बलराम सहित [illegible] वन में प्रवेश कर गिरिराज गोवर्धन के समीपवर्ती यमुना तट पर [illegible] करना। (१५. १-९)

[illegible] राजहंसों के साथ कूजना, दूरस्थ पशुओं को मेघ-गम्भीर स्वर में पुकारना [illegible] चकवाक, भारद्वाज और मयूर आदि पक्षियों की सी बोली बोलना, [illegible] के शब्दों से डरे हुए जीवों के समान स्वयं भी भयभीत का सा [illegible] थककर किसी गोप बालक की गोद में सिर रखकर लेटे हुए [illegible]। कभी बलराम के हाथ में हाथ डालकर खड़े होना, नाचना, [illegible], कुश्ती लड़ना, हँस-हँसकर साथियों की प्रशंसा करना, स्वयं भी कभी-कभी [illegible] पर किसी वृक्ष की जड़ के सहारे कोमल पत्तों की शय्या पर [illegible] (१५. ९-२०)

४६—**धेनुकासुर-वध**—श्रीदामा, सुबल, स्तोककृष्णादि मित्रों के आग्रह से कृष्ण-[illegible] तालवन में गए। पक्व तालफल खाने के लिए सभी सखा लालायित थे। किन्तु वह वन [illegible] गर्दभ रूपधारी दैत्य धेनुकासुर के अधिकार में था। जब [illegible] तो वह दैत्य दौड़ता हुआ वहाँ आया और उसने बलराम के [illegible]। किन्तु बलराम ने उसके पैर पकड़कर अन्तरिक्ष में घुमाकर [illegible] उसके अन्य भाई गर्दभों का अन्त कर दिया। (१५. २१-३०)

[illegible]—[illegible] द्वारा यमुना के विषाक्त हुए जल के पान से मरे हुए गो-गोपों को [illegible] करना। (१५. ४७-५२)

४८—**कालियदमन**—कृष्ण एक बहुत ऊँचे कदम्ब वृक्ष से यमुना स्थित विषाक्त [illegible] में कूद पड़े। कालिय ने उन पर आक्रमण कर उन्हें लपेट लिया किन्तु [illegible] को फुलाया जिससे कालियनाग का शरीर फटने लगा और उसने [illegible] दिया। कृष्ण ने उसके फण मण्डल पर नृत्य किया। उसके [illegible] नाग और उसकी पत्नियाँ कृष्ण की शरण में आये और स्तुति की। [illegible] को यमुना छोड़कर समुद्र स्थित रमणक द्वीप में चले जाने की [illegible]। [illegible] किया। (अध्याय १६)

[illegible]—[illegible]—जिस दिन कालिय-दमन हुआ उस रात्रि को सुस्नात, [illegible] और [illegible] यमुना तट पर ही रह गए थे। किन्तु रात के ग्रीष्म से सूखे हुए वन में [illegible] और उस दावानल में वे गो-गोपगण जलने लगे। तब कृष्ण ने दावानल [illegible]। (१७. २०-२५)

सखो, बजाना प्रशंसा करना कृष्ण बलराम का झूमना गाना (कन्दुक आदि) फेंकना दूसरों के नाचने पर स्वयं गाना बजाना प्रशंसात्मक वाहवाह शब्द कहना पशु पक्षी आदि की चेष्टाओं का अनुकरण करना मेंढकों की भांति उछल-उछलकर चलना परस्पर उपहास करना बालकों की भुजाओं की डाली बनाकर झूलना, राजा का अनुकरण करना। (अध्याय १८)

४८—प्रलम्बासुर वध— गोचारण के समय कृष्ण को उठाकर ले जाने के उद्देश्य से प्रलम्बासुर नामक दैत्य गोप वेष धारण कर आया। कृष्ण ने उसे अपने दल में मिला लिया। दो दलों में विभक्त होकर वृष-वाहक (पीठ पर चढ़ा कर दौड़ने का) खेल खेला। प्रलम्ब ने कृष्ण को असह्य समझकर बलराम को अपनी पीठ पर चढ़ाया और तेजी से दौड़ा और पीठ से उतारने के स्थान (भाई) से भी बहुत आगे बढ़ गया। जब वह अपने वास्तविक रूप में आया तो बलराम ने मुष्टि प्रहार से उसका अन्त कर दिया। (१८. २३-३२)

४९—पुनः दावानल पान - एक बार गौएँ मुंजवन में चली गई। वहाँ दावानल लग गया। तब गोपगण कृष्ण की शरण आये। कृष्ण ने उनसे कहा, "डरो मत, अपने नेत्र मूँद लो।" इसके उपरान्त कृष्ण उस दावानल का पान कर गये। (१९. ११-१२)

५०—वन-भोजन [illegible]

५१—[illegible] (अध्याय २०)

५२—[illegible] (अध्याय २१)

५३—चीरहरण— [illegible] (अध्याय २२)

५४—यज्ञपत्नियों पर अनुग्रह [illegible] कृष्ण बलराम और गोपों के साथ गोचारण करते हुए वृन्दावन से [illegible] ब्राह्मणों के पास भात माँगने भेजा। किन्तु उन [illegible] ब्राह्मणों ने उनकी प्रार्थना नहीं सुनी। तब कृष्ण ने अपने सखाओं को [illegible] के समीप भेजा। उन

सामग्री लेकर कृष्ण के समीप आई और उनकी शरण हो गई। इस घटना से ब्राह्मणों ने अपने [illegible] धिक्कारा और भगवत्साक्षात्कार न कर सकने के कारण पश्चात्ताप किया। (अध्याय [illegible])

५६ इन्द्र यज्ञ भंग—ब्रज में पहले नन्दादि गोपगण विविध पक्वान्नादि द्वारा इन्द्र की पूजा करते थे। श्रीकृष्ण ने इन्द्र के स्थान पर गिरिराज गोवर्धन, गौओं और ब्राह्मणों का [illegible] (अध्याय २४)

[illegible] गोवर्धन धारण—जब ब्रजवासियों ने इन्द्रयाग नहीं किया तो इन्द्र [illegible] प्रलयकालीन सांवर्तक मेघ-मण्डल को ब्रज पर घोर वर्षा कर [illegible] मूसलाधार वर्षा, वज्रपात एवं उपल वृष्टि होने लगी। [illegible] की शरण में आई। श्रीकृष्ण ने उनकी रक्षा और इन्द्र का [illegible] पुष्प की भाँति गोवर्धन को एक हाथ से ही उठा लिया।[1] [illegible] अपनी रक्षा की। गोवर्धन-धारण के समय कृष्ण की अवस्था [illegible] (अध्याय २५)

[illegible] सुरभि (कामधेनु) द्वारा श्रीकृष्ण का अभिषेक और इन्द्रकृत स्तुति—[illegible] ने ब्रज की रक्षा कर लेने पर इन्द्र का मद नष्ट हो गया। उसने लज्जित [illegible] और कामधेनु ने अपने दुग्ध से तथा ऐरावत ने आकाश गंगा के [illegible]। (अध्याय २७)

५८ —[illegible] के बन्धन से नन्द की मुक्ति —एक बार नन्द ने एकादशी के व्रत के [illegible] के लिए ज्योंही प्रवेश किया, वरुण का एक अनुचर उन्हें पकड़कर [illegible]। जब कृष्ण को पता लगा तो वे तुरन्त वरुण के समीप [illegible] माँगकर स्तुति की और नन्द सहित कृष्ण ब्रज लौट आये।

[illegible] रासलीला— पूर्णचन्द्र ज्योत्स्ना से धवल शरदृतु की रमणीय रात्रियों [illegible] की।[2] उन्होंने अत्यन्त मधुरगान आरंभ किया। गोपियाँ [illegible] उनके पास दौड़ आईं। उनके पति, पिता, भाई बन्धुओं [illegible], किन्तु कृष्णाकृष्टमना वे गोपियाँ किसी के रोके नहीं रुकीं। [illegible] तो उन्होंने उनका स्वागत कर वहाँ आने का कारण पूछा, [illegible] तो कृष्ण ने उनसे कहा कि पतिव्रता स्त्रियों का रात्रि में

[1] [illegible] चैत्यचलम्।
[illegible] बालकः॥ श्रीमद्भाग० १०, २५ १९

[2] [illegible] श्रीलया।
[illegible] ॥ श्रीमद्भाग० १०, २३ २

[3] [illegible] मल्लिकाः।
[illegible] ॥ आदि

श्रीमद्भागवत १०, २९-३३ रासपंचाध्यायी।

सर्वात्मा कृष्ण की अनन्य शरण में आ गई हैं। तब आत्माराम योगेश्वर कृष्ण ने उनके साथ रमण किया।[1] जब गोपियों को अपने सौभाग्य पर मद हुआ तो उसे शान्त करने के लिए कृष्ण उनके बीच से अन्तर्धान हो गये। तब गोपियाँ अत्यन्त व्याकुल होकर उनकी खोज करने लगीं। उन्मत्त होकर न्यग्रोध, प्लक्ष और अश्वत्थ आदि वृक्षों, लताओं और मृगियों से उनका पता पूछने लगीं। कृष्ण की विविध लीलाओं का अनुकरण करने लगीं। इधर कृष्ण एक अन्तरंग गोपी (सम्भवतः राधा) के साथ एकान्त में चले गये थे। गोपियों ने खोज में कृष्ण के चरण-चिह्नों के साथ उन पदों-चरणों को देखकर उसके भाग्य को सराहा जिसको कृष्ण एकान्त में ले गए थे।[2] जब इस प्रेमगर्विता गोपांगना ने भी कृष्ण से स्वयं को कंधे पर चढ़ाने का आग्रह किया तो कृष्ण वहाँ से भी अन्तर्धान हो गये। सब गोपियाँ मिलकर उस गोपी के समीप पहुँचीं। उसने सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। तब सब प्रेम-विह्वला गोपियों ने आर्त होकर श्रीकृष्ण को पुकारा।[3] श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उन्होंने गोपियों को सान्त्वना दी और उनके निष्काम, पवित्र एवं अनन्य प्रेम का उल्लेख किया।[4] अब श्रीकृष्ण महारास में प्रवृत्त हुए। चुम्बन, परिरम्भण आदि के साथ श्रीकृष्ण ने अपना चर्वित ताम्बूल भी गोपियों को दिया। दो-दो गोपियों के बीच में कृष्ण उनके गले में हाथ डालकर मण्डलाकार नृत्य करने लगे। विविध वाद्यों के साथ संगीत की स्वर लहरी गूँज उठी। कंगन, [illegible] और किंकिणियों की रुनझुन ध्वनि [illegible] रास से अति श्रान्त [illegible] विहार किया।[5]

६०—सुदर्शन उद्धार [illegible] सर्प होगया था। [illegible] नन्द को पकड़ लिया [illegible] छोड़ा। तब श्रीकृष्ण के [illegible]

६१—शंखचूड़ वध [illegible] साथ वन में विहार कर [illegible] में स्थित व्रज वनिताओं [illegible] एक मुष्टिका प्रहार से [illegible] मणि कृष्ण ने बलराम [illegible]

---

१. इति विक्लवितं तासां [illegible]
प्रहस्य सदयं गोपीर [illegible] — [illegible]

२. अनयाराधितो नूनं [illegible]
यन्नो विहाय गोविन्दः [illegible] — श्रीमद्भागवत [illegible]

३. गोपिकागीत—श्रीमद्भागवत [illegible]

४. न पारयेऽहं निरवद्य [illegible]
या माभजन् दुर्जरगेह [illegible] — श्रीमद्भागवत [illegible]

५. श्रीमद्भागवत १०, ३३, [illegible]

[illegible]—**अरिष्टासुर वध**—एक दिन कंस प्रेषित अरिष्टासुर नामक दैत्य विशालकाय [illegible] रूप धारणकर व्रज में घुस आया। अपने भयंकर उत्पातों से उसने व्रज में बड़ा [illegible] कर दिया था। कृष्ण ने उसके सींग उखाड़कर पैरों से कुचलकर मार डाला। [illegible] पर नारद ने कंस को कृष्ण का पता बताया। कंस ने रामकृष्ण को व्रज से [illegible] के लिए अक्रूर को आज्ञा दी। (अध्याय ३६)

[illegible]—**केशि-वध**—कंस ने केशी नामक दैत्य को कृष्ण को मारने के लिए व्रज में भेजा। [illegible] एक विकराल घोड़े का वेष धारण करके आया। कृष्ण ने उसके मुँह में [illegible] भुजा घुसाकर मार डाला। (अध्याय ३७)

[illegible]—**व्योमासुर वध**—केशी को मारकर एक दिन कृष्ण गोपों के साथ गोचारण [illegible] पर्वत पर चोर और सिपाही बनकर लुका छिपी का खेल खेल रहे थे। कुछ चोर [illegible] कुछ भेड़ चराने वाले और कुछ भेड़ बने। इतने में मयासुर का पुत्र व्योमासुर एक [illegible] का वेष धारण कर उनमें मिल गया और चोर बनकर बहुत से भेड़ बने हुए [illegible] को चुराकर पर्वत गुहा में घेर आया। कृष्ण ने उसका कुकर्म ताड़ लिया और [illegible] वध कर दिया। (अध्याय ३७)

६६—**मथुरा गमन**—कंस की आज्ञा से श्वफल्क-पुत्र अक्रूर रामकृष्ण को मथुरा [illegible] के लिए नन्द के गोकुल में आए। जब गोपियों ने यह समाचार सुना तो वे [illegible] हो गईं।[1] हृत्ताप जनित उष्ण श्वास से उनके मुख मुरभा गये। कृष्ण [illegible] से उनको देहानुसंधान नहीं रहा। कभी वे विधाता को कोसतीं और कभी अक्रूर [illegible] पर झुँझलातीं।[2] कृष्ण के जाते समय वे लोक-लज्जा का त्याग कर उच्च स्वर [illegible]।[3] श्रीकृष्ण ने उन्हें पुनः लौट आने का आश्वासन दिया। श्रीकृष्ण और [illegible] के रथ की ध्वजा और पहियों से उड़ती हुई धूल जब तक दीखती रही, तब तक [illegible] सी वहीं खड़ी रहीं। किन्तु उनका मन कृष्ण के साथ ही चला गया था। [illegible] गोपियाँ निराश होकर अपने घर लौट आयीं और कृष्ण-लीलाओं का गान करती [illegible] फिर मिलने की आशा में अहोरात्र व्यतीत करने लगीं। अक्रूर ने मार्ग में यमुना [illegible] और यमुना के कुण्ड (अनन्त तीर्थ) में सहस्र शिर युक्त शेष के क्रोड में शयन [illegible] शंख, चक्र, गदा, पद्मादि विभूषित, देव, ऋषि विप्र भक्तों से स्तूयमान नारायण-[illegible] किए। तदनन्तर अक्रूर ने परम भक्तिभाव से उनकी स्तुति की। (अध्याय [illegible]) नन्द आदि व्रजवासी गोपगण राम और कृष्ण के पहुँचने से पूर्व ही मथुरा

[1] [illegible] कृष्णानुवर्त्तिता गृहात्। [illegible] श्रीमद्भागवत १०, ३९. १३

[2] [illegible] न क्वचिद्दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः। [illegible] विकोडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा॥ श्रीमद्भाग० १०, ३९. १९
[illegible] नाम भूत्वा क्रूरस्त्वमेतदतीव दारुणः। [illegible] मुकुन्दं [illegible] श्रीमद्भागवत १०, ३९. २६

[3] [illegible] कृष्ण [illegible]
[illegible] दामोदर माधवेति॥ श्रीमद्भागवत १०, ३९. ३१

नगरी के बाहर उपवन में ठहर कर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कृष्ण ने वहाँ पहुँचकर अक्रूर को पहले नगर में भेजा और कुछ देर ग्वालों के साथ उपवन में ठहरकर अपराह्न में नगर की शोभा देखने के लिए मथुरा में प्रवेश किया। वह भव्य और सम्पन्न नगर अत्यन्त सुसज्जित था, क्योंकि वहाँ मल्लयुद्ध आदि विविध उत्सव होने वाले थे। राम-कृष्ण की शोभा देखकर मथुरावासी स्त्री-पुरुष चकित रह गये और नारियों के भाग्य को सराहने लगे जो निरन्तर कृष्ण की रूप सुधा का पान करती रही हैं। (अध्याय ४१)

(ग) विविध किशोर-लीलाएँ एवं मल्लनिग्रह (मथुरा लीला)

६६—**रजक-उद्धार**—मथुरा भ्रमण में कृष्ण बलराम को सर्वप्रथम एक धोबी मिला जो रँगरेज भी था। वह कंस का भृत्य था और राजकीय वस्त्र ले जा रहा था। कृष्ण ने उससे वस्त्र माँगे किन्तु जब उसने अभिमान वश उनका अपमान किया और वस्त्र देने से निषेध किया तो कृष्ण ने अपने हाथ के अग्रभाग से ही उसका सिर धड़ से पृथक् कर दिया। (अध्याय ४१)

६७—**वायक (दर्जी) पर अनुकम्पा**—रजक को दण्ड देकर जब कृष्ण आगे बढ़े तो उन्हें वायक (दर्जी) मिला। उसने कृष्ण के अलौकिक सौंदर्य से मुग्ध होकर कृष्ण का चित्र-विचित्र वस्त्रों से सुन्दर वेष बना दिया। कृष्ण ने प्रसन्न होकर उसे ऐहिक आमुष्मिक दोनों दृष्टियों से कृतार्थ कर दिया। (अध्याय ४२)

६८—**सुदामा नामक मालाकार (माली) पर अनुकम्पा**—वायक से सन्तुष्ट होकर गोप सखा सहित रामकृष्ण सुदामा नामक एक [illegible] अनुगत दास था। उसने सभी को सुगन्धित पुष्प माला [illegible] अपनी अचला-भक्ति का वरदान दिया। (अध्याय ४१)

६९—**कुब्जा पर अनुकम्पा**—तदनन्तर [illegible] युवती, सुन्दर मुखाकृति वाली किन्तु कुब्जा (कुबड़ी) [illegible] होने के कारण उसका नाम त्रिवक्रा था। वह हाथ में [illegible] में जा रही थी। वास्तव में वह सैरन्ध्री (उबटन लगाने [illegible] थी। कृष्ण ने उससे चन्दन का अनुलेपन माँगा [illegible] कृष्ण ने प्रसन्न होकर उस त्रिवक्रा को सीधी करने के [illegible] का पंजा दबा कर उसकी ठोड़ी में अपनी दो अँगुलियाँ [illegible] दिया। बस कूबड़ दूर होते ही वह एक अति सुन्दर [illegible] उसमें प्रगाढ़ राग उत्पन्न हो गया और वह उन्हें अपने [illegible] किन्तु कृष्ण ने उसे अपना कार्य समाप्त कर उसके घर [illegible]

(यही कुब्जा आगे चलकर गोपियों के [illegible] सूर आदि कृष्ण भक्त हिन्दी कवियों के श्रेष्ठ [illegible]

७०—**धनुर्भंग**—मथुरा का भ्रमण करते हुए [illegible] पूछते हुए रामकृष्ण वहाँ पहुँचे। उन्होंने वहाँ एक विशाल [illegible]

...बहुभव के महान् ...से दिगदिगन्त गूँज उठे। कंस की सेना ने जब उन पर आक्रमण किया ... धनुष के टुकड़ों से ही उसका संहार कर दिया। इससे मथुरा पुरवासियों ने उन्हें ... समझा ... इसके उपरान्त नगर-भ्रमण करते हुए कृष्ण सदलबल मथुरा के बाहर डेरावनस्थ अपने शिविर पर लौट आये। (अध्याय ४२)

...—कुवलयापीड वध—दूसरे दिन रामकृष्ण प्रातः कृत्य से निवृत्त होकर ... रंगशाला में कंस द्वारा आयोजित मल्लक्रीड़ा देखने गये। कंस की योजना ... कुवलयापीड अथवा चाणूर, मुष्टिक आदि मल्लों से कृष्ण को मरवा डालने की ... रामकृष्ण रंगशाला के द्वार पर पहुँचे तो उन्हें वहाँ कुवलयापीड नामक विशाल ... । जब महावत अंबष्ठ ने मार्ग न दिया तो कृष्ण ने हाथी से प्रबल युद्धकर ... उखाड़ लिये। दाँतों से ही हाथी और महावतों को मार डाला। (अध्याय ४३)

...—मल्लनिग्रह—कुवलयापीड का वधकर रामकृष्ण रंगभूमि में प्रविष्ट हुए। ... भावनाओं के अनुसार भिन्न-भिन्न नर-नारी उन्हें भिन्न-भिन्न रूपों में देख रहे ... रंगशाला में कंस प्रेरित 'चाणूर' और 'मुष्टिक' नामक महामल्लों ने रामकृष्ण का ... लिए आह्वान किया। तब श्रीकृष्ण ने चाणूर और बलराम ने मुष्टिक से ... उनको मार डाला। इनके अतिरिक्त बलराम ने 'कूट' नामक मल्ल को बाँये ... से मार डाला। 'शल' और 'तोशल' नामक मल्ल कृष्ण के चरण प्रहार से ... के कारण मर गये। अन्य मल्ल प्राण बचाकर भाग खड़े हुए। मल्ल ... उपरान्त रामकृष्ण ने अपने समवयस्क गोपों को अखाड़े में खींचकर उनसे प्रेम-पूर्वक ... क्रीड़ा की। (अध्याय ४४)

...—कंस वध—कुवलयापीड और मल्लों के वध से कंस अत्यन्त क्रुद्ध और भय-भीत ... । वह उन्मत्त की भाँति जल्पना करने लगा। कृष्ण उछल कर उसके ऊँचे ... पर पहुँच गये। उसके केश पकड़कर उसे रंगभूमि पर पछाड़ दिया, इस प्रकार बल ... कंस का नाश हो गया। कंस की मृत्यु का बदला लेने के लिए उसके ... भाई 'कंक', 'न्यग्रोध' आदि आये। किन्तु बलराम ने उन सब को एक परिघ से मार ... । (अध्याय ४४) तदनन्तर राजमहिषियों को सांत्वना देकर कंसादि की यथोचित ... क्रिया कराई। फिर अपने माता पिता देवकी और वसुदेव के पास गये, उनको ... किया, विविध प्रकार से उन्हें सांत्वना दी और उनमें पुत्र स्नेह उत्पन्न किया। ... उग्रसेन को पुनः समस्त यादवों का अधिपति बनाया। यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह और कुकर आदि वंशों में उत्पन्न अपने सगे सम्बन्धियों को, जो कंस के भय से ... गये थे, पुनः अपने-अपने घरों में बसाया। (अध्याय ४५)

... नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् ।
... ऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ॥
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां ।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ॥ श्रीमद्भाग० १०. ४३. १७

७४—**यज्ञोपवीत संस्कार एवं विद्याध्ययन**—कंस वध के उपरान्त कृष्ण ने नन्द आदि गोपों को व्रज में भेज दिया और [illegible] देवकी और वसुदेव के पास रह गये। वसुदेव ने [illegible] रामकृष्ण का यथाविधि यज्ञोपवीत संस्कार [illegible] सवत्सा गौएँ दान की। संस्कार से द्विजत्व [illegible] अवन्ती (उज्जैन) निवासी सान्दीपनि नामक [illegible] होते हुए भी रामकृष्ण ने अपने स्वतः सिद्ध ज्ञान [illegible] सेवा से प्रसन्न गुरु ने शीघ्र ही उन्हें षडङ्ग [illegible] आदि समस्त विद्याओं और चौंसठ कलाओं [illegible]

७५—**गुरु दक्षिणा में गुरुपुत्रानयन** [illegible] विद्याध्ययन के उपरान्त गुरु दक्षिणा रूप में गुरु [illegible] मर गया था, लाने के लिए कृष्ण समुद्र पर [illegible] सहित) उनकी पूजा की। समुद्र ने अपने जल में [illegible] दैत्य का पता बताया। कृष्ण ने उसे मार [illegible] शङ्ख का नाम पाञ्चजन्य है।) किन्तु पञ्चजन [illegible] संयमनी पुरी में जाकर यमराज से गुरु-पुत्र [illegible] दिया। (अध्याय ४५)

७६—**उद्धव-व्रज-प्रेषण एवं गोपियों को सन्देश** [illegible] रामकृष्ण मथुरा आ गए। एक दिन कृष्ण [illegible] बृहस्पति शिष्य उद्धव को बुलाकर कहा कि [illegible] पिता नन्द यशोदा और गोपियों को मेरा [illegible] ही हैं। मेरे दूर चले आने से वे निरन्तर [illegible] हो रही हैं। मेरे प्रत्यागमन के संदेश की [illegible] धारण कर रही हैं। उन्होंने मेरे लिए समस्त [illegible] दिया है"।[1] उद्धव कृष्ण का सन्देश लेकर [illegible] गो-गोप-गोपी-संघ से सुशोभित, व्रजभूमि में [illegible] उद्धव ने कृष्ण के निर्गुण परब्रह्मत्व का [illegible] किया। दूसरे दिन प्रातः गोपियों ने नन्द [illegible]

---

1. गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह
   गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय॥
   ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः
   ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान्बिभर्म्यहम्॥
   मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः।
   स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः॥
   धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथंचन
   प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः॥ — [illegible] १०, ४६, ३-६

[illegible] के [illegible] गान ही वेषभूषाधारी एक पुरुष (उद्धव) को देखकर उसे घेरकर खड़ी होगईं। [illegible] उद्धव से जो वार्तालाप हुआ वह बड़ा ही मनोरम था। (अध्याय ४६-४७) [illegible] 'भ्रमरगीत' नामक प्रसंग है जिसने कृष्ण-भक्ति हिन्दी काव्य को अमर प्रेरणा [illegible] [illegible]का पृथक् रूप से आगे सविस्तार उल्लेख किया जायगा।

[illegible]—**कुब्जा-गृह-गमन**—उद्धव के नन्द-व्रज से लौट आने पर कृष्ण उनको साथ [illegible] पूर्व प्रतिज्ञानुसार कुब्जा पर प्रेमानुग्रह करने के लिए कुब्जा के घर गये। [illegible] [illegible]नका भक्तिपूर्वक स्वागत किया। कृष्ण ने कुछ दिन कुब्जा का प्रेमातिथ्य [illegible] [illegible]या। (अध्याय ४८)

८—**अक्रूर-गृह-गमन**—एक दिन श्रीकृष्ण बलराम और उद्धव के साथ अपने [illegible] अक्रूर को अनुगृहीत करने उनके घर गये। अक्रूर ने दिव्य गन्धाक्षत पुष्पादि से [illegible] पूजन कर चरणोदक लिया और प्रेम विह्वल होकर स्तुति की। कृष्ण ने उनकी [illegible] उन्हें आनन्दित किया तथा युधिष्ठिरादि पाण्डवों की कुशल क्षेम जानने के लिए [illegible] [illegible]नापुर जाने को कहा (अध्याय ४८) अक्रूर ने हस्तिनापुर जाकर सारी स्थिति का [illegible] [illegible]या और मथुरा लौटकर कृष्ण को पाण्डवों के प्रति धृतराष्ट्र, दुर्योधनादि के [illegible] [illegible]हार का सारा हाल कह सुनाया। (अध्याय ४९)

(आ) दशमस्कन्ध उत्तरार्ध (द्वारका-लीला)

९—**जरासंध से युद्ध एवं द्वारका दुर्ग का निर्माण**—कंस के वध के बाद [illegible] [illegible]ह्वा रानियाँ अपने पिता मगधराज जरासंध के घर चली गईं। जरासंध ने तेईस [illegible] सेना लेकर यादवों की राजधानी मथुरा पर भयंकर आक्रमण किया। कृष्ण ने [illegible] बार पराजित किया। किन्तु अठारहवीं बार कालयवन नामक यवन वीर तीन [illegible] [illegible]च्छ सेना लेकर आया। श्रीकृष्ण ने सुरक्षार्थ समुद्र में बारह योजन विस्तीर्ण [illegible] दुर्ग का निर्माण कराया और मथुरा के निवासियों को योगबल से उस दुर्ग में पहुँचा [illegible] [illegible]रका की रक्षार्थ बलभद्र को वहाँ छोड़कर स्वयं निरायुध ही नगर के बाहर आये। [illegible] ५०)

१०—**राजा मुचुकुन्द द्वारा कालयवन का वध कराना**—कालयवन को [illegible] श्रीकृष्ण एक साधारण मनुष्य की भाँति भयभीत होकर भागे और एक पर्वत गुहा में [illegible] वहाँ मान्धाता पुत्र राजा मुचुकुन्द सो रहे थे। श्रीकृष्ण ने अपना दुपट्टा उन्हें [illegible] उसको कालयवन ने श्रीकृष्ण समझकर लात से मारा। मुचुकुन्द की क्रुद्ध दृष्टि [illegible] ही कालयवन जलकर भस्म हो गया। फिर मुचुकुन्द को श्रीकृष्ण ने अपना [illegible] दिया। मुचुकुन्द ने भक्ति पूर्वक उनकी स्तुति की और तपश्चर्या के लिए बदरिका- [illegible] गये। (अध्याय ५१, ५२)

११—**द्वारका-गमन तथा कृष्ण को रुक्मिणी का विवाह सन्देश**—श्रीकृष्ण [illegible] म्लेच्छ सेना से घिरी मथुरापुरी में आये। सेना का संहार करके उसका धन [illegible] की ओर ले चले। इसी समय जरासंध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा आपहुँचा।

जरासंध ने पीछा किया। वे प्रवर्षण पर्वत पर चढ़ गये। जरासंध ने उसके चारों ओर आग लगवादी। दोनों भाई उस पहाड़ से कूदकर [illegible] द्वारका आ गये। जरासंध ने समझा कि रामकृष्ण जल गये और वह मगध लौट गया।

विदर्भ नरेश भीष्मक की कन्या लक्ष्मी की अवतारस्वरूप रुक्मिणी का कृष्ण से [illegible] [illegible]

[illegible] रुक्मिणी हरण [illegible] रुक्मिणी के [illegible] विवाह [illegible]

[illegible] प्रद्युम्न का जन्म और [illegible]

[illegible]

[illegible] स्यमन्तक मणि का उपाख्यान [illegible] जाम्बवती और सत्यभामा के साथ कृष्ण का विवाह [illegible] [illegible] प्रदान किया था [illegible]

[illegible] समझ लिया। किन्तु श्रीकृष्ण ने लोगों को वास्तविकता बताई। कृष्ण ने [illegible] मणि मथुराधीश उग्रसेन को भेंट करने के लिए माँगी किन्तु उसने निषेध [illegible] कृष्ण चुप रह गये। एक दिन सत्राजित् का भाई प्रसेन उस मणि को गले [illegible] खेलने वन को गया जहाँ उसे एक सिंह ने मार डाला। सत्राजित् ने [illegible] कि सम्भवत: मणि के लोभ से कृष्ण ने ही प्रसेन का वध कराया है। [illegible] प्रसेन को मारने वाले सिंह को भी गिरिगुहा मे रहने वाले जाम्बवान् नामक [illegible] ने मार डाला था और मणि अपने बच्चे को खेलने के लिए देदी थी। [illegible] करने और लोगों को वास्तविकता का ज्ञान कराने के लिए कृष्ण प्रसेन [illegible] गये। वहाँ जाम्बवान् की गुहा में वे एकाकी ही घुस गये। अट्ठाईस दिन तक [illegible] जब जाम्बवान् को कृष्ण के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हुआ तो वह [illegible] हुआ। स्यमंतक मणि उन्हें अर्पित कर दिया और अपनी कन्या जाम्बवती [illegible] कर दिया। कृष्ण ने उग्रसेन के समक्ष स्यमंतकमणि सत्राजित् को लौटा [illegible] अत्यन्त लज्जित हुआ। उसने अपनी कन्या सत्यभामा का विवाह कृष्ण [illegible] स्यमन्तक मणि भी कृष्ण को देना चाहा किन्तु कृष्ण ने स्वीकार नहीं किया। [illegible]

८८. **शतधन्वा का वध और अक्रूर को पुनः द्वारका बुलाना**—पाण्डवों और कुन्ती [illegible] लाक्षागृह की विपत्ति का समाचार सुनकर कृष्ण और बलराम हस्तिनापुर [illegible] अक्रूर और कृतवर्मा के बहकाने से शतधन्वा ने सोते हुए सत्राजित् का [illegible] मणि का हरण कर लिया। सत्यभामा अपने पिता के वध का समाचार [illegible] समीप हस्तिनापुर पहुँची। कृष्ण द्वारका आये। शतधन्वा भयभीत होकर [illegible] कृष्ण ने मिथिलापुरी तक उसका पीछा किया और चक्र से उसका सिर [illegible]। किन्तु शतधन्वा ने स्यमन्तक मणि पहले ही अक्रूर को सौंप दिया था। [illegible] सत्राजित् का और्ध्वदैहिक कर्म किया। अक्रूर और कृतवर्मा ने शतधन्वा [illegible] हत्या के लिए बहकाया था, अत: वे भयभीत होकर द्वारका से भाग गये [illegible] अक्रूर को द्वारका बुलवाया। सबके सामने उनके पास से स्यमंतक मणि [illegible] कलंक मिटाया। कृष्ण ने वह मणि फिर अक्रूर को ही दे दिया। [illegible]

८९. **कृष्ण के अन्य विवाह**—एक बार कृष्ण सात्यकि आदि यादवों के साथ [illegible] हस्तिनापुर गये और वहाँ कई महीने रहे। एक दिन कृष्ण और अर्जुन [illegible] के लिए गये। यमुना तट पर उन्होंने एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या को [illegible] पुत्री कालिन्दी थी और विष्णु के अवतार कृष्ण को ही पति रूप मे वरण [illegible]। श्रीकृष्ण उसे अपने साथ ले आये और द्वारका मे शुभमुहूर्त मे उसके [illegible]। (यह कालिन्दी आधिभौतिक रूप मे यमुना है। यमुना कृष्णपत्नी है [illegible] अतिप्रिय है और कृष्णभक्ति मे यमुना का अनल्प माहात्म्य है) अवन्ति देश [illegible] और अनुविन्द दुर्योधन के वशवर्ती सामन्त थे। उन्होंने स्वयंवर में कृष्ण

को वरण करने की इच्छा वाली अपनी बहिन 'मित्रविन्दा' को रोक दिया था। किन्तु कृष्ण ने अपनी फूआ 'राजाधिदेवी' की बेटी 'मित्रविन्दा' को सब राजाओं के देखते-देखते हर लिया और उससे विवाह कर लिया।

कोशल देश के राजा 'नग्नजित्' की कन्या थी 'नाग्नजिती सत्या'। उसके स्वयंवर में कृष्ण ने सात दुर्जय बैलों को नाथने की शर्त पूरी कर उससे विवाह किया। इसके उपरान्त कृष्ण ने अपनी फूआ श्रुतकीर्ति की पुत्री केकयदेशीया भद्रा से विवाह किया। तदनन्तर कृष्ण ने मद्रराज की कन्या 'लक्ष्मणा' को उसके स्वयंवर से एकाकी ही हरण कर विवाह किया। (अध्याय ५८)

इस प्रकार पट्टमहिषी रुक्मिणी सहित कृष्ण की आठ पटरानियाँ थीं—(१) रुक्मिणी, (२) जाम्बवती, (३) सत्यभामा, (४) कालिन्दी, (५) मित्रविन्दा (६) नाग्नजिती सत्या, (७) भद्रा और (८) लक्ष्मणा।

८७—कृष्ण द्वारा भौमासुर एवं मुरदैत्य का वध तथा सोलह हजार एक सौ राज कन्याओं से विवाह—प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम) के शासक भौमासुर ने देवताओं का सर्वस्व हरण कर लिया था। देवराज इन्द्र की प्रार्थना पर कृष्ण सत्यभामा सहित गरुड़ पर आरूढ़ हो प्राग्ज्योतिषपुर गये। कृष्ण ने मुरदैत्य से रक्षित उसके दुर्ग को ध्वस्त कर मुर को मार डाला। (इसीलिये कृष्ण 'मुरारि' कहलाते हैं।) अन्त में भौमासुर स्वयं युद्ध में प्रवृत्त हुआ किन्तु श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से उसका भी शिरश्छेदन कर दिया। भौमासुर की माता पृथ्वी ने कृष्ण को [illegible] स्तुति की। भौमासुर ने अनेक राजाओं से [illegible] कन्याओं को अपने यहाँ बन्दी कर [illegible] मन ही मन कृष्ण को पति रूप में [illegible] के साथ उन सबको द्वारका भिजवा दिया [illegible] देव सम्पत्ति उसे सौंपी। सत्यभामा के आग्रह से [illegible] द्वारका लाकर सत्यभामा के उद्यान में लगा दिया [illegible] सहस्र एक सौ कन्याओं से विधिवत् [illegible]

८८—रुक्मिणी की प्रेम-परीक्षा [illegible] रुक्मिणी से पूछा कि अन्य अति [illegible] भी तुमने मुझी को पति रूप में क्यों [illegible] परब्रह्म परमेश्वरत्व प्रतिपादन किया [illegible] आश्वस्त किया। (अध्याय ६०)

८९—कृष्ण की सन्तति [illegible] श्रीकृष्ण की पत्नियों में से प्रत्येक को [illegible] पत्नी रुक्मवती (रुक्मिणी के भाई [illegible]) से [illegible] हुआ। यद्यपि रुक्मी श्रीकृष्ण से वैर रखता था, तथापि [illegible]

[illegible] का विवाह [illegible] में हुआ। रुक्मी ने अपनी बहिन रुक्मिणी के [illegible] अपनी पौत्री रोचना का विवाह अनिरुद्ध से [illegible] दिया। विवाह के अवसर [illegible] रुक्मी ने बलराम से द्यूत क्रीड़ा की। एक आध बार [illegible] किन्तु रुक्मी ने [illegible] में नहीं माना तब [illegible] वध कर डाला। (अध्याय ६१)

[illegible] समागम एवं बाणासुर से कृष्ण का संग्राम दैत्यराज [illegible] ऊषा नाम की अति सुन्दरी कन्या थी। एक दिन स्वप्न में [illegible] तब उसने अपनी सखी चित्रलेखा से अनेक चित्र बनवाये [illegible] तो उसने चित्रलेखा से कहा, 'यही मेरा कान्त है'। [illegible] से अनिरुद्ध को बाणासुर की राजधानी शोणितपुर [illegible] दिया। जब बाणासुर को पता चला तो उसने अनिरुद्ध [illegible] पाकर रामकृष्ण ससैन्य शोणितपुर पहुँचे। कृष्ण [illegible] बाणासुर की ओर से शिव भी कृष्ण से लड़े। कृष्ण [illegible] शान्त कर दिया। वैष्णव ज्वर से माहेश्वर ज्वर भी [illegible] कृष्ण से बाणासुर को अभयदान देने की प्रार्थना की। [illegible] भुजाओं में से चार छोड़कर सब काट दीं और उसका दर्प-[illegible] अपने पौत्र अनिरुद्ध को उसकी वधू ऊषा सहित द्वारका [illegible]

[illegible]—[illegible] पुत्र राजा 'नृग' ब्राह्मणों को गोदान करता था। एक [illegible] करने के अपराध से उसे कृकलास (गिरगिट) का [illegible] में पड़ा था। कृष्ण के कर-स्पर्श से उसका उद्धार [illegible] लोक को चला गया। (अध्याय ६४)

[illegible]—एक बार बलराम अपने बन्धु-बान्धवों को देखने [illegible] गोपियों ने उनसे कृष्ण विषयक अनेक प्रश्न किये [illegible] से कृष्ण के प्रति अपने अनुराग को व्यक्त किया। [illegible] सन्देश सुनाकर शान्त किया। इसके उपरान्त बलराम [illegible] में विहार किया। वरुण द्वारा भेजी हुई वारुणीदेवी [illegible] ही सुवासित कर दिया। बलराम ने स्त्रियों सहित [illegible] के लिये यमुना को पुकारा। किन्तु जब यमुना ने [illegible] की नोक से उसे खींचा। (व्रज में आज भी यमुना टेढ़ी [illegible] है।) [illegible] के साथ जल-क्रीड़ा की। (अध्याय ६५)

[illegible] पौण्ड्रक वध—[illegible] बलराम व्रज में थे तो करूष देशाधिपति पौण्ड्रक ने [illegible] वासुदेव हूँ।" उस 'मिथ्या वासुदेव' पर कृष्ण ने आक्रमण किया

का अभिचार किया और माहेश्वरी कृत्या को कृष्ण पर छोड़ा। किन्तु सुदर्शन चक्र के तेज से वह कृत्यानल लौट पड़ा और उसने ऋत्विजों सहित सुदक्षिण को ही जलाकर भस्म कर डाला (अध्याय ६६)

९४—**द्विविदवध**—नरकासुर के मित्र द्विविद नामक महाबली वानर ने आनर्त देश में बड़ा उत्पात मचा रखा था। एकबार जब बलराम अपने [illegible] रैवतक पर्वत पर निवास कर रहे थे, उस समय द्विविद ने आकर उनकी रमणियों का अपमान करना और उनसे असभ्य व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। बलराम ने उस उत्पाती वानर पर अपने हल और मूसल से प्रहार किया। द्विविद ने भी शाल के वृक्ष उखाड़-उखाड़ कर उन पर भयंकर आघात करने की चेष्टा की। अन्त में बलराम ने मुष्टि-प्रहार से उसका वध कर दिया। (अध्याय ६७)

९५—**साम्ब का विवाह**—कृष्ण की पत्नी जाम्बवती से 'साम्ब' नामक पुत्र था। साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री 'लक्ष्मणा' को उसके स्वयंवर में से हरण कर लिया। दुर्योधन कर्ण आदि ने साम्ब का पीछा किया। साम्ब से कौरवों का घोर युद्ध हुआ किन्तु अन्त में वे साम्ब को [illegible] लक्ष्मणा सहित हस्तिनापुर [illegible]। जब यह समाचार द्वारका पहुँचा तो यादवों को बड़ा क्षोभ हुआ। वे कौरवों पर आक्रमण [illegible] लगे। किन्तु बलराम ने उनको [illegible] उद्धव के [illegible] हस्तिनापुर पहुँचे। उन्होंने उद्धव को कौरव सभा में भेजकर [illegible] किया। किन्तु कौरवों ने अभिमानवश उनकी उपेक्षा और अपमान किया। तब बलराम क्रुद्ध होकर अपने हल की नोक से हस्तिनापुर को उखाड़ कर [illegible] डुबोने के लिए उद्यत हुए। तब कौरव [illegible] भयभीत होकर तत्काल [illegible] लक्ष्मणा और साम्ब को आगे कर बलराम की शरण में आ गए। बलराम [illegible] लेकर [illegible]। (अध्याय ६८)

९६—**देवर्षि नारद द्वारा कृष्ण की दिनचर्या का अवलोकन और नारद का विस्मय**—[illegible] स्त्रियों से कृष्ण के विवाह का समाचार [illegible] को विस्मय हुआ और वे [illegible] कृष्ण की दिनचर्या देखने द्वारका आए। [illegible] प्रविष्ट होने पर नारद ने कृष्ण को [illegible]। कृष्ण ने नारद का यथोचित आतिथ्य किया। जब नारद ने दूसरे भवन में प्रवेश किया तो कृष्ण अपनी दूसरी [illegible] और उद्धव के साथ [illegible] खेल रहे थे। [illegible] उनसे वहाँ भी कुशल प्रश्न किया। इस प्रकार नारद एक के पीछे दूसरे [illegible] में जाते रहे और सर्वत्र उन्होंने कृष्ण को विविध कार्यों में [illegible] देखा। कहीं कृष्ण बालकों को दुलार रहे थे, कहीं स्नान कर रहे थे, कहीं [illegible] कर रहे थे, कहीं [illegible]

कृष्ण की स्तुति करने [illegible]। (अध्याय ६९)

९७—कृष्ण की दिनचर्या और जरासंध द्वारा बन्दी राजाओं के दूत का कृष्ण को संदेश—माया मनुष्य शरीर धारी परब्रह्म कृष्ण ब्राह्म मुहूर्त में उठकर सर्वप्रथम [illegible] और अविनाशी आत्मतत्त्व का चिन्तन करते। [illegible], देव ऋषि और पितृतर्पण, गोदान करते। समस्त [illegible] और सबसे अन्त में स्वयं भोजन, ताम्बूलादि [illegible] अपने रथपर आरूढ़ होकर अपनी सुधर्मा [illegible] सभा में उन बीस हजार राजाओं का दूत [illegible] समय अपने 'गिरिव्रज' नामक दुर्ग में बन्दी [illegible] कारा-मुक्त हो पुनः स्वराज्य प्राप्ति चाहते [illegible] किये जाने वाले राजसूय यज्ञ के उपक्रम की [illegible]। (अध्याय ७०)

९८—कृष्ण का इन्द्रप्रस्थ गमन [illegible] ने उद्धव के परामर्श से पहले युधिष्ठिर के [illegible] निश्चय किया, क्योंकि राजसूय यज्ञ में दिग्विजय करना [illegible] है और [illegible] हो जाता। अतः श्रीकृष्ण अपने समस्त [illegible], कुरुक्षेत्र, पांचाल और मत्स्य देश को [illegible] और युधिष्ठिरादि पाण्डवों से मिलकर प्रमुदित हुए। (अध्याय ७१)

९९—युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ का आयोजन और कृष्ण का भीमसेन द्वारा जरासन्ध का वध कराना—[illegible] राजसूय यज्ञ के लिये प्रोत्साहित होकर युधिष्ठिर [illegible] दिग् विजय के लिये भेजा। पूर्व में मगध-[illegible] भीम और अर्जुन ब्राह्मणों का वेष धारण कर गिरिव्रज-दुर्ग [illegible] था, वहाँ उन्होंने अपना वास्तविक रूप उद्घाटित [illegible]। जरासन्ध और भीमसेन सत्ताईस दिन [illegible] दोनों में से कोई भी हतोत्साह नहीं हुआ। [illegible] की दुर्जेयता को स्वीकार किया। कृष्ण ने

१ [illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible] श्रीमद्भाग० १०. ६९. २०, २३

१ [illegible] गृहीतशक्तिः।
[illegible] ॥ श्रीमद्भाग० १०. ६९. ४४

भीम को बताया कि जरासन्ध के शरीर के दो पृथक्-पृथक् अंग हैं जो 'जरा' नाम की राक्षसी द्वारा उनके जन्म के समय जोड़े गये थे। कृष्ण ने एक वृक्ष की शाखा को चीरते हुए भीम को जरासन्ध के वध का उपाय बताया। भीम ने जरासन्ध की एक टाँग अपने पैर में दबा कर दूसरी को दोनों हाथों से पकड़ कर जरासन्ध को चीर डाला। कृष्ण ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव को मगध के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया और जिन बीस हज़ार राजाओं को जरासन्ध ने बंदी कर रखा था, उनको मुक्त कर दिया। (अध्याय ७२)

१००—कृष्ण का बन्दी राजाओं को अभयदान तथा इन्द्रप्रस्थ-आगमन—कारावास से मुक्त हुए, दीन, मलीन, कृशकाय राजाओं ने अति कृतज्ञ हो भक्ति गद्‌गद स्वर में कृष्ण का स्तवन किया। कृष्ण ने उन्हें सेवकों द्वारा स्नान, क्षौरादि कराकर जरासंध-पुत्र सहदेव से राजोचित वस्त्राभूषण, भोजन, स्रक्, चन्दनादि द्वारा सम्मानित कराकर स्वदेशों को बिदा कर दिया। भीमसेन द्वारा जरासंध का वध कराकर कृष्ण भीमार्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ को चले आये। जरासंध के वध से ही कृष्ण ने युधिष्ठिर का दिग्विजय कार्य पूर्ण कराया। (अध्याय ७३)

१०१—राजसूय यज्ञ में कृष्ण की अग्रपूजा और कृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध—दिग्विजय के अनन्तर कृष्ण की अनुमति से युधिष्ठिर ने यज्ञ में ऋत्विजों का वरण किया और उन्होंने शास्त्र-विधि से युधिष्ठिर को यज्ञदीक्षा दी। युधिष्ठिर ने सर्व-सम्मति से यज्ञ में 'अग्रपूजा' के लिये श्री कृष्ण का वरण कर अतिशय भक्ति-भाव से साक्षात् ईश्वर समझ कर उनकी पूजा की। कृष्ण के अनन्य माहात्म्य और गुणों का श्रवण कर दमघोष-पुत्र शिशुपाल जल उठा। वह अपने आसन से उठकर नाना दुर्वचनों से कृष्ण की भर्त्सना और अपमान करने लगा। तब सबके समक्ष कृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से शिशु-पाल का शिरश्छेदन कर दिया। राजसूय यज्ञ का अवभृथ-स्नान हो जाने पर कृष्ण युधिष्ठिर के अत्याग्रह पर कुछ दिन इन्द्रप्रस्थ में ही रहे। (अध्याय ७४)

१०२—राजसूय के अवभृथ स्नान का महोत्सव और दुर्योधन का अपमान—राजसूय में युधिष्ठिर के बान्धवों ने विभिन्न सेवा-कार्य संभाले थे। भीमसेन ने पाकशाला का, दुर्योधन ने कोषाध्यक्षता का और कृष्णार्जुन ने आतिथ्य का कार्य सँभाला था। श्रीकृष्ण स्वयं अतिथियों के पाद प्रक्षालन का कार्य करते थे। अवभृथ स्नान में भी पुरुषों की [illegible] हुई [illegible] दानव द्वारा निर्मित अपने [illegible] [illegible] श्रीकृष्णादि के [illegible] हुए [illegible] दुर्योधन भी वहाँ आया [illegible] भ्रम हुआ [illegible] भीमसेन द्रौपदी [illegible] हँसने लगे। दुर्योधन [illegible] अपमान से [illegible] हस्तिनापुर [illegible] में युधिष्ठिर [illegible] (अध्याय ७५)

१०३—शाल्व और यादवों का युद्ध एवं कृष्ण द्वारा शाल्व का वध—शिशुपाल का मित्र शाल्व [illegible] के [illegible] था। [illegible]

निरन्तर प्रतीकार की इच्छा रखते हुए शाल्व ने शिव की आराधना की और शिव की कृपा से 'सौभ' नामक दुर्जेय विमान प्राप्त किया। उस विमान पर आरूढ़ होकर वह द्वारका पहुँचा। उसने द्वारका पर आक्रमण किया। यादवों और शाल्व में सत्ताईस दिन तक [illegible] हुआ। युद्ध में प्रमुख भाग प्रद्युम्न ने लिया और वे आहत हो गये। कृष्ण तब [illegible] इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ से लौटे नहीं थे। अपशकुनों को देखकर जब कृष्ण [illegible] तो उन्होंने द्वारका को शाल्व की माया से आवेष्टित पाया। कृष्ण [illegible] से युद्ध करने चले। कृष्ण और शाल्व में भीषण युद्ध हुआ शाल्व ने [illegible] वसुदेव को श्रीकृष्ण के सामने मारा। अन्त में कृष्ण ने गदा प्रहार से शाल्व का [illegible] सौभ नामक विमान खण्ड-खण्डकर डाला और सुदर्शन चक्र से शाल्व का [illegible] कर दिया। (अध्याय ७७)

१०४ कृष्ण द्वारा दन्तवक्त्र और विदूरथ का वध—अपने दिवंगत मित्र [illegible] शाल्व आदि का बदला लेने के लिए करूष नरेश 'दन्तवक्त्र' ने कृष्ण पर [illegible]। किन्तु कृष्ण ने अपनी कौमोदकी' गदा के सकृत् प्रहार से ही [illegible] कर दन्तवक्त्र का वध कर दिया। इसके उपरान्त भ्रातृ-शोक से [illegible] का भाई 'विदूरथ' खड्ग-हस्त होकर कृष्ण से युद्ध करने आया, किन्तु वह भी [illegible] सुदर्शन चक्र का शिकार हुआ। (अध्याय ७८)

१०५ - बलराम की तीर्थयात्रा और बलराम द्वारा सूत का शिरश्छेदन—[illegible] कौरव-पाण्डवों में युद्ध की सम्भावना देखकर किसी भी पक्ष की ओर से भाग न लेने के विचार से तीर्थस्नान के बहाने द्वारका से चले गये। अनेक तीर्थों का पर्यटन करते हुए वे नैमिषारण्य पहुँचे जहाँ ऋषिगण सत्र कर रहे थे। बलराम ने वहाँ व्यास-पीठ पर [illegible] 'रोमहर्षण' सूत को देखा। सूत ने बलराम का अभ्युत्थानादि से [illegible] नहीं किया था। अतः बलराम ने क्रुद्ध होकर कुशाओं से उसका सिर काट डाला। [illegible] हाहाकार करने और प्रार्थना करने पर बलराम ने प्रायश्चित स्वरूप [illegible] भारतवर्ष की परिक्रमा करते हुए तीर्थस्नान करना और यज्ञ विध्वंसक [illegible] राक्षस का वध करना स्वीकार किया। (अध्याय ७८)

१०६ —बलराम द्वारा बल्वल-वध और तीर्थयात्रा—जब नैमिषारण्य में यज्ञ [illegible] हुआ तो राक्षस बल्वल ने मलमूत्रादिक अपवित्र वस्तुओं की वर्षा प्रारम्भ [illegible] कर दिया। बलराम ने अपने शत्रुसंहारक हल-मुसल का आवाहन किया और [illegible] से बल्वल को अपनी ओर खींचकर क्रोध से उसके सिर पर [illegible] उसका प्राणान्त कर दिया। ऋषियों ने बलराम को दिव्य कमलों की [illegible] और आभूषण प्रदान कर उनकी स्तुति की। तदनन्तर बलराम प्रयाग, [illegible], महेन्द्रपर्वत, श्रीपर्वत, वेंकट पर्वत, काञ्चीपुरी, श्रीरंगक्षेत्र, दक्षिण मथुरा [illegible] कन्याकुमारी, अनन्तपुर तक जाकर लौटते हुए केरल, त्रिगर्त, गोकर्ण नामक [illegible] (सम्भवतः आज का सूरत) होते हुए ताप्ती, पयोष्णी आदि नदियों में [illegible] दण्डकारण्य, माहिष्मतीपुरी और मनुतीर्थ होते हुए प्रभास क्षेत्र

(द्वारका) में लौट आये । फिर यह सुनकर कि भीम और दुर्योधन [illegible] में गदा-युद्ध कर रहे हैं, बलराम उन्हें युद्ध से [illegible] किन्तु वे दोनों नहीं माने । तब दैवेच्छा समझकर [illegible] एक बार अपनी पत्नी रेवती सहित [illegible] यज्ञ कराये । यज्ञान्त स्नान कर बलराम [illegible]

१०७—**कृष्ण द्वारा ब्राह्मण (सुदामा) [illegible] निवारण**—एक जितेन्द्रिय, ब्रह्म [illegible] एक दिन उनकी पत्नी ने कहा कि "[illegible] लोग दरिद्रता का कष्ट भोग रहे हैं [illegible] उत्पन्न यादवों के स्वामी हैं । तुम बड़े [illegible] धन देंगे । वे शरणागत वत्सल हैं।" [illegible] जब उन्होंने स्त्री से कृष्ण के लिए कुछ [illegible] पड़ोस से माँगकर एक कपड़े में बाँध कर [illegible] पड़े । द्वारका पहुँचने पर तीन सैनिक गुल्मों [illegible] को पार कर ब्राह्मण देवता कृष्ण की [illegible] ब्राह्मण को दूर से ही देख कर कृष्ण [illegible] मित्र को सहर्ष भुजपाश में कस कर [illegible] मित्र को पर्यंक पर बिठा कर स्वयं पूजन [illegible] अति कृशकाय थे । उनके वस्त्र जीर्ण [illegible] सत्कार करते देख रुक्मिणी आदि विस्मित [illegible] दोनों मित्र एक दूसरे का हाथ पकड़ कर [illegible] याद करने लगे । किस प्रकार गुरुपत्नी ने [illegible] में भेजा था । और वहाँ किस प्रकार [illegible] रातभर अंधकार में भटकते रहे और फिर [illegible] ले गये । कृष्ण ने ब्राह्मण से प्रेम पूर्वक पूछा कि "[illegible]" किन्तु ब्राह्मण देवता ने वह चार मुट्ठी [illegible] चित होकर मुँह नीचा कर लिया । किन्तु [illegible]

---

१ इति संचिन्त्य मनसा गमनाय मतिं दधे ।
अप्यस्त्युपायनं किञ्चिद् गृहे कल्याणि दीयताम् ।
याचित्वा चतुरो मुष्टीन् विप्रान् पृथुकतण्डुलान्
चैलखण्डेन तान् बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम् । [illegible]

२ अथोपवेश्य पर्यंके स्वयं सख्युः समर्हणम्
उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः । [illegible]

[illegible] अधीन कर देंगे ?)[2] उस [illegible] स्वर्गोपम आनन्द लेते हुए, [illegible] कृष्ण ने अत्यन्त सत्कृत और अभि- [illegible] कृष्ण के सद्व्यवहार के विषय में [illegible] घर के समीप आये। वे प्रसन्न थे कि [illegible] दिया।[3] किन्तु उन्होंने देखा कि वह [illegible] हो गया है। अनेक नर-नारी सादर उनकी [illegible] उन्हें सादर अपने समस्त [illegible] ने उस कृष्ण प्रदत्त वैभव [illegible] प्राप्त की। (अध्याय ८०, ८१)

[illegible] श्रीमद्भागवत में कहीं उस ब्राह्मण का [illegible] चर्चा दशमस्कंध पूर्वार्ध [illegible] है)।

[illegible]—स्यमन्तपंचक तीर्थ (कुरुक्षेत्र) में कृष्ण की गोप और गोपियों से भेंट—[illegible] का एक महान् पर्व आया तो [illegible]। यह पर्व अत्यन्त माहात्म्य- [illegible]। कृष्ण ने नन्द यशोदा [illegible] गोपियों का मिलन तो अत्यन्त [illegible] प्रियजनों की भलाई के लिये [illegible] जाने से बहुत दिन हो जाने [illegible] करती थी।" यह सुनकर गोपियाँ [illegible] पर वे परब्रह्म कृष्ण को ही [illegible] कृष्ण ने युधिष्ठिर आदि स्वजनों से [illegible] एकत्र होकर आपस में त्रिभुवन-

1. [illegible]

[illegible]

श्रीमद्० १०. ८०. ३, ५, ८.

2. [illegible]

3. [illegible]

श्रीमद्० १०. ८०. २०.

कृष्ण ने कैसे-कैसे विवाह किया वह सब वृत्तान्त सुनाया। [illegible] सब अपने-अपने विवाह की मनोरञ्जक घटनाएँ द्रौपदी को सुनाई। (अध्याय ८३)

१०९ **वसुदेव का यज्ञोत्सव** कुरुक्षेत्र में उस सूर्य-पर्व में अन्यान्य [illegible] के साथ व्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ आदि ऋषिगण भी रामकृष्ण के दर्शनार्थ आये थे। श्रीकृष्ण ने उन सब का [illegible] आदरपूर्वक अभिनन्दन किया और मुनिजनों ने कृष्ण की ब्रह्म-भाव से स्तुति की। फिर देवऋण से उऋण होने के लिए वसुदेव ने उन ऋषियों को वरण कर अनेक यज्ञ किये। तीन मास नन्दादि गोपों और गोपियों के साथ कृष्ण कुरुक्षेत्र में रहे। फिर अपने पिता वसुदेव सहित द्वारका चले आये। (अध्याय ८४)

११०—**कृष्ण द्वारा देवकी-पुत्रानयन**—वसुदेव ने श्रीकृष्ण और बलराम को प्रत्यक्ष ईश्वर समझकर एक दिन उनकी स्तुति की और आत्मतत्त्व का निरूपण किया। कृष्ण ने बताया कि वसुदेव स्वयं, द्वारकावासी लोग, यहाँ तक कि समस्त चराचर जगत् भगवत्स्वरूप ही है। इस उपदेश से वसुदेव की भेद-बुद्धि नष्ट हो गई और वे [illegible] हो गये। एक दिन देवकी ने जब यह सुना कि कृष्ण और बलराम ने अपने गुरु सान्दीपनि के पुत्र को यमपुरी से भी वापस ला दिया था तो उनकी भी इच्छा हुई कि कंस द्वारा मारे गये उनके छः पुत्र भी वापस मिल जायें। देवकी ने जब रामकृष्ण को अपनी कामना बताई तो दोनों भाई [illegible] सुतल [illegible] स्मर, उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतंग, क्षुद्रभृत् और घृणी [illegible] को लेकर द्वारका [illegible] और उन्हें उनकी माँ को [illegible] देवकी [illegible] वात्सल्य [illegible] कृष्णानन्द का [illegible] देवलोक [illegible] कृष्ण की [illegible] (अध्याय ८५)

१११ **कृष्ण की अनुमति से अर्जुन द्वारा सुभद्राहरण**—[illegible] अर्जुन तीर्थयात्रा के निमित्त प्रभास [illegible] पहुँचे। [illegible] सुभद्रा को [illegible] दुर्योधन के [illegible] अर्जुन [illegible] चाहते थे। अर्जुन [illegible] द्वारका पहुँचे। [illegible] अर्जुन [illegible] सुभद्रा का [illegible] अर्जुन [illegible] का [illegible] हो [illegible] सुभद्रा [illegible] देवयात्रा-महोत्सव के अवसर पर [illegible] होकर [illegible] अर्जुन, कृष्ण और [illegible] की [illegible] अनुमति से सुभद्रा को हरण [illegible] बलराम को यह [illegible] हुआ तो वे [illegible] क्रुद्ध हुए। किन्तु कृष्ण ने अनुनय विनय करके उन्हें शान्त कर दिया। फिर बलराम ने रथ, [illegible] दास-दासी आदि भी दहेज [illegible] (अध्याय ८६)

[illegible] (जनक) भी उनका अनन्य भक्त था। कृष्ण ने उन दोनो पर ही अनुग्रह करने की इच्छा से रथारूढ़ हो कर विदेह देश मे पदार्पण किया। अपने इष्टदेव को आये देखकर श्रुतदेव और बहुलाश्व दोनो ने ही कृष्ण को दण्डवत् प्रणाम किया। कृष्ण ने उन दोनो के युगपद् निमंत्रण को स्वीकार किया तथा दो रूप धारण कर उनका भक्ति पूर्ण आतिथ्य ग्रहण किया। [illegible] अनुग्रह करते हुए कुछ दिन मिथिलापुरी में रह कर कृष्ण द्वारका आये। [illegible]

[illegible]—**वेद-स्तुति**—परीक्षित् ने शुकदेव से प्रश्न किया कि सदसत् से परे, निर्गुण [illegible] गुणमयी श्रुतियाँ कैसे कर सकती हैं? इस प्रश्न के उत्तर में शुक ने [illegible] नारायण और नारद के संवाद रूप मे एक गाथा सुनाई कि पूर्वकाल में जन-[illegible] निवासी ब्रह्मा के मानस पुत्रों ने ब्रह्म-सत्र का अनुष्ठान किया। वहाँ सनन्दन को वक्ता [illegible]। सनन्दन ने कहा कि जिस प्रकार सोये हुए सम्राट् को प्रातःकाल होने पर [illegible] सुयश गान कर उद्बुद्ध करते हैं उसी प्रकार स्वरचित निखिल प्रपंच को [illegible] अपने में लीन करके सोये हुए परमात्मा को श्रुतियाँ उनका प्रतिपादन करने वाले [illegible] द्वारा जगाती हैं। श्रुतियाँ कहती हैं कि हम कभी तो माया के साथ क्रीड़ा [illegible] और कभी स्वस्वरूप में स्थित परब्रह्म परमेश्वर का प्रतिपादन करती हैं। ब्रह्म ही [illegible] विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के विषय में सगुण (नारायण) रूप से उत्प्रेक्षा ([illegible] संकल्प) करता है। वही जगत् की मूल कारण भूतमाया का निरास करता है। [illegible] है।[1] (अध्याय ८७)

[illegible]४—**शंभुमोचन (वृकासुर वध)**—परीक्षित् ने शुकदेव से शिव और विष्णु [illegible] में प्रश्न किया तो शुक ने बताया कि शिव तो सगुण एवं त्रिविध अहंकार [illegible] है किन्तु विष्णु प्रकृति से परे, निर्गुण है। विष्णु का भजन करने वाला [illegible] है। एक बार भगवान् शिव वृकासुर को वरदान देकर स्वयं संकट ग्रस्त [illegible]। उस समय विष्णु ने उनकी रक्षा की। नारद के उपदेश से वृकासुर ने शिव की [illegible] कर उनसे यह वर ले लिया था कि मैं जिस-जिसके सिर पर हाथ रख दूँ वही मर [illegible]। शिव ने यह वर दे दिया तो उस असुर ने सुंदरी पार्वती को हरण करने और वर की [illegible] परीक्षण के लिए शिव के सिर पर ही हाथ रखना चाहा। शिव को समस्त [illegible] जब कहीं शरण नहीं मिली तो वे विष्णु के दिव्य वैकुण्ठ में पहुँचे। विष्णु ने उनको वृकासुर से बचाया। उन्होंने एक ब्रह्मचारी का वेष धारण कर वृकासुर से कहा कि [illegible] शिव की इस बात का कोई विश्वास नहीं है कि उन्होंने तुम्हें जो वर दिया है

---

[1] [illegible] आद्यिन्तनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो।
[illegible] अखिलां चक्रे पुरः शास्तिता॥
[illegible] शुका कुलायं यथा।
[illegible] हरिम्॥ श्रीमद्. १०. ८७. ५०.

उनमें भस्म करने की शक्ति है भी या नहीं। अतः तुम स्वयं अपने सिर पर हाथ रख कर आजमाओ। बुद्धि-भ्रम से उस दैत्य ने ज्योंहि अपने सिर पर हाथ रखा, उसका मस्तक फट गया और वह तत्काल पंचत्व को प्राप्त हो गया। शिव भय-मुक्त हुए। (अध्याय ८८)

११५—भृगुकृत त्रिदेव परीक्षा—सरस्वती नदी के तट पर कुछ ऋषिगण यज्ञ कर रहे थे। उनमें ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र में सर्वश्रेष्ठत्व के सम्बन्ध में विवाद हुआ। परीक्षा के लिये उन्होंने ब्रह्मा के पुत्र भृगु को नियुक्त किया। भृगु सर्वप्रथम ब्रह्मा के निकट गए। उन्होंने ब्रह्मा को प्रणाम नहीं किया। अतः ब्रह्मा क्रुद्ध हो गये। तदनन्तर वे रुद्र के निकट गये और उनके स्वभाव की परीक्षा लेने के लिये उनके प्रति उद्दंडतापूर्ण दुर्वचन कहने लगे। शिव क्रुद्ध होकर उन पर त्रिशूल से प्रहार करने उद्यत हो गये। अन्त में भृगु वैकुण्ठ में विष्णु के समीप गये। जाते ही उन्होंने विष्णु के वक्षःस्थल पर पाद-प्रहार किया। किन्तु विष्णु ने फिर भी उन का सम्मान करते हुए उनकी स्तुति की। तब से विष्णु का ही सर्वाधिक महत्त्व प्रतिष्ठित हुआ। (अध्याय ८९)

११६—कृष्ण द्वारा अर्जुन को स्वस्वरूप-दर्शन एवं ब्राह्मण के मृत पुत्र का आनयन—एक बार द्वारकावासी किसी ब्राह्मण का पुत्र जन्मते ही पृथ्वी का स्पर्श पाते ही मर गया। तब उसने बालक के शव को उग्रसेन के द्वार पर जाकर डाल दिया और कहने लगा कि इस पापाचारी राजा के कर्म-दोष से ही मेरे बालक की मृत्यु हुई है। जब उस ब्राह्मण के नौ बालक मर गये तब कृष्ण के समीप बैठे अर्जुन ने उसके मृत पुत्रों को लाने की प्रतिज्ञा की। किन्तु यम की संयमनीपुरी तक जाने पर भी उनका कुछ पता न लगा सकने के कारण अर्जुन प्रतिज्ञा-भंग के क्लेश से अग्नि में प्रविष्ट होने लगे। तब कृष्ण ने उन्हें रोका और अपने साथ उन्हें अत्यन्त दुर्गम अनन्त (शेष) लोक में ले गये। वहाँ शेष-शय्या पर विराजमान आदिदेव विष्णु को देखा। उन्होंने कृष्णार्जुन से कहा कि तुम दोनों ने मेरी कलाओं से पृथ्वी पर नर-नारायण के रूप में अवतार लिया है। तुम्हें देखने के लिये ही मैंने [illegible] [illegible] [illegible] पुत्र दिये [illegible] [illegible] (अध्याय [illegible])

११७—द्वारका में कृष्ण [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्राप्त कर लिया। [illegible] [illegible] काम की [illegible] सिद्ध कर दिया। (अध्याय [illegible])

[illegible] की भावना का कृष्ण-लीला का भागवतीय स्वरूप स्पष्ट हो सके जैसा कि पहले [illegible] किया जा चुका है कृष्ण भक्त कवियों का मन विशेष कर कृष्ण की व्रज लीला में ही रमा है षडैश्वर्य-सम्पन्न [illegible] रकावीर-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन सूर आदि कवियों ने किया अवश्य है किन्तु केवल श्रीमद्भागवत की महती भक्ति-सरणि का सादर अनुगमन [illegible] श्रीमद्भागवत को लोक-भाषा में सर्व-सुलभ बनाने के लिए।

[illegible] लीलाओं का ध्यान-पूर्वक अध्ययन करने से हम निम्न-[illegible] हैं –

निष्कर्ष

(१) [illegible] उद्देश्य भक्त को दिव्य आनन्द में मग्न करना है। [illegible] मनोरम और नैसर्गिक बाललीलाओं से प्रमुदित होते हैं। [illegible] गोप-बालक हैं।

(२) [illegible] उद्देश्य अगाध प्रेमा भक्ति का उद्रेक करना है, जिसे [illegible] निषेधों का अतिक्रमण कर सर्वात्मना कृष्णार्पण [illegible] प्रमुख भाग लेने वाली व्रज की गोपियाँ हैं।

(३) [illegible] में कुछ प्रेम-लीलाओं को छोड़ कर बलराम प्रायः [illegible] श्रीमद्भागवत के वासुदेव (कृष्ण) के-साथ संकर्षण (बलराम) का [illegible] है। [illegible] का व्यक्तित्व स्वतंत्र रूप से भी बहुत प्रभावशाली [illegible] है।

(४) [illegible] का प्रत्येक कृष्णपक्षीय पात्र कृष्ण को परब्रह्म परमेश्वर मानता है, [illegible] में नरलोक-मनोरम सगुण और साकार लीला-विग्रह [illegible] है।

(५) [illegible] भक्त की रक्षा के लिए भगवान् सब कुछ करने के लिए [illegible] लीलाएँ इसका प्रमाण हैं।

(६) [illegible] कत्व सर्वत्र प्रतिपादित है और वैष्णव-सिद्धान्त एवं [illegible] में श्रेष्ठतर बताया गया है। विशेषकर शैव-सिद्धान्त [illegible] बताया गया है।

लीला के उपकरण

यद्यपि [illegible] का उल्लेख हो चुका है तथापि उनके अन्तर्गत [illegible] उपकरणों के स्वरूप का स्पष्टीकरण आवश्यक [illegible] हिन्दी-कृष्ण-काव्य में श्रीमद्भागवत के भक्ति-[illegible] है। श्रीमद्भागवत में प्रत्येक कृष्ण-लीला का एक [illegible] जाता है और कृष्ण लीला के गोपी, यमुना आदि

उपकरण अपने स्थूल आधिभौतिक रूप के मूल में एक सूक्ष्म, दिव्य, आध्यात्मिक रूप भी रखते हैं। वास्तव में वही उनका पारमार्थिक रूप है। इस मूल बात को समझे बिना श्रीमद्भागवत की कृष्ण-लीला एक नितान्त प्राकृत व्यापार ही मालूम होगी। अतः यहाँ, और आवश्यकतानुसार आगे भी ऐसे विशिष्ट तत्त्वों का विवेचन किया जायगा।

व्रज—(गोकुल) श्रीकृष्ण की नित्य सन्निधि और लीला विहार के कारण श्रीमद्भागवत में व्रजभूमि को अत्यन्त पुनीत और श्लाघनीय माना गया है।[1] व्रजभूमि को धन्य माना गया है क्योंकि वहाँ शिव और कमला के लिए भी जिनकी चरणरज अलभ्य है वे कृष्ण वेणुवादन और गोचारण करते हुए विहार करते हैं। व्रजभूमि में किसी वन में और विशेषकर गोकुल में जन्म पाने के लिए देवता भी लालायित रहते हैं। वे व्रजवासियों की चरण रज से अपने को पवित्र करना चाहते हैं, क्योंकि गोकुलवासियों के परम सुहृद् श्रीकृष्ण वहाँ निवास करते हैं।[2] 'व्रज' शब्द श्रीमद्भागवत में 'गायों के समूह' और 'स्थान विशेष' दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।[3] कुछ स्थलों पर 'व्रज' शब्द का प्रयोग 'व्रजवासियों' के अर्थ में भी हुआ है।[4] अनुमान होता है कि पहले मथुरा के सामने यमुना के दूसरे तट पर एक विशाल सघनवन और शाद्वल-भूमि थी। वहीं पर नन्दादि गोपगण अपने गौ समूह (गोकुल) के साथ रहते थे। उसी बृहद् वन को कालान्तर में 'गोकुल' नाम से पुकारा गया।[5] व्रज की सीमा पहले 'गोकुल' तक ही विस्तृत थी। मथुरा नगरी तो स्पष्ट ही व्रज सीमा से बाहर थी।[6] यहाँ तक कि वृन्दावन को भी व्रज का निकटवर्ती एक 'सुन्दर नव कानन' कहा गया है।[7] जब गोकुल पर कंस द्वारा नित्य नये अत्याचार होने लगे तो किसी महान् अनिष्ट के होने से पूर्व ही व्रज वासियों ने व्रज को परित्याग कर वृन्दावन जाने का

१ अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुलम् अहो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम्।
यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः स्वजन्मना चंक्रमणेन चाञ्चति॥ — श्रीमद्भाग० १. १०. २६.

२ श्रीमद्भागवत १०. ४४. १३ तथा १०. १४. ३४.

३ व्रजान् स्वान् स्वान् समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः। — श्रीमद्भाग० १०. ११. ३०.
स गोव्रजोऽत्यात्मसुतोऽभवत्। — श्रीमद्भाग० १०. १३. ४०.
ततः विदूराच्चरतो गावो वत्सान् उपव्रजम्।
गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम्॥ — श्रीमद्भाग० १०. १३. २९.

४ नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यममन्त्रयन्। — श्रीमद्भाग० १०. ११. २२.
व्रजस्य सत्त्वजस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते॥ — श्रीमद्भाग० १०. १३. ३६.

५ गोपवृद्धा महोत्पातानुनुभूय बृहद्वने।
नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यममन्त्रयन्॥ — श्रीमद्भाग० १०. ११. २१.

६ यदि कंसाद् बिभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय। — श्रीमद्भाग० १०. ३. [illegible]

७ वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम्।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम्॥ — श्रीमद्भाग० १०. ११. २८.

समस्त मथुरा-मण्डल आता है और आजकल व्रज चौरासी कोस में विस्तारण माना गया है। अलीगढ़-मण्डल व्रज की कोर (कोन) है।

मथुरा—श्रीकृष्ण की जन्मभूमि होने का सौभाग्य मथुरापुरी को प्राप्त है। मथुरा में कृष्ण का नित्य सान्निध्य रहता है।[2] इसीलिए मथुरा भी सप्त पुण्य पुरियों में [illegible] है। [illegible] मथुरा का विस्तृत माहात्म्य वर्णित है। उसमें कहा गया है कि [illegible] निवृत्ति हो जाती है वैसे ही मथुरा के दर्शनमात्र से [illegible] तथा स्कन्दपुराण में मथुरा का नाम 'मधु-[illegible] 'माथुर' और 'शूरसेन' देशों की राजधानी [illegible] यदुवंशीय अन्य राजाओं की राजधानी भी [illegible] की कंसवधादि अन्य अनेक लीलाओं के [illegible] बन गयी है।

वृन्दावन अथवा वृन्दा[illegible] की विविध बाल एवं किशोर-लीलाओं के [illegible] वृन्दावन [illegible]। श्रीकृष्ण के अधिकांश लीला विहारों [illegible] वृन्दावन का माहात्म्य मथुरा से भी अधिक है। वृन्दावन [illegible] सौन्दर्य। यह सदा सघन वृक्षों, लता-कुंजों और [illegible] रहता है। वृन्दा (तुलसी) कृष्ण-प्रिया है, [illegible] श्रीमद्भागवत में वृन्दावन के प्राकृतिक सौन्दर्य [illegible] सारांश यह है कि वृन्दावन में झरनों [illegible] दब जाता था। वहाँ की भूमि प्रपातों से [illegible] और अत्यन्त हरित तृणों से आच्छादित [illegible] आर्द्रता और वहाँ उगे हुए तृणों की [illegible] सकती थी। वहाँ चित्र विचित्र पशु-पक्षी,

1 [illegible]
[illegible] श्रीमद्भागवत १०, ११, ३३
[illegible]
[illegible] श्रीमद्भागवत १०, ११, ३६
2 [illegible] श्रीमद्भागवत १०, १, २८
3 [illegible]
[illegible]
4 [illegible]
5 [illegible]
6 [illegible]
7 [illegible]
[illegible] श्रीमद्भागवत १०, २०

सुशोभित रहते थे। मयूर, क्रौंच, कोकिल, सारसादि कलरव करते रहते थे। समस्त कृष्णवन शीतल चन्द्रज्योत्स्ना से रंजित रहता था। उसके वन-प्रान्त मधुबन-वात के स्पर्श से शीतल मन्द पवन की गति से हिलते रहते थे। लता-द्रुम सदैव सुन्दर सुरभित पुष्पों से मण्डित रहते थे।[1]

अपनी उपर्युक्त विशेषताओं के कारण वृन्दावन में ग्रीष्म-काल में भी वसन्त-ऋतु ही दिखाई देती थी। इसलिए श्रीकृष्ण ने बलराम सहित गोचारणादि के लिए वृन्दावन को चुना था।[2] श्रीकृष्ण के चरण चिह्नों से अपूर्व शोभा प्राप्त करने के कारण गोपियों के विचार से तो वृन्दावन भूलोक की कीर्ति सर्वत्र फैला रहा है।[3] श्रीकृष्ण के निवास के कारण वृन्दावन के वातावरण से क्रोध, लोभ, द्वेषादि की निवृत्ति हो गई थी। और नैसर्गिक वैर रखने वाले प्राणी भी परस्पर प्रेम से रहते थे।[4] वृन्दावन में अनेक लोक प्रसिद्ध क्रीड़ाएँ करते हुए कृष्ण और बलराम वहाँ की नदी, पर्वत-कन्दरा, कुंजवन और सरोवरों में विहार करते थे।[5] उसी निसर्ग-सुन्दर वृन्दावन में कृष्ण बलराम एवं अन्य गोप बालकों के साथ गो-चारण करते हुए वेणु-वादन करते थे।[6]

यमुना—व्रज में प्रवहमान कलिंद-नन्दिनी यमुना कृष्ण-लीला का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपकरण है। जन्म से ही कृष्ण और यमुना का सम्बन्ध सुदृढ़ है। कृष्ण के जन्म के थोड़ी ही देर बाद वसुदेव उन्हें यमुना को पार करके नन्द के गोकुल में ले गये। वर्षा से बढ़ी हुई यमुना ने भी उन्हें मार्ग दिया।[7] गोकुल भी यमुना तट पर ही स्थित है। कृष्ण का शैशव यमुना के पुलिन-प्रदेश पर गोप बालकों के साथ विविध क्रीड़ाएँ करते हुए व्यतीत हुआ। कंस के अत्याचारों से पीड़ित होकर जब गोपगण गोकुल से वृन्दावन आये तो बलराम और

---

१ श्रीमद्भागवत, १०, १८, १—८; १०, २१, २१.

२ व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया।
ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयाञ्छरीरिणाम्॥
स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः।
यत्रास्ते भगवान्साक्षाद् रामेण सह केशवः॥ — श्रीमद्० १० १८, ३, ४.

३ वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि।
गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम्॥ — श्रीमद्० १०, २१, १०

वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः। — श्रीमद्० १०, २१, ५.

४ यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन्नृमृगादयः।
मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम्॥ — श्रीमद्० १०, १३, ६०.

५ एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने।
नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च॥ — श्रीमद्० [illegible]

६ कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्गद्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम्।
मधुपतिरवगाह्य चारयन्गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम्॥ — श्रीमद्० १०, २१, २

७ मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला।
भयानकावर्तशताकुला नदी मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः॥ — श्रीमद्० १०, ३, [illegible]

को [illegible] बालकों के साथ [illegible] के सर्वोत्तम स्थान के रूप में चुना। वहाँ की बालुका कोमल और स्वच्छ था। वहाँ हरे भरे वृक्ष थे [illegible] के सुवास से आकर्षित भ्रमरों का गुंजन और पक्षियों का कलरव होता रहता था।[2] कृष्ण बलराम अपने गो वत्स को यमुना-तट [illegible] [illegible] [illegible]।[3] ब्रजवासियों के लिए यमुना केवल एक रमणीय जलाशय ही नहीं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का साधन है। कालियनाग के रहने के कारण जब यमुना का [illegible] [illegible] और उसके पीने से ब्रजवासी गो-गोपगण मृतप्राय हो गये तो श्रीकृष्ण [illegible] [illegible] को [illegible] भगाया और यमुना का जल शुद्ध किया।[4] कृष्ण ने गोप-कुमारि-[illegible] [illegible] [illegible] लीला भी उन कुमारियों के यमुना में नग्न स्नान के विरोध-स्वरूप की थी।[5] [illegible] के नग्न-स्नान से वरुणदेव का अपमान होता है। यमुना में नग्न-स्नान का विरोध [illegible] [illegible] ने यमुना के प्रति अपनी पूज्यबुद्धि का प्रकाशन किया। कृष्ण की [illegible] [illegible] [illegible]-लीला के उद्दीपन विभाव के रूप में यमुना का महत्त्व है। यमुना [illegible] [illegible] [illegible], रजत-कणाकीर्ण मनोहर पुलिन-प्रदेश ही रास-लीला की रंगस्थली है।[6] [illegible] [illegible] का सबसे अधिक महत्त्व श्रीमद्भागवत में इसे कृष्ण-पत्नी 'कालिन्दी' [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रदान किया गया है। कृष्ण की आठ प्रमुख महिषियों में एक कालिन्दी भी है।[7] इस प्रकार कृष्ण-प्रिया होने के कारण कृष्ण-भक्ति के वैष्णव सम्प्रदाय में [illegible] की बड़ी भारी मान्यता है। श्रीवल्लभाचार्य के 'यमुनाष्टक' में यमुना की [illegible] [illegible] गाई गई है।[8]

[illegible] गोवर्धन—ब्रजस्थित गोवर्धन पर्वत ब्रजवासियों और उनके गोधन के [illegible] [illegible] [illegible] है। श्रीमद्भागवत के इन्द्रयज्ञभंग प्रसंग में श्रीकृष्ण ने गोवर्धन को स्वयं [illegible] [illegible] [illegible] है।[9] अपने 'गोवर्धन' नाम को सार्थक करते हुए यह पर्वत न केवल

---

1. [illegible] [illegible] [illegible]नाम्पुलिनानि च।
[illegible] [illegible] [illegible] राममाधवयोर्नृप ॥ — श्रीमद्० १०. ११. ३६.

2. [illegible] [illegible] [illegible]स्याः स्वकेलिसम्पन्मृदुलाच्छवालुकम्।
[illegible] [illegible] [illegible]द्विजकुलप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥ — श्रीमद्० १०. १३. ५.

3. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]चारयन्तौ स्वकैः। — श्रीमद्० १०. ११. ४१.

4. श्रीमद्भागवत १०. १६.

5. [illegible] [illegible] [illegible]स्ना व्रतमावर्तताद् देवहेलनम् ॥ — श्रीमद्० १०. २२. १९.

6. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]र्मिभिर्मदवालुकम्।
[illegible] [illegible] [illegible]आमोदवायुना ॥ — श्रीमद्० १०. २९. ४५

7. [illegible] [illegible] [illegible] वसामि यमुनाजले।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आवदन्मुकुन्दर्शनम् ॥ — श्रीमद्० १०. ५८. २२.
[illegible] [illegible] सुमुहूर्तके ऊर्जिते।
[illegible] [illegible] परममंगलम् ॥ — श्रीमद्० १०. ५८. २९.

8. [illegible] [illegible] [illegible]सिद्धिहेतुं मुदा। आदि।

9. [illegible] [illegible] [illegible] रूपिणमाद्रद् बृहद्वपुः। — श्रीमद्० १०. २४. ३५.

हरित तृण, जल, कन्दमूल, फलों और कन्दराओं से 'गोधन' का संवर्धन करता था अपितु इन्द्र कोप के कारण जल और उपलवृष्टि से नष्ट होते हुए ब्रज का इसने [illegible] भी धारण किया था। इसीलिए गोवर्धन पर्वत का नाम 'गोमध्य' भी पड़ गया। श्रीकृष्ण-सेवकों मे गोवर्धन को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है।[1] श्रीकृष्ण ने इन्द्र की पूजा का तिरस्कार करके गोवर्धनाचल की पूजा का प्रारम्भ किया।[2] इसी से कृष्ण-भक्ति में गोवर्धन के माहात्म्य का सहज अनुमान हो सकता है।

गौएँ—भारतीय संस्कृति में गौ का स्थान बड़ा ऊँचा है। गौ को माता के समान पूजनीय माना गया है। गौ मे समस्त लोकों की स्थिति और देवताओं का अखण्ड निवास परिकल्पित किया गया है। जब पृथ्वी पर असुरों के अत्याचार बढ़ते हैं तब वह गो-रूप-धारिणी होकर ही जगन्नियन्ता से अपने उद्धार के लिए प्रार्थना करती है। अनेक पुराणों से इसकी पुष्टि होती है।[3] भगवान् के अवतार के प्रमुख हेतुओं में गो-ब्राह्मण हितार्थ भी परिगणित होता है। श्रीकृष्णावतार के साथ गौ ने और भी अधिक समादर और महत्त्व प्राप्त किया और वह भारतवर्ष मे राष्ट्रीय भावबिन्दु की भाँति प्रतिष्ठित हो गई। श्रीकृष्ण का बाल और किशोर जीवन गौओं के साथ ही बीता। गौओं की सेवा शुश्रूषा, उन्हें चराना, दुहना, अलंकृत करना, उनके बछड़ों के साथ क्रीड़ा करना सदा उन्हें प्रगाढ़ प्रेम करते हुए, उनका संवर्धन करना, श्रीमद्भागवत की दशमस्कन्धीय लीलाओं में समर्थित है।[4] हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों ने इस 'गोपाल' कृष्ण का आदर्श श्रीमद्भागवत से ही ग्रहण किया है।

नन्द अर्थात् गो[illegible] [illegible] गोपियाँ श्रीकृष्ण-[illegible] कृष्ण-काव्य का [illegible] जायगा। यहाँ [illegible] एवं गोचारण [illegible] के विषय में किंचित् [illegible]

---

१ हन्तायमद्रि[illegible]
मानं तनोति [illegible]

२ तस्माद्गवां [illegible]
य इन्द्रयागसं[illegible]

३ भूमिर्दृप्तनृप[illegible]
आक्रान्ता भूरि[illegible]
गौर्भूत्वाश्रुमुखी [illegible]
उपस्थितान्तिके [illegible]

४ श्रीमद्भाग० [illegible]
अन्यत्र भी—
कुट्मिल[illegible]
मधुरमिरनाद [illegible]

क्रीडाओं से नन्द और उनकी पत्नी यशोदा को आह्लाद-प्रदान करते रहे। इस बाल-लीला के गान में सूर ने अपनी काव्य-प्रतिभा का जैसा चमत्कार दिखाया है उसके परिचय की [illegible] नहीं है।

नन्द ने अपने गोकुल में श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव बड़े ही धूमधाम से मनाया। नन्द ने [illegible] हुए अन्य गोपों को इस प्रसन्नता के अवसर पर वस्त्र, आभूषण और [illegible] दान कीं।[1] नन्द और कृष्ण के पिता वसुदेव में परममैत्री थी और वे परस्पर मिलते रहते थे।[2] नन्द एवं ब्रजवासी अन्य गोप श्रीकृष्ण में अत्यन्त स्नेह रखते हैं। श्रीकृष्ण उनके प्राणाधार हैं, वे पूर्णतया कृष्णाश्रित हैं। जब श्रीकृष्ण कालियदह में सर्प-ग्रस्त हो [illegible] नन्दादि गोपगण भी उनके पीछे कुण्ड में घुसने लगे और श्रीकृष्ण की प्राण-रक्षार्थ [illegible] होते हैं।[3] नन्दादि गोपगण श्रीकृष्ण के अप्राकृत, अद्भुत कर्मों को देखकर परम विस्मित रहते थे। अन्य गोपगण श्रीकृष्ण की विचित्र लीलाओं के विषय में नन्द से वार्तालाप करते। श्रीकृष्ण का गोपों के प्रति आत्यन्तिक प्रेम था किन्तु गोपगण उनके [illegible] के विषय में अनभिज्ञ थे और विस्मय-चकित रहते थे।[4] एक बार जब नन्द यमुना में स्नान कर रहे थे तो वरुण का एक दूत उन्हें पकड़ कर अपने स्वामी वरुण के समीप ले गया। गोपगणों के क्रंदन से श्रीकृष्ण वास्तविकता जानकर तुरन्त वरुण के समीप पहुँचे। वरुण ने उनकी अभ्यर्थना की। श्रीकृष्ण तब नन्द को सकुशल ब्रज में लाये। नन्द ने अन्य गोपों से श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व की चर्चा की। और गोपों ने उन्हें साक्षात् ईश्वर समझा।[5] श्रीकृष्ण ने गोपों पर अनुग्रह कर उन्हें भी अपना अज्ञानातीत धाम और फिर [illegible] का दृश्य दिखाया जिसे देख कर वे परमानन्दित एवं विस्मित हुए।[6] गोवर्धन धारण के समय भी गोपों और नन्द में श्रीकृष्ण के अतिप्राकृत व्यक्तित्व के सम्बन्ध में बातचीत हुई थी और नन्द ने गर्गाचार्य के कथन के अनुसार श्रीकृष्ण का ईश्वरत्व प्रतिपादित कर उनकी शंका निर्मूल की थी।[7]

कृष्ण के प्रियतम सखा गोप-बालकों का कृष्ण की बाल-लीला में बड़ा ही महत्त्व है। इनके सहयोग से लीला में एक विचित्र रस की सृष्टि होती है। इनके अभाव में श्रीकृष्ण

1 [illegible] महामनाः। इत्यादि. श्रीमद्० १० ५.
2 [illegible] १०, ८, १६–२२.
3 [illegible] १०, १६, २२, २३.
4 [illegible] १०, २६.
5 [illegible] दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम्।
[illegible] विस्मितोऽब्रवीत्॥
[illegible] गोपास्तमीश्वरम्।
[illegible] ईश्वरः॥ श्रीमद्० १०, २८, १०, ११.
6 [illegible] १०, २८, ११–१७.
7 [illegible] १०, २६.

की वत्सचारण, गो-चारण, वन-भोजन, वन-विहार, मल्ल-क्रीड़ा आदि स्वाभाविक बाल-लीलाओं की कल्पना ही नहीं की जा सकती। अनेक विचित्र-विचित्र रूप-देहधारी दैत्यों का वध श्रीकृष्ण ने अपने सखाओं के साथ क्रीड़ा करते हुए उनके सान्निध्य में ही किया।[1] सूर आदि कवियों ने ग्वाल-बालों को श्रीकृष्ण के साथ आत्मसात् कर जिस सख्यभाव से उनको चित्रित किया है उसका प्रेरणा-स्रोत श्रीमद्भागवत ही है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण-बलराम के खेल के साथियों में 'श्रीदामा', 'सुबल' तथा 'स्तोककृष्ण' का एक स्थान पर, तथा 'श्रीदामा', 'वृषभ' और 'भद्रसेन' का दूसरे स्थान पर उल्लेख है।[2] श्रीकृष्ण और बलराम इन गोप-बालकों के दो दल बना कर पीठ पर चढ़ने-चढ़ाने आदि के विविध खेल खेलते थे। और स्वयं कृष्ण पराजित होते थे।[3] गोप-सखाओं के साथ ग्रीष्म-ऋतु में गोचारण करते हुए श्रीकृष्ण वृक्षों की सघन छाया में विश्राम करते थे। इस प्रसंग में श्रीमद्भागवत में एक स्थल पर कृष्ण ने अपने दस सखाओं को एक साथ सम्बोधित करते हुए वृक्षों के महदुपकार की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया है। उनके नाम हैं—
(१) स्तोककृष्ण (२) अंशु (३) श्रीदामा (४) सुबल (५) अर्जुन
(६) विशाल (७) ऋषभ (८) तेजस्वी (९) देवप्रस्थ और (१०) वरूथप।[4]
सूर आदि कवियों ने अपने पदों में 'श्रीदामा' और 'सुबल' का उल्लेख प्रायः किया है।[5]

यशोदा—कृष्ण-काव्य में वात्सल्य रस का सब से बड़ा 'आश्रय' यशोदा है। विश्व-साहित्य में कदाचित ही यशोदा के समकक्ष वात्सल्य के किसी अधिष्ठान की सृष्टि हुई हो। [illegible] श्रीमद्भागवत [illegible] अपनी [illegible] यशोदा [illegible] है—

---

१ [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

४ [illegible]

५ [illegible]

रहती है।[2] जब श्रीकृष्ण यमुना में कालियनाग के पाश में ग्रस्त थे तो पता पाकर यशोदा तत्काल वहाँ पहुँच गई तथा कालिय ह्रद में प्रवेश करने लगी। तब गोपियों ने बलात् उन्हें रोक लिया।[3] यशोदा अपने पालित पुत्र श्रीकृष्ण और बलराम की [illegible] को [illegible] अपनी माता रोहिणी [illegible] और कृष्ण [illegible] एक [illegible] करते हैं।[4]

[illegible] है, जहाँ वह [illegible] इस प्रकार श्रीमद्भागवत में यशोदा [illegible] कृष्ण-भक्त कवियों के लिए [illegible] है।

षड्ऋतु [illegible] की [illegible] दृष्टि से [illegible] बहुत प्रभावित करती हैं। इसीलिए विश्व के [illegible]— विशेषकर [illegible] (Tropical Zone) के [illegible] साहित्य में ऋतु सम्बन्धी साहित्य [illegible] में पाया जाता है। प्राचीन [illegible] साहित्य में षड्ऋतु वर्णन पर [illegible] सामग्री आलम्बन और उद्दीपन दोनों विभावों के रूप में पाई जाती है। श्रीमद्भागवत में इसे दोनों रूपों में षड्ऋतु वर्णन प्राप्त होता है। किन्तु विशेषतया उसका उद्देश्य आध्यात्मिकता की कमनीय पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना है।[8] वर्षा और

---

1 [illegible] — श्रीमद्भा० १० [illegible]

2 श्रीमद्भागवत [illegible]

3 श्रीमद्भागवत [illegible]

4 श्रीमद्भागवत [illegible]

5 श्रीमद्भागवत [illegible]

6 श्रीमद्भागवत [illegible]

7 [illegible] — श्रीमद्भा० १० [illegible]

8 [illegible] — [illegible] में उद्धृत पृ० [illegible]

शरद्ऋतु का तो बहुत ही मनोरम वर्णन श्रीमद्भागवतकार ने एक पृथक् अध्याय में किया है।[1] जिसका अनुकरण गोस्वामी तुलसीदास ने किया है। शरद्ऋतु के मनोहारी वातावरण में ही श्रीकृष्ण को रासलीला का उपक्रम होता है।[2] हिन्दी के कृष्ण भक्ति साहित्य में वर्षा, शरद् और वसन्तकाल में गोपियों के साथ कृष्ण की विविध प्रेम लीलाओं का आधार श्रीमद्भागवत का ऋतु वर्णन ही है।[3]

२—श्रीकृष्ण की अलौकिक रूप माधुरी

भारतीय साहित्य में श्रीकृष्ण का सर्वांग सुन्दर व्यक्तित्व कुछ ऐसी असाधारण भावभूमि पर चित्रित हुआ है कि कवि द्वारा सौन्दर्य की जितनी कल्पना की जा सकती है, श्रीकृष्ण के वास्तविक रूप वर्णन में वह सब अपर्याप्त और असत्य ही सिद्ध होती है। जिसने उसे देखा है वह उसका वर्णन नहीं कर सकता—'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' वाली स्थिति है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण को अनन्त सौन्दर्य के निधान रूप में चित्रित किया गया है।[4] अपनी योगमाया से परब्रह्म ने श्रीकृष्ण रूप में मानव लीला के हेतु जो दिव्य विग्रह धारण किया था उसके सौन्दर्य से वे स्वयं ही विस्मित थे, फिर इतर प्राणियों का तो कहना ही क्या है। समस्त सौभाग्य-लक्ष्मी का आश्रय रूप उनका दिव्य विग्रह अपने अंग प्रत्यंगों से आभूषणों को भी सुशोभित करता था।[5] सौन्दर्य का इससे अधिक सारगर्भित वर्णन और क्या हो सकता है। जैसा कि दूसरे अध्याय में कहा जा चुका है, श्रीकृष्ण विष्णु के ही दिव्य देहधारी रूप हैं, विष्णु के साकार रूप की [illegible] जा चुकी है, वे प्रत्यक्षर श्रीकृष्ण पर भी घटित [illegible] ने कृष्ण का वह चतुर्भुज विष्णु रूप तो ग्रहण [illegible] धारी, बर्हापीड (मोरपंख का मुकुट धारण किये) नटवर [illegible] को चित्रित किया है उसका आधार दशमस्कन्ध [illegible]।[7]

---

१ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अध्याय २०

२ भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥ [illegible]

३ ताः समादाय कालिन्द्या निर्विश्य पुलिनं विभुः।
विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम्॥
शरच्चन्द्रांशुसन्दोहध्वस्तदोषातमः शिवम्।
कृष्णाया हस्ततरलाचितकोमलवालुकम्॥ [illegible]

४ का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन
सम्मोहितार्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्॥ [illegible]

५ यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम्।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्॥ [illegible]

६ देखिये, अध्याय २ 'विष्णु का साकार रूप'।

७ [illegible]

माला और सिर पर मोर पंख का मुकुट धारण करते हैं। हाथों में कवल (नवनीत आदि का) [illegible] का वाद्य और वेणु लिये गोपाल कृष्ण प्रणम्य हैं।[1] गले में वनमाला और कानों में कर्णिकार (कनेर) पुष्प के आभूषण भी कृष्ण को प्रिय हैं।[2] पीताम्बर के फेंटे में बाँसुरी कसे हुए, सींग और बेंत बगल में दबाए हुए, बाएँ हाथ में नवनीत दधि और ओदन का [illegible] लिये अँगुलियों में फल आदि दबाए हुए बालकृष्ण की गोप-[illegible] का बड़ा ही सजीव चित्र श्रीमद्भागवत में [illegible] है।[3] [illegible] पिच्छ, पुष्प और गेरू आदि नवीन धातुओं से [illegible] और उनके साथी गोप बालक कमर में एक फेंटा [illegible] रहे। धोती के ऊपर यह फेंटा कसना ब्रज का [illegible] है। श्रीकृष्ण [illegible] सिर पर काकपक्ष (लम्बी जुल्फें) रखते थे।[4]

कृष्ण और [illegible] शृङ्गार सज्जा कभी-कभी नूतन आम्रपल्लव, [illegible]। स्थल और जल में उत्पन्न होने वाले कमलों [illegible] और कृष्ण पीत-परिधान धारण करते [illegible]।[5] [illegible] उनके [illegible] गायों को बाँधने की रस्सी (नियोगपाश) भी [illegible] सुन्दर [illegible] रहता था। पुष्पों के कर्णाभरण उन्हें [illegible] जब सुवर्ण के कुण्डल धारण करते थे तो उनकी कान्ति

1. [illegible] पिच्छलसन्मुखाय।
[illegible] पशुपाङ्गजाय॥ श्रीमद्० १० १४, १
2. [illegible]
[illegible] मालाम्।
[illegible]
[illegible] कीर्तिः॥ श्रीमद्० १० २१, ५
3. [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] श्रीमद्० १०, १३, ११
4. [illegible] श्रीमद्० १०, १४, ४७
5. [illegible] श्रीमद्० १०, १६, ६
6. [illegible] श्रीमद्० १०, २०, १२
7. [illegible] विचित्रवेषौ।
[illegible] मानौ॥ श्रीमद्० १०, २१, ८
8. [illegible] श्रीमद्० १०, २२, १६
9. श्रीमद्भागवत १०, ३, १०
10. श्रीमद्भागवत १०, ३१, १४

सुगन्धित अंगराग का प्रयोग करते और फिर स्वच्छ वस्त्र धारण करते थे।[1] कुछ पुष्प की मालाओं से विचित्र वेष रचना करते थे।[2]

वर्ण, अंग विन्यास एवं मुद्राएँ—श्रीकृष्ण का स्वरूपोपास्य नन्देह प्राकृत मनुष्य-शरीर की भाँति पांचभौतिक नहीं अपितु शुद्ध सत्त्वमय है। अतः उस दिव्य वपु का रूप-सौन्दर्य आदि भी अचिन्त्य है।[3] उनका वर्ण सजल मेघ के समान श्याम है। वह सर्वांग सुन्दर और दर्शनीय है। उसका मुख अत्यन्त मनोहर है जिस पर मधुर मुसकान सदा खेलती रहती है। उनके चरण कमलकोष के समान मसृण कोमल हैं।[4] भगवच्चरणों का भक्ति-साहित्य में बहुत वर्णन हुआ है। भक्त का मनोमधुकर अहर्निश भगवान् के चरणारविन्दों में ही अटका रहता है। वहीं उसे विश्राम मिलता है, और वहीं उसकी अक्षय-तृप्ति होती है। इसी लिए भक्ति साहित्य में भगवच्चरणों की अनन्त महिमा गाई गई है। श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर भगवच्चरणों को परम श्रेय बताया गया है।[5] हिन्दी के भक्त कवियों ने भी अपने इष्टदेव के चरणों की वन्दना में तत्परता दिखाई है।[6] श्रीकृष्ण के चरणों में कमल, यव, अंकुश, वज्र, ध्वजा आदि समस्त शुभ लक्षण विद्यमान थे। जब रासक्रीडा के समय श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये थे तो गोपियों ने इन्हीं लक्षणों से युक्त चरण-चिह्नों को श्रीकृष्ण की चरण-पंक्ति के रूप में पहचाना था।[7] [illegible]

1. [illegible]
2. [illegible]
3. [illegible]
4. [illegible]
5. [illegible]
6. [illegible]
7. [illegible]
8. [illegible]
9. [illegible]

[illegible] के समान ही आह्लाददायिनी है। श्रीकृष्ण की चारुहासमयी मनोहर चितवन तो मानों भक्तों का सर्वस्व है। इस चितवन ने गोपियों का सर्वस्व हरण कर लिया है।[१] श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की इस प्रणय मुसकानमयी चितवन का अनेक स्थलों पर उल्लेख हुआ है।[२] अन्य अंगों के विन्यास में अभयदायक बाहुयुगल और लक्ष्मी का क्रीडास्थल [illegible] के समान शुभ्र दन्तपंक्ति, अरुण कमल नयन, चारु कपोल [illegible] प्रेक्षणीय है।[३]

[illegible] भीष्म स्तुति में श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का बहुत सुन्दर चित्रण [illegible] प्राणात्यय के समय त्रिभुवन-कमनीय, तमाल वृक्ष के समान [illegible] समान तेजोवर्ण पीताम्बरधारी, सुन्दर अलकावली से आवृत्त [illegible] ध्यान किया था। गोपियाँ भी इसी कृष्ण की सुललित गति, [illegible] और प्रणय कटाक्षों से मुग्ध होकर प्रेमोन्मादवश उसकी [illegible] हुई तन्मय हो गई थी।[५] गोपियाँ तो कृष्ण के सौन्दर्य रस [illegible] परमलाभ मानती हैं।[६]

[illegible] त्रिभंगी मुद्रा—भक्तों का परम ध्येय श्रीकृष्ण का वेणुवादनरत त्रिभंग- [illegible] वह अपनी बायीं भुजा पर बायाँ कपोल रखकर बाँकी भ्रुकुटि [illegible] को उसके छिद्रों पर कोमल अंगुलियाँ फेरते हुए बजाते हैं।[७] [illegible] श्यामसुन्दर के न जाने कितने चित्र हिन्दी के भक्त कवियों [illegible] उतारे हैं।[८]

१ [illegible] कामतप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम्। श्रीमद्भाग० १०. २९. ३८
२ [illegible] त्यमोघ नो मनः।
[illegible] प्रेमहासावलोकनैः॥ श्रीमद्भाग० १० ३०. ५
[illegible]
[illegible] २५। १०. २९. ४३। १० ३०. २। १०. ३१. ६। १०. ३१. १०।
[illegible] १६–१७। १०. ३८. ६। १० ३८. २६। १० ३८. ३० आदि।
३ [illegible] २६
४ [illegible]
५ [illegible] किरणौरवराम्बरं दधाने।
[illegible] अवसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥
[illegible] प्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः।
[illegible] प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः॥ श्रीमद्भाग० १. ९. ३३, ४०
६ [illegible] विदाम: सख्यः पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः।
[illegible] तुर्य यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम्॥ श्रीमद्भाग० १०. २१. ७
७ [illegible] रधरार्पितवेणुम्।
[illegible] कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः॥ श्रीमद्भाग० १०. ३५. २
८ [illegible] कुँवर ठाढ़े हैं साँवरे सुबरन।
[illegible] राजत उर ब्रज जन मन हरन॥
[illegible] लीन्हे मुरलि अधर मधुर बिस भरन।
[illegible] त्रिलोकि लोकमें मजन। सूरदास, सूरसा० प्र० ख० पृ० ४८२

विष्णु के अवतार स्वरूप श्रीकृष्ण के परब्रह्म परमेश्वरत्व की ओर द्वितीय अध्याय में संकेत किया जा चुका है। श्रीमद्भागवत में प्रतिपद पर श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व का स्थापन हुआ है और उन्हें स्पष्ट रूप से भगवान् कहा गया है।[1] सप्तम स्कन्ध में युधिष्ठिर नारद संवाद में नारद द्वारा कृष्ण को मनुष्य रूप में छिपा हुआ साक्षात् परब्रह्म बतलाया गया है।[2] नारद ने युधिष्ठिर से कहा है कि योगियों का अनुसंधेय, अद्वितीय और निरतिशय परमानन्दानुभव रूप परब्रह्म ही श्रीकृष्ण रूप में उन (पाण्डवों) के प्रिय, सुहृद्, मातुलेय (मामा के पुत्र भाई) आत्मीय, पूज्य, आज्ञाकारी और गुरु— सभी रूपों में दिखाई पड़ रहे हैं। नारद के इस कथन पर युधिष्ठिर को महान् विस्मय हुआ था।[3] भागवत के दशमस्कन्ध में—जिसमें कृष्ण लीला सांगोपांग वर्णित है—कृष्ण के परब्रह्मत्व और परमेश्वरत्व की प्रतिष्ठा कृष्ण के अतिमर्त्य (Super human) और अद्भुत कर्मों के आधार पर की गई है। बालकृष्ण के कतिपय अतिमानुषिक कृत्यों—यथा शकट-भंजन और यमलार्जुन वृक्षों के धराशायी करने की ओर गोप बालकों ने नन्द आदि गोपों और यशोदा आदि गोपियों का ध्यान आकर्षित भी किया परन्तु पहले उन्होंने विश्वास नहीं किया।[4] फिर कुछ लोगों को धीरे-धीरे सन्देह भी होने लगा।[5] किन्तु श्रीकृष्ण के गोवर्धन धारण के उपरान्त तो व्रजवासी लोगों के आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा। उन्होंने नन्द से वास्तविक रहस्य पूछा।[6] नन्द ने गर्गाचार्य के कथन से उनकी शंका निर्मूल की।[7] गर्गाचार्य ने बताया था कि इस बालक के [illegible]

---

१ [illegible]
२ [illegible]
३ [illegible]
४ [illegible]
५ [illegible]
६ [illegible]
७ [illegible]
८ [illegible]
९ श्रीमद्भागवत १० २६. २३ [illegible]
१० श्रीमद्भागवत १०. २६. १८ [illegible]

१ [illegible] वध
[illegible] भंजन
[illegible] वध
[illegible] तोड़ना
५—ब्रह्मा द्वारा वत्सहरण के उपरान्त कृष्ण द्वारा गोवत्स और गोप बालकों की सृष्टि
[illegible]
[illegible]
[illegible],
[illegible] में [illegible] मुक्ति और
[illegible] मृत पुत्रों को जीवित करके ले आना।

[illegible] अवतारों की शृङ्खला में कृष्ण का नाम और [illegible] में संकेत किया जा चुका है। अवतारों में भी [illegible] का है।

[illegible]—[illegible] राम और वासुदेव कृष्ण का अभेद श्रीमद्भागवत [illegible] में अनेक कार्यों का किया जाना भी यहाँ एक ही [illegible] माना गया है।[1] सभी अवतारों का एकत्व पुराणों में प्रतिपादित है [illegible] मध्यकालीन हिन्दू-हृदय में गहराई से पैठी हुई है। कृष्ण भक्त [illegible] और परमेश्वरत्व को स्वीकार किया है, वहाँ समस्त [illegible] मान्यता प्रदान की है। सूर ने एक ही पद में [illegible] सुन्दरता से प्रतिपादित किया है।[2] श्रीमद्भागवत [illegible] वासुदेव कृष्ण और दाशरथि राम आदि का एकत्व [illegible] का कार्य करता प्रतीत होता है। व्रज में [illegible] भागवत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो ब्रह्म [illegible] बोध-स्वरूप है, वही नाट्य वेषधारी गोपवंशीय [illegible]।[3]

1 [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] — श्रीमद्० ५. १९. ६
2 [illegible] अक्रूर मन यह बिचारै।
[illegible] — सूरदास, सूरसागर द्वि० ख०, पृ० १२८६
[illegible] तें दानि।
[illegible] यह बानि॥ — वही, पृ० १५४२
3 [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]॥ — श्रीमद्० १०. २३. ४१

श्रीकृष्ण और गोपियों का पारस्परिक प्रेम कृष्ण भक्ति साहित्य का मेरुदण्ड है। कृष्ण भक्ति-साहित्य में किसी भी अन्य बात पर उतना जोर नहीं है जितना कान्ताभाव की भक्ति या प्रेम करने पर। यद्यपि आगे चलकर वैष्णव सम्प्रदायों में सखी, और मुख्य 'मञ्जरी भाव' आदि प्रतिष्ठित हुए, किन्तु एक मात्र प्रेम भक्ति के लिए गोपी ही प्रतिनिधि स्वरूपा है। सूत्र रूप में कहना चाहिए कि गोपी ही प्रेम का एकमात्र आदर्श है। भक्त प्रवर कविवर परमानन्ददास ने 'गोपी प्रेम की धुजा'[1] कहकर अत्यन्त संक्षेप में गोपी प्रेम के जिस सर्वातिशायी उदात्त पद को व्यक्त कर दिया है, उसे बड़े से बड़े आकार वाले शास्त्र ग्रन्थ भी सम्भवतः नहीं कर पाते। परमानन्ददास तो गोपियों के प्रेम और भागवत पुराण के अभाव में भारत के आध्यात्मिक जीवन की झाँकी ही मान लेते हैं।[2] नारद भक्ति सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में भी भक्ति के चरम आदर्श रूप में एक गोपिकाओं को ही चुना गया है,[3] मानो भक्ति और गोपीभाव पर्याय हो हों। गोपी भाव से भावित हुए बिना भक्ति की कल्पना ही नहीं की जा सकती। श्री वल्लभाचार्य ने 'गोप्यः अस्माकं गुरुः' कहकर प्रेम मार्ग में गोपियों का सर्वश्रेष्ठत्व स्वीकार किया है। तब यह परम रहस्यमयी वस्तु गोपी क्या है? वास्तव में गोपी परम गोपनीय प्रेम-धन का अक्षय कोष ही है। इस प्रेम की जितनी अवस्थाओं और रूपों की कल्पना की जा सकती है उन सब का अधिष्ठान गोपी का विशाल हृदय है—वात्सल्य, दाम्पत्य, सख्य, दास्य— सभी भावों के रूप में एक विशुद्ध प्रेमतत्त्व का अगाध सागर ही गोपी के हृदय में [illegible] रहता है। यही नहीं, गोपी तो अपने समस्त मनोरागों—काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मान आदि को भी कृष्णानुराग के गाढ़रस में रँगकर उनका पृथक् अस्तित्व ही समाप्त कर देती है। गोपी का समस्त क्रिया व्यापार—देहेन्द्रियप्राणधारण—इसी कृष्ण प्रेम को प्राप्त करने के लिए है। यह है संक्षेप में गोपी परिचय। गोपी भारतीय मनीषा की एक अद्भुत अमर सृष्टि है।

श्रीमद्भागवत में कृष्ण और गोपियों के प्रेम को सबसे अधिक उदात्त रूप में बहुत ही विस्तृत भाव पटल पर चित्रित किया गया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "[illegible] पुराण [illegible] है—[illegible] हो जाता है [illegible]

---

1 [illegible]

2 [illegible]

3 [illegible]

4 [illegible]

[illegible] ने कहा है कि जिनका चित्त मुझ में लग गया है, उनका काम सांसारिक भोग [illegible] नहीं हो सकता जैसे भुने या उबाले हुए धान अंकुर उत्पन्न नहीं कर सकते।[1] [illegible] प्रेम की इससे अधिक महत्ता क्या हो सकती है कि स्वयं श्रीकृष्ण उसके महत्त्व [illegible] न करें। श्रीमद्भागवत में रासलीला के प्रसंग में श्रीकृष्ण का गोपियों के प्रति [illegible] कि हे गोपियो तुमने लोक और परलोक के सारे बन्धनों को काटकर मुझ से [illegible] प्रेम किया है; यदि मैं तुममें से प्रत्येक के लिए अनन्त काल तक पृथक् जन्म लेकर [illegible] प्रेम का बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और [illegible] ऋणी रहूँगा। तुम अपने सौजन्य से मुझे उऋण मानकर और भी ऋणी बना दो। [illegible] रहूँगा।" श्रीकृष्ण का यह कथन गोपियों के प्रेम की महत्ता का सीमान्त है।

गोपियों का पूर्व स्वरूप—गोपियों के नित्यसिद्धा और साधनसिद्धा दो प्रमुख [illegible] नित्यसिद्धा वे हैं जो भगवान् के नित्य परमधाम में अभिन्न रूप से लीला में [illegible] रही हैं। साधनसिद्धा वे हैं जिन्होंने कृष्णावतार के समय धराधाम पर अवतीर्ण [illegible] लीला में भाग लिया था। साधनसिद्धा गोपियों में से कुछ पूर्व जन्म की देव-[illegible] कुछ ऋषिगण, कुछ भक्त और कुछ श्रुतियाँ थीं। इनकी कथाएँ विभिन्न पुराणों में [illegible] हैं। जो श्रुतियाँ गोपी रूप से अवतरित हुईं उनमें से मुख्य थीं—उद्गीता, सुगीता, [illegible], कलकण्ठिका और विपञ्ची। श्रीकृष्णोपनिषद् में कथा है कि रामावतार के [illegible] दण्डकारण्यवासी मुनिजन भगवान् राम के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हो गये थे, [illegible] उन्हें व्रज में गोपी रूप में अवतीर्ण होने का वरदान दिया था। पद्मपुराण के पाताल [illegible] में [illegible]तपा, सत्यतपा, हरिधामा, जाबालि, शुचिश्रवा, सुवर्ण आदि अनेक ऋषियों [illegible] द्वारा गोपीरूप में अवतरित होकर कृष्ण लीला में भाग लेने की कथा है।[2] [illegible] इन सभी ग्रंथों से प्राचीन श्रीमद्भागवत महापुराण में गोपियों को देवांगनाओं का [illegible] बताया गया है जो श्रीकृष्ण के प्रिय कार्य करने के लिये अवतरित हुई थीं। नन्दादि [illegible] और उनकी स्त्रियाँ (गोपियाँ) देवता ही हैं।[3] इस प्रकार गोपियों और कृष्ण का [illegible] पूर्व जन्मों से जोड़कर उसे दृढ़ से दृढ़तर सिद्ध किया गया है।

कृष्ण लीला में भाग—कृष्ण के जन्म से ही गोपियों का जीवन कृष्ण के साथ [illegible] गया और वे यावज्जीवन कृष्णैकप्राणा बनी रहीं। कृष्ण का जन्म तो मथुरा में

---

1. [illegible]र्थ्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
[illegible] क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते॥ — श्रीमद्० १०. २२. २६

2. [illegible] (कल्याण) में श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार का 'माखन चोरी और चीर हरण' शीर्षक लेख पृ० ६६, ६७, ६८

3. [illegible] गृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः।
[illegible] तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः॥ — श्रीमद्० १०. १. २३
[illegible] ये ह्यस्मिन् गोपा याश्चामीषां च योषितः।
[illegible] वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः॥
[illegible] देवतामाया उभयोरपि भारत।
[illegible] बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः॥ — श्रीमद्० १०. १. ६२, ६३

वसुदेव-देवकी के यहाँ हुआ, किन्तु उन्हें तत्काल गोकुल पहुँचा दिया गया और नन्द-यशोदा का पुत्र घोषित कर दिया गया। जन्म महोत्सव भी गोकुल में मनाया गया। इस महोत्सव में सबसे अधिक उत्साह से भाग लेने वाली गोपियाँ ही थीं। आज उनके परमाराध्य का जन्म हुआ था। सौन्दर्य की राशि ये गोपियाँ बहुमूल्य वस्त्राभूषण, कुंकुम, कंचन, मणिमय कुण्डल, हार, केयूर और पुष्पावृत केश कलापों से अपूर्व शोभा बिखेरती हुई, नाना बहुमूल्य उपहार लिये, अतिशय आह्लाद और उत्सुकता से शीघ्र यशोदा के घर जा पहुँचीं।[1] इस समय उनके आनन्द और उत्साह की सीमा नहीं। बालक के चिरंजीवित्व की कामना कर वे उपस्थित लोगों पर हल्दी और तेलमिश्रित जल छिड़कने और उच्च स्वर से (बधाई) गाने लगीं।[2]

गोपियों का वात्सल्य-भाव—यद्यपि श्रीमद्भागवत की गोपियों का प्रमुखभाव श्रीकृष्ण के प्रति उनका मधुर दाम्पत्य भाव ही है तथापि वात्सल्य के दर्शन भी उनमें होते हैं। अवस्था भेद से श्रीमद्भागवत की इन वात्सल्यमयी गोपियों की आयु प्रौढ अथवा वृद्धा अवस्था ही अनुमान की जा सकती है। हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों द्वारा चित्रित गोपियों में यशोदा के अतिरिक्त अन्य गोपियों में श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्य के स्थान पर मधुर-भाव का ही प्राधान्य है, किन्तु श्रीमद्भागवत में यशोदा के अतिरिक्त कुछ अन्य सामान्य व्रज गोपिकाओं में भी गहरे वात्सल्य का भाव पाया जाता है। श्रीमद्भागवत के पूतना वध प्रसंग में गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव बहुत सुन्दर ढंग से व्यक्त हुआ है। कृष्ण की प्राण रक्षा के लिए गोपियाँ माता यशोदा और रोहिणी की अपेक्षा भी सतर्क मालूम होती हैं। विशालकाय राक्षसी पूतना के वक्षःस्थल पर से कृष्ण को झपटकर सबसे पहले उठाने वाली गोपियाँ ही थीं।[3] [illegible] निवारण के लिए कृष्ण [illegible] गोरज और गोमय [illegible] कर 'अज' आदि [illegible] कृष्ण के अंगों में बीज [illegible] में इसी प्रसंग में [illegible]

1 गोप्यश्चाकर्ण्य मु [illegible]
आत्मानं भूषयाञ्चक्रु [illegible]

2 गोप्यः सुमृष्टमणि [illegible]
[illegible]
नन्दालयं सवलया [illegible]
[illegible]
ता आशिषः प्रयुञ्जानाः [illegible]
हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः [illegible]

3 बालं च तस्या उरसि [illegible]
गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य [illegible]

4 श्रीमद्भागवत १०. [illegible]

हो गया है इस प्रकार कृष्ण के प्रति गोपियों का वात्सल्य भाव श्रीमद्भागवत में स्पष्टतया व्यक्त हुआ है।

गोपियों का मधुर भाव (कान्तासक्ति) गोपियों के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति जो मधुर कान्ताभाव है उसमें वे निरन्तर मधुर रस का आस्वादन करती रहती हैं। भक्ति ग्रन्थों में मधुररस की साधना को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यह मधुररस नितान्त दिव्य, आत्मानन्द है जिसका जड जगत् से कोई सम्बन्ध नहीं है। श्री रूपगोस्वामी ने मधुर-रस की परिभाषा देते हुए अपने ग्रंथ हरिभक्तिरसामृतसिन्धु में कहा है कि 'आत्मोचित विभावादिकों से जब मधुरा रति सत् पुरुषों के हृदय में पुष्ट होती है तब वह 'मधुर' नामक भक्ति रस कहलाता है।[2] यह मधुर-रस 'निवृत्त' जनों के लिए अनुपयोगी है। यह दुरूह है रहस्यमय है और अत्यन्त विस्तृत अंगों वाला है।" टीकाकार श्री जीवगोस्वामी ने 'निवृत्त' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है—"प्राकृत (सांसारिक) शृङ्गार रस के साथ इस (दिव्य) भक्त रस की समानता को देखकर जो इस (दिव्य) भागवत रस से भी विरक्त हो गये हैं।"[3] इस प्रकार मधुर भक्तिरस नितान्त अपार्थिव वस्तु है। इस रस के एकमात्र आलम्बन हैं कृष्ण और उनकी प्रियाएँ व्रज गोपिकाएँ।[4] ये व्रज गोपिकाएँ किशोरियाँ हैं। इनमें माधुर्य का नवनवोन्मेष होता रहता है। इनका हृदय सतत प्रणयन्तरंगों से आन्दोलित होता रहता है। ये कृष्ण को रमणभाव से भजती हैं। ये बड़ी अद्भुत हैं। ये प्रगल्भ हैं।[5] श्रीमद्भागवत की गोपियों में हमें ये सभी लक्षण मिलते हैं। श्रीमद्भागवत में कहा है कि नन्द-व्रज की कुमारिकाओं ने हेमन्त में कात्यायनीदेवी का यजन करके उससे प्रार्थना की थी कि नन्दकुमार कृष्ण को उनका पति बनाये।[6] इस प्रकार गोपकुमा-

---

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाप सद्गतिम्।
किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने।
यच्छन्प्रियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा॥ श्रीमद्० १०. ६. ३५, ३६

२ आत्मोचितैर्विभावाद्यैः पुष्टिं नीता सतां हृदि।
मधुराख्यो भवेद् भक्तिरसोऽसौ मधुरारतिः॥
निवृत्तानुपयोगित्वाद् दुरूहत्वादयं रसः।
रहस्यत्वाच्च संक्षिप्य वितताङ्गोऽपि लिख्यते॥
हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, पश्चिम विभाग ५ लहरी, श्लोक १, २ पृ० ४२६

३ निवृत्तैः प्राकृतशृङ्गाररससाम्यदृष्ट्या भागवताद्प्यस्माद्रसाद्विरक्तेषु। वही, पृ० ४२६

४ अस्मिन्नालम्बनाः कृष्णः प्रियास्तस्य च सुभ्रुवः। वही, पृ० ४२६

५ नवनवरसमाधुरीधुरीणाः प्रणयतरंगकरम्बितान्तरंगाः।
निजरमणतया हरिं भजन्तीः प्रणमत ताः परमाद्भुताः किशोरीः॥
ह० भ० र० सिन्धु में पृ० ४२६, २७ पर उद्धृत।

६ हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम्॥
कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः॥ श्रीमद्० १० २२. १ ४

रिकाओं ने प्रारम्भ से ही श्रीकृष्ण को कान्त-भाव से भजा। कान्तासक्ति में भक्ति के अन्य प्रकारों—यथा गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति, परमविरहासक्ति आदि का अपने ही अन्तर्भाव में समावेश हो जाता है और श्रीमद्भागवत की गोपियों में इन सबके उदाहरण प्राप्त होते हैं। कारण यह है कि मूलभूत एक वस्तु है प्रेम, जिसके लिए कहा गया है—'एकधाप्येकादशधा भवति'।[1] गोपियों के प्रेम में रूपासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति का सर्वाधिक प्राधान्य है और इन्हीं तीन प्रेम-दशाओं का श्रीमद्भागवत में सर्वाधिक चित्रण भी हुआ है। हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने भी गोपी-प्रेम की इन्हीं दशाओं का सर्वाधिक चित्रण किया है।

श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम जिन रूपों में व्यक्त हुआ है उनमें से कुछ प्रमुख रूपों के कतिपय उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

क—गुणमाहात्म्यासक्ति—

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान्सात्वतां कुले॥
तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥[2]

(गोपियाँ कहती हैं—"यह निश्चय है कि आप केवल यशोदा के पुत्र नहीं है अपितु समस्त देहधारियों के अन्तःकरणों के साक्षी हैं। हे सखे! ब्रह्मा की प्रार्थना पर आपने विश्व की रक्षार्थ यदुकुल में जन्म लिया है। जो लोग सन्तप्त जीवों को जीवन दान देने वाली, कविजन कीर्तित, पाप नाशनी, श्रवणमात्र से मंगल करने वाली और शान्ति-दायिनी आपकी अमृतमयी कथाओं का भूलोक में कथन करते हैं वे ही सबसे बड़े दानी हैं।")

ख—रूपासक्ति—

अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम्॥
का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्॥[3]

(गोपियाँ कहती हैं—"जब आप दिन के समय वन में विचरते हैं तो आपको न देख सकने के कारण हमें एक-एक क्षण युग के समान मालूम होता है। फिर सन्ध्या समय जब हम घुँघराली अलकावली से मण्डित आपका [illegible] हमें नेत्रों के पलक बनाने वाला ब्रह्मा मूर्ख मालूम होता है। [illegible] भी ऐसी कौन स्त्री होगी जो मधुर पदावली से युक्त [illegible] स्वरालापों को सुनकर और इस त्रिभुवन सुन्दर रूप को [illegible] और वृक्षों तक को रोमांच हो जाता है, अपनी आर्य-मर्यादा [illegible]

---

१ नारदभक्तिसूत्र ८२
२ श्रीमद्भागवत, १०.३१.४,९
३ श्रीमद्भागवत १०.३१.१५ तथा १०.२९.४०

ग—पूजासक्ति –

[illegible] हरिण्य एता
[illegible]नन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ।
[illegible] सहकृष्णसाराः
[illegible]विरचितां प्रणयावलोकैः ॥[१]

([illegible] सखियो, मूढ़ बुद्धि होने पर भी ये मृगियाँ धन्य हैं, [illegible] हीं कृष्णसार मृगों के साथ आकर अपने प्रणय [illegible] उन की पूजा करती हैं ।")

[illegible] —

[illegible] नलिननाभ पदारविन्दं
[illegible]हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
[illegible]लम्बं
[illegible] मनस्युदियात्सदा नः ॥[२]

([illegible] —हे [illegible]नाभ अगाध ज्ञान सम्पन्न योगियों द्वारा जिसका हृदय में चिन्तन [illegible] जो संसार कूप में गिरे हुए प्राणियों को उससे [illegible] आपका वह चरण-कमल हम गृह-वासिनी (प्रपंच [illegible] अबलाओं [illegible] रहे । अर्थात् हमें निरन्तर आपका स्मरण बना रहे ।")

ङ – दास्यासक्ति—

[illegible] देऽङ्घ्रिमूलं
[illegible] वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।
[illegible]तीव्रकाम-
[illegible] पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥

× × × ×

[illegible] स्म नो
[illegible] चारु दर्शय ॥[३]

([illegible] ! आप हम पर प्रसन्न होइये । हम आपकी [illegible] दरबार छोड़कर आपके चरणों की शरण में आयी हैं । हे [illegible] सुन्दर [illegible]हट और चितवन से हमारा चित्त अत्यन्त काम संतप्त [illegible] प्रदान कीजिये । हम आपकी दासियाँ हैं । हे सखे ! [illegible] और इन अबलाओं को अपना मनोहर मुखकमल दिखाइये ।")

च – आत्मनिवेदनासक्ति—

[illegible] नूनं सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तवपादमूलम् ।
[illegible] देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥

---

१ [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible] २९, ६

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥[1]

(गोपियाँ कहती हैं—"हे विभो ! आपको ऐसे कठोर शब्द न कहने चाहिए। हम सम्पूर्ण विषयों का त्याग करके एकमात्र आपके चरणों में ही अनुरक्त हैं अतः हे स्वच्छन्द ! इस प्रकार हमें त्यागिये मत, बल्कि जिस प्रकार आदिपुरुष नारायण मुमुक्षुओं को अपनाते हैं, उसी प्रकार आप भी हमें अंगीकार कीजिए। हे प्रिय, धर्मवेत्ता आपने जो हमें स्त्रियों के धर्म पति, पुत्र, बन्धु बान्धवों की सेवा करने का उपदेश दिया, वो उपदेश के विषयभूत आप ईश्वर में ही हमारे ये सब भाव केन्द्रित हों, क्योंकि समस्त देहधारियों के बन्धु और आत्मा तो आप ही हैं।")

छ—तन्मयतासक्ति—

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥
एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः ।
वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥[2]

(शुकदेव परीक्षित से कहते हैं—"कृष्णमनस्का, कृष्णवार्ता-परायणा, कृष्णचेष्टा-परायणा, कृष्ण-प्राणा गोपियाँ कृष्ण का गुणगान करती हुई इतनी तन्मय हो गईं कि उन्हें अपने देह-गेह की सुधबुध न रही। वृन्दावनविहारी कृष्ण की विविध लीलाओं का परस्पर वर्णन करती हुई गोपियाँ तन्मय हो गईं।")

ज—परमविरहासक्ति—

अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ।
तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं विचेष्टितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥
क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् ।
येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥
मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भूदक्रूर इत्येतदतीव दारुणः ।
योऽसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात् प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥[3]
निवारयामः समुपेत्य माधवं किं नोऽकरिष्यन् कुलवृद्धबान्धवाः ।
मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्धदुस्त्यजाद् दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥
यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्रलीलावलोकपरिरम्भणरासगोष्ठ्याम् ।
नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तम् ॥
योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो गोपैर्विशन् खुररजश्छुरितालकस्रक् ।
वेणुं क्वणन् स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥

---

१ श्रीमद्भागवत १०. २९. ३२

२ श्रीमद्भागवत १०. ३०. ४४ तथा १०. ३५. २६

३ श्रीमद्भागवत १०. ३९. १९, २१, २६

एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥[१]

(गोपियाँ कहती हैं— "अरे विधातः ! तुम्हें कभी किसी पर दया नहीं आती । [illegible]त्री और प्रणय के द्वारा पहले तो लोगों का संयोग कराता है फिर उनकी कामना पूरी [illegible] से पहले ही तू उनमें अकारण वियोग करा देता है । हमें तेरा यह खेल बच्चों की [illegible] के समान (अज्ञतापूर्ण) मालूम होता है । अरे विधातः ! तू बड़ा ही क्रूर है । [illegible] नाम से तू ही यहाँ आया है और अपने ही दिये हुए हमारे नेत्रों को एक मूर्ख की [illegible] हरे ले जा रहा है । अरे ! इन्हीं नेत्रों से तो हम मधुसूदन के एक-एक अंग में तेरी [illegible] का समस्त सौन्दर्य निहारती थीं । यह 'अक्रूर' तो बड़ा ही निर्दय है । ऐसे क्रूर [illegible] का नाम 'अक्रूर' कभी नहीं होना चाहिए था । यह तो हम वियोगिनी अबलाओं [illegible] र्य दिये बिना ही हमारे प्रियतम को हमारे दृष्टि-पथ से दूर ले जाना चाहता है । [illegible]यो ! चलो हम स्वयं ही जाकर माधव को रोकेंगी; कुल के बड़े बूढ़े और बन्धुजन [illegible] क्या कर लेंगे ? क्योंकि जिस प्रिय को आधे पलक के लिए भी छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उसका संयोग दुर्भाग्यवश विच्छिन्न हो जाने से हम अत्यन्त दीन और व्याकुल हो रही हैं, सखियो ! जिसकी प्रणयमयी मनोहर मुसकानयुक्त मधुर बातचीत, लीलामय [illegible] और आलिंगनों से युक्त रास-गोष्ठी में हमने अनेक रातें एक क्षण के समान बिताई [illegible], अब उनके बिना हम उसके विषम वियोग की अँधियारी को कैसे काटेंगी ? सखियो ! [illegible] काल में गोधूलि-धूसरित-अलकावली और पुष्पमालाओं से सुशोभित तथा अपने गोप मित्रों से [illegible]रे, वेणुनाद करते हुए व्रज में प्रविष्ट होने वाले कृष्णचन्द्र के बिना हम कैसे जीवित [illegible]केंगी जो अपनी मनोहर मुसकान और कटाक्ष युक्त निरीक्षण से हमारे चित्त को बेध [illegible] हैं ।" शुकदेव परीक्षित् से कहते हैं कि कृष्णासक्तचित्ता गोपिकाएँ जो परम [illegible] कातर होकर ऐसी बातें कर रही थीं, लोक लाज छोड़कर 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे [illegible]धव' इस प्रकार पुकारती हुई ज़ोर से रो पड़ीं ।)

ऊपर श्रीमद्भागवत के मूल अंशों से गोपियों की परमविरहासक्ति का किंचित् [illegible] कराया गया है । श्रीमद्भागवत में गोपियों की विरह भावना जैसे मर्मस्पर्शी रूप [illegible] हुई है, उसका यथार्थ व्यक्तीकरण एक दुष्कर कार्य है । उस लोकोत्तर दिव्य-[illegible] (प्रेम) की कुछ झलक अपने मूल रूप में मिल सके, इसी उद्देश्य से ग्रंथ के मूल अंशों [illegible] उद्धृत कर दिया गया है । इन अंशों के अध्ययन से यह स्पष्ट होते विलम्ब न [illegible], कि मध्यकालीन कृष्णभक्त कवियों ने श्रीमद्भागवत में चित्रित गोपी-प्रेम को किस [illegible] और निष्ठा के साथ हृदयंगम एवं आत्मसात् कर अपनी सहज प्रतिभा और भक्ति [illegible] से उसे और भी चित्ताकर्षक, गम्भीर और हृदयहारी बना दिया । गोपियों के इस [illegible] कृष्ण-प्रेम की झाँकी हमें श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्ध के निम्नलिखित प्रसंगों [illegible] विशेष रूप से मिलती है—

१—वेणुगीत (अध्याय २१) रूपासक्ति तथा तन्मयतासक्ति ।

१ श्रीमद्भागवत १०, ३९, २८–३१

२—चीरहरण (अध्याय २२) तन्मयतासक्ति।

३—रासलीला (रासपंचाध्यायी, अध्याय २९, ३०, ३१, ३२, ३३) रूपासक्ति, गुणमाहात्म्यासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति।

४—युगलगीत (अध्याय ३५) रूपासक्ति तथा तन्मयतासक्ति।

५—कृष्ण बलराम का मथुरा गमन (अध्याय ३९) रूपासक्ति, तन्मयतासक्ति एवं परमविरहासक्ति।

६—उद्धव की व्रजयात्रा (अध्याय ४६) तन्मयतासक्ति एवं परमविरहासक्ति।

७—उद्धव-गोपी-संवाद एवं भ्रमरगीत (अध्याय ४७) रूपासक्ति, तन्मयतासक्ति एवं परमविरहासक्ति।

वेणु अथवा मुरली—गोपियों को कृष्ण की ओर आकृष्ट करने में श्रीकृष्ण की मुरली का बड़ा हाथ है। अपने त्रैलोक्य विमोहन स्वर से वह मुरली समस्त जड़चेतन जगत् को अपने वश में कर लेती है। श्रीमद्भागवत में वेणु के प्रभाव का बड़ा ही विशद वर्णन है। परवर्ती संस्कृत कृष्णभक्ति साहित्य में भी कृष्ण के वेणुवादन के इस प्रभाव का बड़ा ओजस्वी वर्णन पाया जाता है।[1] सम्भवतः इसका मुख्य आधार श्रीमद्भागवत ही है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की वंशी अथवा मुरली के लिए सर्वत्र 'वेणु' शब्द का प्रयोग हुआ है। भागवत में कहीं भी, वंशी अथवा मुरली शब्द नहीं [illegible] परवर्ती हैं, [illegible] मुरली का नाम नहीं है, [illegible] पुल्लिंग है और भागवत में भी सर्वत्र [illegible]

१ [illegible]

२ [illegible]

कृष्णभक्ति साहित्य में तो वंशी बाँसुरी मुरली मुरलिया आदि स्त्रीलिंग शब्दों का ही प्राधान्य है क्योंकि सूर आदि कृष्ण भक्त कवियों ने वंशी को गोपियों की सपत्नी के रूप में चित्रित किया है।

वेणुमाधुरी और उसका प्रभाव मुरली श्रीकृष्ण की योगमाया है जिससे यह समस्त जगत् मोहित रहता है। इसकी ध्वनि सभी मूक प्राणियों के मन को हर लेती है किन्तु इसका सबसे अधिक प्रभाव गोपियों के हृदय पर पड़ता है। यह उनके हृदय में स्मरोदय कर देती है।[2] श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्ध के दो अध्याय[3] तो पृथक् रूप से वेणुमाधुरी और उसके लोकोत्तर प्रभाव का वर्णन करने के लिए ही रचे गये हैं। इनमें गोपियाँ स्वयं ही वेणुमाधुरी का वर्णन करती हैं। इन दोनों अध्यायों में जो कहा गया है उसका संक्षिप्त सार यह है : श्रीकृष्ण की मुरली के स्वर में एक विचित्र जादू है। जलद-श्याम श्री कृष्ण की मुरली के स्वर को मेघ का मन्द-मन्द गर्जन समझकर मत्त मयूर नाचने लगते हैं। उनका नृत्य देखकर पर्वतों पर विचरण करने वाले समस्त प्राणी निश्चेष्ट होकर खड़े रह जाते हैं।

वेणु-नाद से मुग्ध होकर मृगियाँ कृष्णसार मृगों के साथ श्रीकृष्ण के निकट आ जाती हैं। गायें कान उठाकर मुरली की मधुरध्वनि सुनती हुई निश्चेष्ट हो जाती हैं और उनके बछड़े दूध झरते हुए स्तनों से घूँट लेकर मुँह से टपकाते हुए निश्चेष्ट खड़े रह जाते हैं। पक्षिगण अपना कलरव छोड़कर निर्निमेष नेत्रों से श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी के साथ एकाग्र भाव से वेणुमाधुरी का भी रसास्वादन करते रहते हैं। श्रीकृष्ण की मधुर वंशीध्वनि से आकृष्ट देव और देवांगनाएँ विमान पर चढ़कर आ गये हैं। काम वेग से देवांगनाओं के केशबन्ध से पुष्प गिरने लगे हैं, कटि-वस्त्र खिसक गये हैं, किन्तु उन्हें देहानुसन्धान कहाँ है?[4] चेतन प्राणी ही नहीं नदियाँ और मेघ जैसे अचेतन पदार्थों पर भी वंशी ध्वनि का प्रभाव है। भँवरों से लक्षित होने वाले काम विकार से जिनका वेग रुक गया है, वे नदियाँ अपनी

---

१ गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुः
दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम्।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथार्याः॥ श्रीमद्भाग० १० २१. ९

२ इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम्।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे॥ श्रीमद्भाग० १०. २१. ६
तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम्।
काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन्॥ श्रीमद्भाग० १०. २१. ३

३ वेणुगीत, अध्याय २१ तथा युगलगीत, अध्याय ३५

४ कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम्॥
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः॥ श्रीमद्भाग० १०. २१. १२

करता है। श्रीकृष्ण के मधुर पदावली युक्त उदार वेणुनाद को सुनकर मनुष्य, पशु आदि जंगम प्राणी स्थिर हो जाते हैं और वृक्षादि स्थावर प्राणी रोमांचित हो जाते हैं।[1] पुष्प और फलों के भार से अवनत वन्य लताद्रुम प्रेम पुलकित होकर मधु-धारा प्रवाहित करने लगते हैं।[2] जिस समय श्रीकृष्ण स्वयं ही सीखे हुए षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद—इन सप्त स्वरों की मूर्च्छनाएँ ह्रस्व, मध्यम और दीर्घ भेदों से बाँसुरी पर अलापते हैं तब उसके स्वरों का मर्म न जान सकने के कारण इन्द्र, शिव, ब्रह्मादि प्रमुख देवगण नत-शिर होकर मुग्धभाव को प्राप्त हो जाते हैं।[3]

उपर्युक्त विवेचन श्रीकृष्ण की वेणुमाधुरी के चराचर जगद्व्यापी महान् प्रभाव का कुछ आभास देने के लिए श्रीमद्भागवत के आधार पर किया गया है। कृष्ण भक्त हिन्दी कवियों ने—विशेषकर सूरदास ने—श्रीकृष्ण की वेणु माधुरी का विशद वर्णन करने के लिये श्रीमद्भागवत के पूर्वोक्त दो अध्यायों का कितना अनुकरण किया है, यह इनके अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। सूर के पद तो कहीं-कहीं भागवत के श्लोकों के भावानुवाद से प्रतीत होते हैं।[4]

रासलीला – कृष्णभक्तिसाहित्य में जहाँ श्रीकृष्ण को अखिल-कल्याण-गुणगण-वारिधि कहा गया है,[5] वहाँ उनके चौंसठ गुणों की विशेष रूप से गणना की गई है। इन चौंसठ गुणों में भी साठ गुण साधारण कोटि में और चार गुण [illegible] में आते हैं। इन चार असाधारण गुणों में [illegible] है [illegible]।[6] [illegible] भगवदवतारों में श्रीकृष्ण ही 'लीलापुरुषोत्तम' हैं और श्रीकृष्ण की लीलाओं में ही उनकी

---

१ गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनु[illegible] ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृत[illegible] ॥ श्रीमद्भागवत [illegible]

२ श्रीमद्भागवत, १०, ३५, ९

३ विविधगोपचरणेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निज[illegible] ।
तव सुतः सति यदाधरबिम्बे दत्तवेणुरनयत्स्वर[illegible] ।
सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।
कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चित[illegible] । [illegible]
अन्यत्र
मुरहर रन्धनसमये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम् ।
नीरसमेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतनुताम् ॥ [illegible]

४ सूरसागर, प्रथम खण्ड, दशमस्कन्ध, पद ६२०

५ समस्तविविधाश्चर्यकल्याणगुणवारिधेः ।
गुणानामिह कृष्णस्य दिङ्मात्रमुपदर्शितम् ॥ [illegible]

६ सन्ति यद्यपि मे प्राज्या लीलास्तास्ता मनोहराः ।
नहि जाने स्मृते रासे मनो मे कीदृशं भवेत् ॥
श्रीहरि[illegible]

[illegible] श्रीकृष्ण के प्रति मधुर-भाव (कान्ता-
[illegible] गोपियों की विशुद्ध प्रेम-लक्षणा-भक्ति
[illegible] होती है। जहाँ उद्धव-गोपी-संवाद और
[illegible] होता है, वहाँ रासलीला दोनों का
[illegible] व वियोग और अन्त में फिर पूर्ण-
[illegible] श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की यह रासलीला
[illegible] पर स्थित है।[१] स्थूल दृष्टि से देखने
[illegible] स्त्री-पुरुषों की उद्दाम शृङ्गार चेष्टा
[illegible] कार ने उसे सर्वत्र आध्यात्मिक पुट
[illegible] रूप 'काम' से मुक्त होने का उपाय
[illegible] [२] अनेक भारतीय और अभारतीय
[illegible] है। डॉ० मुन्शीराम शर्मा 'सोम' ने
[illegible] किया है—'गो का अर्थ है इन्द्रिय।
[illegible] करने वाला। × × × कृष्ण आत्मा के
[illegible] गोपियों को अपनी ओर आकृष्ट करते
[illegible] अन्तरात्मा में मग्न हो जाने की
[illegible] कृष्ण की ओर केवल गति करती हैं।
[illegible] तरंगों द्वारा गोपियों को कृष्ण-
[illegible] शक्ति और अहम्मन्यता का स्फुरण
[illegible] आत्म-प्रकाश पर अहंकार का
[illegible] आत्मज्योति अन्तर्हित होती है, आत्म मग्न
[illegible] लीन हो जाता है। वियोग की अनुभूति
[illegible] अहंकार के नष्ट होते ही पार्थक्य
[illegible] आत्मा में लीन हो जाती हैं।
[illegible] यही है आत्मा का पूर्णानन्द में लीन
[illegible] [३] इस पंचाध्यायी में दशमस्कन्ध
[illegible] सम्मिलित हैं। यह रासपंचाध्यायी श्रीमद्-
[illegible] श्रीकृष्ण की निजस्वरूपभूता गोपिकाओं

[illegible] श्रीमद्भा० १०, ३३ १७

[illegible]

श्रीमद्भा० १०, ३३, ४०

२ [illegible] और सूर-साहित्य पृ० २०८

के साथ परम गुह्य और अन्तरंग लीला वर्णित है।[1] श्रीकृष्ण की यह रासलीला स्वयं श्रीकृष्ण को भी विस्मय-मुग्ध किये रहती है।[2] इस मनोमुग्धकारिणी रासलीला का कृष्ण भक्त हिन्दी कवियों ने बहुत विशद वर्णन किया है।

राधा — गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की रास-क्रीड़ा में राधा एक प्रमुख गोपी है। किन्तु श्रीमद्भागवत में कहीं भी राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। राधा ही क्या किसी भी गोपी का नामोल्लेख श्रीमद्भागवत में नहीं हुआ है। हाँ एक विशिष्ट गोपी और श्रीकृष्ण तथा उसके विशिष्ट युगल का स्पष्ट संकेत अवश्य है। श्रीमद्भागवत में केवल इतना आता है कि रास क्रीड़ा के समय श्रीकृष्ण सब गोपियों को छोड़कर अपनी किसी प्रियतमा प्रिय सखी को एकान्त में लिवा ले गये थे।[3] इस श्लोक के 'आराधित' या 'राधित' शब्द ने कवियों को राधा की कल्पना प्रदान की और जयदेव ने — 'राधामाधवयो र्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः'[4] कहकर उसे स्पष्ट कर दिया। राधा के इस विकास के सम्बन्ध में डॉ० [illegible] का अभिमत है कि राधा के दो पक्ष हैं, एक तात्त्विक दूसरा ऐतिहासिक। बारहवीं शताब्दी के पूर्व तक राधा एक विष्णु-शक्ति-तत्त्व के रूप में थी। किन्तु साहित्य में राधा का उल्लेख बहुत पहले से ही पाया जाता है और साहित्य के माध्यम से ही राधा का आविर्भाव और विकास हुआ। वास्तविक रूप से धर्म-मत के साथ राधा का विकास १२वीं शताब्दी से हुआ और उसकी परिपूर्णता वृन्दावन के गौड़ीय वैष्णवों की भक्ति-साधना में दिखाई दी। विविध पुराणों में आजकल जो राधा का उल्लेख मिलता है, वे परवर्ती काल में जोड़े गये अंश हैं।[5] जो कुछ हो, इसमें सन्देह नहीं कि मध्यकाल में राधा एक महान् शक्तिशाली [illegible] की ह्लादिनी शक्ति [illegible] ने राधावल्लभीय सम्प्रदाय [illegible] महत्त्व स्वीकार किया। हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने [illegible] पुराणों की परम्परा [illegible] विरह-विधुर प्रेममग्न [illegible] जयदेव के गीतगोविन्द में [illegible] चित्रण हिन्दी कवियों [illegible] गौड़ीय वैष्णवों से प्रभावित हुए [illegible]

---

१ रासलीला की [illegible]
२ परिस्फुरतु सुन्दर [illegible]
[illegible]
हरेरपि चमत्कृति [illegible]
[illegible]
३ अनयाराधितो [illegible]
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः [illegible]
४ गीतगोविन्द, [illegible]
५ श्रीराधा का क्रमविकास [illegible]

पुराण में समर्थित है ।[२] यह निश्चय ही एक परवर्ती साम्प्रदायिक प्रभाव का द्योतक है ।

भ्रमरगीत – गोपी प्रेम के गंभीर रूप की उनकी तीव्र विरह भावना और तन्मयता के लिए श्रीमद्भागवत का भ्रमरगीत प्रसंग अद्वितीय है । यह भ्रमरगीत वियोग काव्य और [illegible]

[illegible]

[illegible]

श्रीमद्भा० १० ४६. ४. ५. ६.

ने नन्द के द्वार पर एक सुवर्णमय रथ देखा। वे आपस में पूछने लगीं — "यह किसका रथ है? कहीं अक्रूर ही तो फिर नहीं आ गया जो पहले हमारे प्रियतम कृष्ण को ले गया था? क्या अब हमें ले जाकर हमारे मांस से अपने मृतस्वामी (कंस) का और्ध्वदैहिक कर्म करेगा?" जब गोपियाँ यह तर्क वितर्क कर रही थीं तभी उद्धव आ पहुँचे। कृष्ण के समान पीताम्बर मालादि वेषधारी उद्धव को गोपियों ने उत्सुकता वश घेर लिया और यह जानकर कि वे श्रीकृष्ण के सन्देश वाहक हैं, उनसे कहने लगीं—

"हम जानती हैं कि आपके स्वामी (कृष्ण) ने आपको यहाँ अपने माता-पिता का प्रिय करने के लिए ही भेजा है, नहीं तो इस गोकुल में और कौन है जिसे वे याद करेंगे? हाँ स्वजनों का स्नेह-बन्धन तोड़ना तो बहुत कठिन है, इसलिए माता-पिता को याद करते होंगे। (हमें वे क्यों याद करने लगे, हम उनकी स्वजन थोड़े ही हैं) स्वजनों के सिवा औरों के साथ तो किसी न किसी प्रयोजन से ही प्रेम किया जाता है। जब तक स्वार्थ रहता है तब तक प्रेम का स्वाँग रचा जाता है। पुरुषों का स्त्रियों के साथ वैसा ही स्वार्थ-पूर्ण लगाव होता है जैसा भ्रमरों का पुष्पों के साथ।[1] गणिका अपने निर्धन प्रेमी को, प्रजा असमर्थ राजा को, अधीतविद्य शिष्य गुरु को, लब्ध-दक्षिण ऋत्विग्गण यजमान को, पक्षिगण नष्टफल वृक्ष को, कृतभोजन अतिथि घर को, मृगगण दग्ध-वन को और जार पुरुष भोग चुकने पर अतृप्त एवं अनुरागिणी स्त्री को छोड़कर चल देते हैं।" इस प्रकार गोपियाँ तन्मय हो गयीं। [illegible]

गोपी कृष्ण के [illegible]

दिखाई पड़ [illegible]

पड़ी।[2] [illegible]

[illegible]

[illegible]

हमें एक बार [illegible]

फूलों को छोड़ देता है। [illegible]

है। उनकी [illegible]

---

१ [illegible]

[illegible]

२ [illegible]

प्रियप्रस्था [illegible]

३ मधुप [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] यशोगाथा गाकर हमारी चापलूसी न कर। यह तो तू कृष्ण की [illegible] प्राणों को ही सुना वे ही इस चाटुकारी से प्रसन्न होकर तेरी [illegible] तू कहे कि कृष्ण ने मुझे तुम गोपियों को ही मनाने के लिए [illegible] झूठ है। त्रैलोक्य में कौनसी स्त्री उन्हें दुष्प्राप्य है? हम प्रार्थिकाएँ [illegible] चरणों से अपना सिर हटाले। मैं जानती हूँ, यह कपट पूर्ण विनय [illegible] आया है। किन्तु वह अकृतज्ञ अब विश्वसनीय नहीं है जिसने [illegible] अबलाओं का इस प्रकार त्याग कर दिया है। वह बड़ा क्रूर है, [illegible] समान मार डाला, स्त्रीलम्पट होकर अनुरक्ता शूर्पणखा को विरूपा [illegible] लेकर भी बलि को वरुणपाश से बाँध डाला। अतः हम तो इस [illegible] आईं। किन्तु हाय हम करें क्या? हम उसकी चर्चा करना [illegible]। उसकी मीठी याद भुलाई नहीं जा सकती। जैसे कृष्ण मृग की [illegible] का विश्वास करके मारी जाती हैं, वैसे ही हम कृष्ण की बातों में [illegible] में जल रही हैं। अहो! प्रियतम के सखा भ्रमर! तुम फिर [illegible] हमारे सम्माननीय हो। क्या तुम हमें प्रिय के पास ले चलना चाहते [illegible] तो निरन्तर नव वधू विराजमान है। क्या वे हम दासियों को भी [illegible] क्या वे अपना हाथ कभी हमारे सिर पर भी रखेंगे?"

[illegible] 'प्रेम लपेटे अटपटे' वचन सुनकर उद्धव स्तब्ध रह गये। वे गोपियों [illegible] से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने गोपियों की कृष्ण तन्मयता के कारण [illegible] पूजित बताया। उद्धव ने दान, व्रत, जप, तप, होम, स्वाध्याय और [illegible] शुभ कर्मों की परिसमाप्ति भक्ति लाभ में ही मानी। गोपियों ने [illegible] सर्वस्व त्याग कर उक्त प्रेमलक्षणाभक्ति से परम पुरुष कृष्ण का वरण [illegible] चरम प्राप्तव्य है।[1] गोपियों ने विरह के द्वारा ही ऐकान्तिक भक्ति [illegible] उसका परिचय देकर उद्धव को भी अनुगृहीत किया।[2]

उद्धव ने गोपियों को श्रीकृष्ण का जो संदेश दिया उसका सारांश यह था कि कृष्ण [illegible] सर्वत्र व्याप्त है, इसलिए गोपियों से उसका वियोग नहीं हो सकता। अत [illegible] इन्द्रियों का दमन कर आत्मसाक्षात्कार करना चाहिए। प्रिय का दू

१ [illegible] यो यवत्यो लोकपूजिताः।
[illegible] मनः॥
[illegible] स्वाध्यायसंयमैः।
[illegible] कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते॥
[illegible], भवतीभिरनुत्तमा।
[illegible] मुनीनामपि दुर्लभा॥
[illegible]
[illegible] परम्॥ श्रीमद्भाग० १०, ४७, २३-२६

२ [illegible]॥
[illegible] कृताः॥ श्रीमद्भाग० १०, ४७, २७

हृ सन्देश सुनकर गोपियाँ बहुत सन्तुष्ट और आनन्दित हुईं। उन्होंने [illegible]
यह बड़े सौभाग्य की बात है कि [illegible] करके [illegible]
जीवन व्यतीत करते हैं। क्या वे मथुरा की [illegible] में कभी [illegible]
की भी चर्चा करते हैं ? [illegible]
रहा [illegible] मधुर [illegible] की याद करते हैं [illegible]
या वे [illegible] प्रकार हमें [illegible]
। हमें बार-बार श्यामसुन्दर का [illegible]
चिह्नों के कारण हम [illegible] भूल सकती [illegible]
विचित्र लीला, [illegible] चितवन और [illegible] हमारा चित्त [illegible]
हैं तो भूलें कैसे ?"[3]

के कारण गोपियों के चित्त को [illegible]
[illegible] कृष्ण का सन्देश [illegible]
[illegible] इन्द्रियातीत [illegible]
[illegible] इस समय तक गोपियों के [illegible]
[illegible] होकर कह रहे थे [illegible] गोपियों [illegible]
[illegible] चित्त सर्वात्मा कृष्ण में ही [illegible] है। [illegible]
[illegible] कृष्ण में उनका [illegible] इससे सिद्ध होता है कि यदि
[illegible] करे तो उसका [illegible] कल्याण होता है, [illegible]
को अमर कर देता है। [illegible]
की [illegible] का सेवन करने [illegible]
[illegible] गोपांगनाओं जिन्होंने समस्त [illegible] और [illegible]
मार्ग का अनुसरण किया है। [illegible]
[illegible] की [illegible] गोपांगनाओं की [illegible]

---

१. ४२, २३, [illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible] — श्रीमद्भागवत १०, ४७, ४२

[illegible]
[illegible] — श्रीमद्भागवत १०, ४७, ४३

[illegible]
[illegible] — श्रीमद्भागवत १०, ४७, ५३

निष्कर्ष

[illegible] श्रीमद्भागवत के मूल [illegible] के आधार पर उद्धव की ब्रजयात्रा, भ्रमर-गीत और उद्धव गोपी-संवाद का सार प्रस्तुत किया गया है। उद्देश्य यह है कि श्रीमद्भागवत के [illegible] हिन्दी [illegible] कवियों के भ्रमरगीत की तुलना की जा सके। [illegible] श्रीमद्भागवत की गोपियाँ उद्धव [illegible] विरोध नहीं करतीं, अपितु कृष्ण के [illegible] श्रीमद्भागवत की गोपियाँ उतनी [illegible] नहीं है। [illegible] श्रीमद्भागवत के इस प्रसंग में प्रेम [illegible] किया गया है, वहाँ ज्ञान-पक्ष का न तो खण्डन किया गया है [illegible]। श्रीमद्भागवत की [illegible] नीति के दर्शन हमें यहाँ भी [illegible] विमृष्य बताकर दोनों का साध्य-[illegible] भक्ति ही परम दुर्लभ पदार्थ है। [illegible] की पुष्टि हो जाने के उपरान्त कृष्ण [illegible] और भी [illegible] हो गया। यही श्रीमद्भागवत का [illegible] निर्गुण ज्ञानपक्ष को सर्वथा निराकृत [illegible] उनका उपहास किया। किन्तु क्या किया जाय, [illegible] भक्ति की भागीरथी में ज्ञान की संखुपा बह गई।

[illegible] श्रीमद्भागवत के [illegible] तत्त्वों का वैज्ञानिक वर्गीकरण और [illegible] किया गया है [illegible] प्रभाव हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों पर पड़ा है। रसेश्वर [illegible] मध्यकालीन भक्त कवियों का महान् [illegible] कर रहा है।

---

1 [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] श्रीमद्भाग० १०, ४७ ६२, ६३
2 [illegible]
[illegible] श्रीमद्भाग० १०.४७, ४७

षष्ठ अध्याय

श्रीमद्भागवत एवं वल्लभ-सम्प्रदाय के अष्टछापी कवि

लीलागान की परम्परा—जयदेव (१२वीं शती) के समय तक श्रीकृष्ण का रसिक-रूप पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुका था। बहुत पहले ही हरिवंशपुराण (लगभग ४०० ई०) में श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ विहार "हल्लीश क्रीडन"[1] के रूप में चित्रित हो चुका था। कालान्तर में उनका यह रसिक-रूप अधिकाधिक विकसित होता गया। श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्तपुराण में हम उसका चरमविकास पाते हैं। अनुमान होता है कि भारतवर्ष में रसिक-कृष्ण की लीलाओं के वर्णन की विभिन्न परम्पराएँ रही होंगी। श्रीमद्भागवत उनमें से एक परम्परा का ग्रंथ है जिसमें श्रीकृष्ण के शरद् रास[2] का वर्णन है। जयदेव का गीतगोविन्द किसी दूसरी परम्परा का ग्रन्थ मालूम होता है जिसमें श्रीकृष्ण के वसन्तरास[3] का उल्लेख है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"सम्भवतः दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी में भागवत-परम्परा से भिन्न भी कोई लीलागान की परम्परा थी। जयदेव का गीतगोविन्द पूर्णरूप से भागवत-परम्परा का ग्रंथ नहीं है। उसमें राधा एक प्रमुख गोपी हैं जो भागवत में अपरिचित हैं।[4] [illegible] दोनों परम्पराएँ मिलकर एक हो गई हैं। [illegible] जयदेव [illegible] गीतगोविन्द और श्रीमद्भागवत दोनों से ही रसिक-कृष्ण के [illegible] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अनुमान किया है कि [illegible] गोविन्द के अनुकरण पर अपनी सरस पदावली [illegible] विद्यापति [illegible] 'अभिनव जयदेव' की उपाधि भी मिली थी।[6]

हिन्दी कृष्ण-काव्य का सूत्रपात

विद्यापति—हिन्दी में कृष्ण-काव्य का प्रारम्भ [illegible] के चित्रण से ही हुआ। हिन्दी में कृष्ण-काव्य [illegible]

---

१ हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व, अध्याय २१

२ [illegible] रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥ [illegible]

३ विहरति हरिरिह सरसवसन्ते।
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते॥ [illegible]

४ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, [illegible]

५ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, [illegible]

६ सुकवि नव जयदेव भनिश्रो।
विद्यापति की पदावली [illegible]

करने वाले प्रथम उल्लेखनीय कवि विद्यापति ही हैं जिन्होंने अपनी सरस पदावली में राधा माधव के प्रेम विरह और विहार का वर्णन किया है विद्यापति संस्कृत के पण्डित थे। संस्कृत के कृष्ण काव्य से उनका प्रगाढ़ परिचय था। सिक-कृष्ण के लीलागान की प्रेरणा निश्चय ही उन्हें संस्कृत कृष्ण-काव्य से मिली होगी। श्रीमद्भागवत पुराण का अध्ययन भी विद्यापति ने किया था। श्रीमद्भागवत की एक प्रतिलिपि उन्होंने स्वयं अपने हाथ से [illegible] संवत् [illegible] (सन् १४२८ ई०) में की थी। यह प्रति अद्यावधि सुरक्षित है।[1] विद्यापति [illegible] भावुक कवि का श्रीकृष्ण के भागवत वर्णित मधुर रूप पर मुग्ध हो [illegible] चित्रण करना सहज सम्भव है। विद्यापति ने श्रीकृष्ण के सौन्दर्य और [illegible] वर्णन अनेक स्थलों पर किया है।[2] गोपी-विरह का यह वर्णन जो श्रीमद्भागवत के [illegible]-विरह वर्णन से साम्य रखता है—

> मधुपुर मोहन गेल रे, मोरा विहरत छाती।
> गोपी सकल बिसरलनि रे जतछल अहिवाती॥
> सुतलि छलहुँ अपन गृह रे नींदइ गेलउँ सपनाई।
> करसौं छुटल परसमनि रे कौन गेल अपनाई॥
> [illegible] कहओ कत सुमिरब रे हम भरिए मरानि।
> मानक धन सौं धनवन्ती रे कुबजा भेल रानि॥[3]

विद्यापति एक स्वच्छन्द-भावुक कवि थे। उनमें हम किसी विशिष्ट सम्प्रदाय का आग्रह नहीं पाते; किन्तु उनके बाद हम कृष्णकाव्य को अधिकतर पूर्वालोचित वैष्णव सम्प्रदायों की धारा से आबद्ध पाते हैं। हमारे आलोच्य काल के अधिकतर समर्थ कवि या तो किसी वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित थे या स्वामी हितहरिवंश जी अथवा हरिदास जी की भाँति स्वयं किसी सम्प्रदाय के संस्थापक थे। कुछ कवि स्वच्छन्द भी रहे किन्तु उनकी संख्या न्यून है। दोनों श्रेणियों के कृष्णभक्त कवियों पर श्रीमद्भागवत का वस्तुगत एवं भावगत प्रभाव पड़ा है। साम्प्रदायिक कवियों के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"सब सम्प्रदायों के कृष्ण भक्त भागवत में वर्णित कृष्ण की ब्रजलीला को ही लेकर चले क्योंकि उन्होंने अपनी प्रेमलक्षणा-भक्ति के लिए कृष्ण का मधुर रूप ही पर्याप्त समझा।"[4] वास्तव में कृष्ण भक्ति साहित्य में विशेष कर मधुर-रस की प्रतिष्ठा ही सब कवियों का ध्येय रहा। काव्य का सूत्रपात भी रसिक-कृष्ण को लेकर हुआ। श्रीकृष्ण

१. विद्यापति ठाकुर की पदावली (सम्पादित—डॉ० बाबूराम सक्सेना) भूमिका, पृ० ८

२. (क) [illegible] सुन्दर मिलल नन्दकुमार। — विद्यापति की पदावली पृ० ५५
[illegible] मुरलि बजाव। — वही, पृ० ३
(ख) [illegible] मन मोहन विसहु भेल सन्देह। — वही, पृ० ५५

३. विद्यापति की पदावली, पृ० २६८

४. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १६८

और [illegible] नवनीतप्रिय बालकृष्ण की [illegible]

न्तु वल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण की मधुराभक्ति का स्थान भी कम महत्त्वपूर्ण [illegible] चैतन्य हितहरिवंश और हरिदास-सम्प्रदाय का [illegible] ही आधारित है। मीरां, रसखानि आदि स्वच्छन्द कृष्ण भक्त कवि भी [illegible] ही पोषक रहे।

आलोच्य काल में सभी श्रेणी के कृष्ण भक्त कवियों की संख्या इतनी बड़ी [illegible] हित्य इतना विशाल है, और उस पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव इतना [illegible] है कि उसके एकांश का दिग्दर्शन कराना भी किसी शोधार्थी के लिए [illegible] एवं प्रतिनिधित्व की रक्षा करते हुए हिन्दी कृष्णभक्त कवियों की [illegible] का कार्य भी कम दुष्कर नहीं है। "को बड़ छोट कहत अपराधू।" ऐसी [illegible] 'स्थालीपुलाक' एवं 'प्रधान मल्लनिबर्हण' न्याय से प्रमुख, प्रसिद्ध, समर्थ एवं [illegible] [illegible]

छाप [illegible]

कुम्भनदास (संवत् १५२५–१६४०)

सूरदास (संवत् १५३५–१६४०)

परमानन्ददास (संवत् १५५०–१६४१)

कृष्णदास (संवत् १५५३–१६३६)

गोविन्दस्वामी (संवत् १५६२–१६४२)

छीतस्वामी (संवत् १५७२–१६४२)

चतुर्भुजदास (संवत् १५८७–१६४२)

नन्ददास (संवत् १५९०–१६४०)

[illegible]

[illegible]

[illegible] पृ० ८६

करते थे, सूरदास उसी प्रकरण पर अनेक ललित मुक्तक पद रच डालते थे।[1] अष्टछाप के तृतीय प्रसिद्ध कवि पर को भी महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत की अनुक्रमणिका सुनाई थी और उनसे भी श्रीकृष्ण की बाललीला का गान करने का अनुरोध किया था।[2] परमानन्ददास ने तो श्रीमद्भागवतोक्त भक्ति को अपने स्थिति-काल की विकट धार्मिक परिस्थिति के लिए एकमात्र अवलम्ब स्वीकार किया था और बड़ी [illegible] भाषा में तात्कालिक धार्मिक दुर्दशा का चित्रण किया था।[3] अष्टछाप के आठवें [illegible] नन्ददास ने तो श्रीमद्भागवत पर विपुल साहित्य की रचना की है जिसका उल्लेख [illegible] किया जायगा। यहाँ हम काल क्रमानुसार अष्टछाप के कवियों पर इस प्रबन्ध [illegible] चतुर्थ और पंचम अध्यायों में विवेचित भागवतोक्त सामान्य और विशेष तत्त्वों [illegible] का पर्यवेक्षण करेंगे तथा यथावसर श्रीमद्भागवत के मूल अंशों से उनकी रचना [illegible] भी। अष्टछाप के कवियों ने जहाँ दशमस्कन्धीय कृष्ण-लीला का विशेष वर्णन [illegible] है, वहाँ श्रीमद्भागवत की अन्य कथाओं और आख्यायिकाओं का उपयोग भी [illegible] में किया है। विशेषकर सूरदास ने अनेक दृष्टान्त और अन्तःकथाएँ श्रीमद्-[illegible] से ली हैं।

(१) कुम्भनदास (संवत् १५२५–१६४०)—अष्टछाप के सबसे वयोवृद्ध कवि [illegible] थे। इसीलिए इनका उल्लेख सर्वप्रथम किया गया है। सूरदास के वल्लभ-[illegible] में दीक्षित होने से पूर्व श्री कुम्भनदास जी ही गोवर्धन में श्रीनाथ जी की कीर्तन-[illegible] थे।[4] इनकी रुचि विशेषतया मधुराभक्ति की ओर थी जिसका आदर्श गोपियाँ हैं। [illegible] बाललीला सम्बन्धी पद न लिखकर युगल-लीला के पदों की रचना की है। [illegible] के गोपी प्रेम से ये विशेष प्रभावित थे और गोपियों की रूपासक्ति के भाव [illegible] श्रीमद्भागवत से लिए हैं—

क—नैननि भरि देखौ नन्दकुमार।
ता दिन तैं सब भूलि गई हौं अंग अंग सब हारि।
बिन देखे हौं बिकल भई हौं अंग अंग सब हारि।[5]

---

1. [illegible] परिचय (श्री प्रभुदयाल मीतल) पृ० [illegible]
2. [illegible], पृ० [illegible]
3. [illegible] बहुत भरी।
[illegible] कीन्हीं मर्यादा न टरी।
[illegible] को नेम न रह्यौ, [illegible] पुरान।
[illegible] होरी [illegible] ॥ आदि"

अष्टछाप की वार्ता—(सम्पा० द्वारकादास परीख) पृ० २२

4. [illegible] परिचय, पृ० [illegible]
5. [illegible]

ख—नैननि टकटकी लागि रही ।
    नख सिख अंग लाल गिरिधर के देखत रूप बही ।
    ×   ×   ×   ×
    घर ब्यौहार सकल सुधि भूली ग्वालिन मनसिज दही ।

ग—कबहूँ देखि हौं इन नैननु ।
    सुन्दर स्याम मनोहरि मूरति अंग अंग सुख दैननु ।
    वृन्दावन-विहार दिन-दिन प्रति गोपवृन्द संग लैननु ॥[1]

उक्त पदो में श्रीमद्भागवत के गोपी-प्रेम के कतिपय प्रसंगों की झलक स्पष्टतया देखी जा सकती है । एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
        यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।
पादौ पदं न चलतस्तवपादमूला-
        द्यामः कथं व्रजमथो करवाम किंवा ॥[2]

श्रीकृष्ण के रूप वर्णन में कुम्भनदास की पंक्ति—'कुम्भनदास प्रभु गोवर्धनधर लालन हैं युवतिन सुखदाई'[3] श्रीमद्भागवत के पद 'वनितोत्सवरूपशीलम्'[4] का भाव लिये हुए है । मुरली के स्मरोदयकारी प्रभाव के विषय में भी कुम्भनदास ने लिखा है—'जोतेंमे मुरली की धुनि सुनि, तुव तन मदन दहेयो' ।[5]

लीलागान—रासलीला—

कृष्ण तरनि-तनया-तीर रास-मंडल रच्यौ,
अधर कल मुरलिका वेनु बाजै ।
जुवती जन जूथ संग, निर्तत अनेक रंग,
निरखि अभिमान तजि काम लाजै ॥
×   ×   ×   ×
मुखर मंजीर, कटि-किंकनी कूनित रव
वचन गंभीर जनु मेघ गाजै ।
दास कुम्भनदास हरिदासवर्य
धरनि नखसिख स्वरूप अद्भुत बिराजै ॥
×   ×   ×
गावत गिरि धरन संग, परम मुदित रास रंग
उरपदि रयमान लेत नागर नागरी ।

१ अष्टछाप परिचय (कुम्भनदास : काव्य संग्रह), पृ० १०७
२ श्रीमद्भागवत, १०. २९. ३४
३ अष्टछाप परिचय, पृ० १०९
४ श्रीमद्भागवत, १०, २९, ४२
५ अष्टछाप परिचय, पृ० १०९

चर्बित-ताम्बूल देत, भ्रुवताल गति लेत, गिड़िगिड़िता
गिड़िगिड़िता, तना थुंग थेई अलाग लागरी ॥[1]

श्रीमद्भागवत की रास पंचाध्यायी के आधार पर ही उपर्युक्त पदों की रचना हुई है—

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ।
रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ।[2]

वलयानां नूपुराणां किंकिणीनां च योषिताम् ।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥

× × ×

कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम् ।
गण्डं गण्डे सन्दधत्या अदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥[3]

कुंभनदास ने 'चर्बित-ताम्बूल देत' लिखकर श्रीमद्भागवत के आश्रय की स्पष्ट स्वीकृति देदी है। उक्त पदों में गोवर्धन पर्वत के लिए प्रयुक्त 'हरिदासवर्य' शब्द भी कुंभनदास ने भागवत के 'हन्तायमद्रिरवला हरिदासवर्यः (१० २०. १८) श्लोक से लिया है। इस प्रकार के और भी उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

(२) **सूरदास**—(संवत् १५३५–१६४०) सूरदास के साहित्य पर श्रीमद्भागवत के प्रभाव को संक्षिप्त रूप में भी व्यक्त करना इस प्रबन्ध में शक्य नहीं है। श्रीमद्भागवत को सूर ने ही सर्वाधिक उपजीव्य बनाया है। वास्तव में यह विषय एक पृथक् शोध प्रबन्ध का है, किन्तु यहाँ हम कतिपय उदाहरणों में ही इसे सीमित रखने के लिए विवश हैं।

श्रीमद्भागवत का महत्त्व-प्रतिपादन—

सूर ने श्रीमद्भागवत-श्रवण को मानव जीवन की सफलता के लिए अनिवार्य बताया है—

क—नर तैं जनम पाइ कह कीनों ?
उदर भरयौ कूकर सूकर लौं प्रभु कौ नाम न लीनों।
श्रीभागवत सुनी नहिं स्रवननि, गुरु गोविन्द नहिं चीनों।[4]

ख—जनम तौ बादिहिं गयौ सिराइ।

× × ×

श्रीभागवत सुनी नहिं स्रवननि नैंकहु रुचि उपजाइ।
आनि भक्ति करि, हरि भक्तनि के कबहूँ न धोए पाइ।[5]

---

१ वही. पृ० १९५
२ श्रीमद्भागवत १०, २९. ४५
३ वही. १०, ३३. ६, १३
४ सूरसागर (काशी नागरी प्रचारिणी सभा) पद ६५
५ वही. पद १९५

ग—इत उत देखत जनम गयौ।

× × ×

श्रीभागवत सुन्यौ नहिं कबहूँ, बीचहिं भटकि मर्यौ।
सूरदास कहै सब जग बूड्यौ, जुग जुग भगत तर्यौ ॥[1]

भगवान् की भक्त वत्सलता की चर्चा करते हुए सूर ने श्रीमद्भागवत के परम प्रामाण्य की स्वीकृति वेद और गीता के साथ उसका नामोल्लेख करके इस प्रकार दी है—

× × ×

गीता वेद भागवत में प्रभु यौं बोले हैं आप।
जन कैं निपट निकट सुनियत हैं, सदा रहत हौं साथ ॥[2]

मध्यकाल में शाक्तों और वैष्णवों में कलह चलता रहता था, किन्तु वैष्णव धर्म (भागवत धर्म) अपने अहिंसा, सात्त्विकता आदि गुणों के कारण और श्रीमद्भागवत जैसे समर्थ भक्तिशास्त्र को अपने पोषक रूप में पाकर अनुदिन लोकप्रिय और विजयी हो रहा था। सूर ने वैष्णव (भागवत) की श्रेष्ठता का प्रतिपादन स्वयं श्रीकृष्ण द्वारा दुर्योधन के प्रति इस प्रकार कराया है—

तुम साकट वै भगत भागवत, रागद्वेष तैं न्यारे।[3]

भागवत-कथन—सूरसागर में कृष्ण लीलागान में यद्यपि सूर ने अपनी प्रतिभा का विशेष चमत्कार दिखाया है तथापि उनका सूरसागर द्वादश स्कन्धों में श्रीमद्भागवत को ही प्रस्तुत करता है। सूरदास ने मूल चतुःश्लोकी भागवत के [illegible] के विषय में कहा है—

श्रीमुख चारि स्लोक दए ब्रह्मा कौं समुझाइ।
ब्रह्मा नारद सौं कहे नारद व्यास सुनाइ ॥
व्यास कहे सुकदेव सौं द्वादस स्कन्ध बनाइ।
सूरदास सोई कहै पदभाषा करि गाइ ॥[4]

सूर ने श्रीमद्भागवत के अनुसार ही भागवत की वक्तृ-श्रोतृ-परम्परा का वर्णन किया है।[5] और भागवत-रचना का कारण भी बताया है—

भयौ भागवत जा परकार। कहौं सुनौ सो अब चितधार।
सतजुग लाख बरस की आइ। त्रेता दस सहस्र कहि गाइ।
द्वापर सहस एक की भई। कलिजुग सत संवत रहि गई।
सोऊ कहन सुनन कौं रही। कलि मरजाद जाइ नहिं कही।

---

१ सूरसागर (काशी नागरीप्रचारिणी सभा) पद २११
२ वही, पद १६६
३ वही, पद २४२
४ वही, पद २२५
५ वही, पद २२७, २२८

बहुरि पुरान अठारह किए। पै तउ शांति न आई हिए।
तब नारद तिनकैं ढिग आइ। चारि श्लोक कहे समुझाइ।

× × ×

दासी-सुत तैं नारद भयौ। दोष दरसनन कौ मिटि गयौ।
व्यासदेव तब करि हरि ध्यान। कियौ भागवत कौ व्याख्यान।[1]

सूर ने श्रीमद्भागवत श्रवण की फलश्रुति में भगवत्प्राप्ति की बात कही है तथा इसे भवसागर तरने का साधन बताया है—

श्रीभागवत सुनै जो कोइ। ताकौं हरिपद प्रापति होइ।

× × ×

सुनै भागवत जो चित लाइ। सूर सो हरि भजि भव तरि जाइ।[2]

सूरसागर में सूरदास ने श्रीमद्भागवत की प्रायः समस्त कथाओं और अन्य विषयों का वर्णन "सूर कहै भागवत विचार"[3] अथवा "सूर कह्यौ भागवतनुसारि"[4] इस प्रकार की तुलनात्मक पंक्तियों सहित किया है। सूरसागर के स्कन्धात्मक संस्करण में मुख्य-मुख्य कथाएँ ये हैं—

प्रथम स्कन्ध—सूत शौनक सम्वाद, श्रीकृष्ण-द्वारका गमन, धृतराष्ट्रवनगमन, अर्जुन का द्वारका से शोक समाचार लेकर लौटना, परीक्षित् जन्म, पाण्डवों का परीक्षित् को राज्य देकर स्वर्गारोहण, परीक्षित् का दिग्विजय, परीक्षित् को शृङ्गी ऋषि का शाप, परीक्षित् का अनशन।

द्वितीय स्कन्ध—विराट्-रूप-वर्णन, भगवद्भक्ति की प्रधानता का निरूपण, भगवान के लीलावतारों की कथा।

तृतीय स्कन्ध—उद्धव और विदुर की भेंट, मैत्रेय विदुर सम्वाद, ब्रह्मा की उत्पत्ति, वराह अवतार कथा, जय-विजय कथा, हिरण्याक्ष वध, कर्दम देवहूति कथा, कपिलदेव का अवतार, देवहूति-कपिल सम्वाद।

चतुर्थ स्कन्ध—सती और दक्ष की कथा, ध्रुव कथा, पृथुकथा, पुरंजनोपाख्यान।

पंचम स्कन्ध—ऋषभदेव की कथा, जड़भरत और रहूगण संवाद।

षष्ठ स्कन्ध—अजामिलोपाख्यान।

सप्तम स्कन्ध—नृसिंह अवतार कथा (प्रह्लाद-चरित)।

अष्टम स्कन्ध—गज-ग्राह कथा, समुद्रमन्थन और देवासुर संग्राम कथा, मोहिनी-अवतार कथा, वामनावतार कथा, मत्स्यावतार कथा।

---

१ सूरसागर, पृष्ठ २३०
२ वही,
३ वही, पृ० ६४६
४ वही पृ० ३३३

नवम स्कन्ध पुरूरवा की कथा, च्यवन और सुकन्या की कथा, बलराम-रेवती विवाह, राजा अम्बरीष की कथा, सौभरि ऋषि की कथा, गंगावतरण की कथा, श्रीराम-कथा तथा परशुराम-कथा।

दशम स्कन्ध—श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध में कृष्ण लीला का आलोचनात्मक वर्णन है। सूर का मन यहीं रमा है। सूर ने दशमस्कन्धीय लीलाओं का वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया है। कृष्णभक्ति परक अन्य ग्रंथों में भी उन्होंने कृष्णलीला विषयक सामग्री लेकर पद लिखे हैं—उदाहरणार्थ सूरसागर दशमस्कन्ध में कृष्ण द्वारा श्रीधर ब्राह्मण के अंगभंग की कथा है[1], जो श्रीमद्भागवत में नहीं है। सूर को कृष्णलीला का स्फुरण हुआ था। फलतः उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा और कल्पना से भागवत की कृष्णलीला को मनोज्ञ रूप में उपबृंहित किया। सूर ने लिखा है कि भागवत के नौ स्कन्धों को तो शुकदेव ने परीक्षित् से जैसा कहा था वैसा ही अब तक मैं वर्णन करता रहा[2], किन्तु अब दशमस्कन्ध को हरि का ध्यान करके मैं (मौलिक रूप में) कहता हूँ।[3] अतः सूर के कृष्णलीलागान का विवेचन हम पृथक् रूप से आगे करेंगे।

एकादशस्कन्ध—नर-नारायण-अवतार कथा, हंसावतार-कथा।

द्वादश स्कन्ध—परीक्षित् की परम पद प्राप्ति। इस प्रकार सूर ने श्रीमद्भागवत की प्रबंधता का निर्वाह किया है।

(ख) आलोचनात्मक सामान्य अध्ययन

सूर ने [illegible] भक्तितत्त्वों की [illegible] है।

१—**भक्तिमार्ग का सर्वश्रेष्ठत्व** [illegible] साधन पथ के रूप में [illegible] समस्त साधनों की अपेक्षा [illegible] कर्मकाण्ड आदि [illegible] के बिना भगवान् [illegible] दुर्लभ है। [illegible]—

क—[illegible] ।
[illegible] ।

---

१ सूरसागर, पद [illegible]

२ सुक ज्यौं नृप कौं [illegible] सूरसागर, पद [illegible]

३ व्यास कह्यौ [illegible]
द्वादस स्कन्ध [illegible]
नव स्कन्ध [illegible]
सूर कहत अब दसम [illegible] सूरसागर, पद [illegible]

४ देखिये, इस प्रबन्ध के अध्याय २ और ४

सूरदास प्रभु इहि औसर भजि उतरि चलौ भवसागर

ख—कुम्भन सम कर्म का मारग जेते काउ करत बनाई
तदपि विमुख पाँनौ सो मन्दिर भक्ति हृदय नहिं आइ
नन्दि पद मर अनि नियरें जब नव कीरति गाई
भक्ति प्रभाव सूर नखि पायो भजन छाप नहिं पाई ।[2]

ग—रे मन समुझि सोचि बिचारि ।
भक्ति बिनु भगवन्त दुर्लभ कहत निगम पुकारि ।[3]

घ सूर हरि की भक्ति कीन्हें जन्म पातक जाइ ।[4]

श्रीमद्भागवत में कहा गया है -

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥[5]

भक्त-महिमा—जिस प्रकार भक्त भगवान् के अनन्याश्रय मे
भगवान् भी भक्त-पराधीन हैं ।[6] सूरदास ने भक्त की बड़ी महिमा
भगवद्वचन के रूप में ही—

क—अन्तरजामी नाउँ हमारौ, हौं अन्तर की जानौं ।
तदपि सूर मैं भक्तवछल हौं, भक्तनि हाथ बिकानौं ।[7]

ख —भक्तबछल है बिरद हमारौ बेद सुमृति हूँ गावै ।[8]

ग हम भक्तनि के भक्त हमारे ।
सुन अर्जुन परतिग्या मेरी यह ब्रत टरत न टारे ।
भक्तनि काज लाज हिय करिके पाइ पियादे धाऊँ ।
जहँ जहँ भीर परै भक्तनि कौं तहँ तहँ जाइ छुड़ाऊँ ।
जो भक्तन सौं बैर करत है सो निज बैरी मेरौ ।
देखि बिचार भक्त हित कारन हाँकत हौं रथ तेरौ ।
जीतैं जीत भक्त अपनै की हारे हारि बिचारौं ।[9]

---

1 सूरसागर, पद ६१
2 वही, पद ६३
3 वही, पद ३०६
4 वही, पद ३१६
5 श्रीमद्भागवत ६. ३. २२ विशेष द्रष्टव्य १. २. ६, १३ । १. २ २२ । ६. १,
6 अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज । आदि । श्रीमद्भाग० ९. ४
7 सूरसागर, पद २४३
8 वही, पद २७४
9 वही, पद २७२

सामर्थ्य त्रलोक्य में किसी के पास नहीं है—

क—हरि हरिभक्त एक, नहिं दोइ। [illegible] [1]

ख—नहीं त्रिलोकी ऐसौ कोइ। भक्तनि की [illegible] [2]

श्रीमद्भागवत में भगवद्भक्त के जो कार्य और लक्षण [illegible] हैं,[3] सूर ने

उनका वर्णन इस प्रकार किया है—

नर देही पाइ चित चरन-कमल दीजै।
दीन बचन सन्तनि संग, दरस परस कीजै॥
लीलागुन अमृत रस स्रवननि पुट पीजै।
सुन्दर मुख निरखि ध्यान नैन माँहि लीजै॥
गद्गद सुर पुलक रोम अंग प्रेम भीजै।
सूरदास गिरिधर जस गाइ गाइ जीजै॥[4]

२—स्तुति (विनय)—स्तुति का लक्ष्य भगवान् की अनन्त महिमा और भक्त-वत्सलता का कथन तथा स्वदोष वर्णन करना है। निर्गुण निर्विकार ब्रह्म ही माया के भिन्न गुणों से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के लिए विविध रूप में अवतरित होता है।[5] भगवान् की महिमा का पूर्णतया कथन किसी के लिए सम्भव और शक्य नहीं है।[6] किन्तु भक्त ने [illegible] वात्सल्य [illegible] नहीं है। [illegible] ने श्रीमद्भागवत की [illegible] स्तुति के आधार पर लिखा है—

करि [illegible] विरचि [illegible]। [illegible]
तुम्हीं कारन त्रिगुन [illegible] [illegible][7]

स्वतंत्र रूप में भी सूर के विनय और स्तुति [illegible] भक्त [illegible] सर्वस्व है। [illegible]
इनमें अनन्त भगवन्माहात्म्य और भक्तवत्सलता [illegible] साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है—

क—वासुदेव की बड़ी बड़ाई।
[illegible][8]

ख—[illegible] करुनासिंधु की, [illegible] न [illegible]।
कपट हेतु [illegible]॥

---

१ सूरसागर, पद [illegible]
२ वही, पद [illegible]
३ श्रीमद्भागवत ११. [illegible]
४ सूरसागर पद [illegible]
५ श्रीमद्भागवत ४. [illegible]
६ वही २. ७. ४१
७ सूरसागर, पद ४२१
८ वही, पद ३

वेद उपनिषद् जासु कौं, निरगुनहि बतावैं ।
सोइ सगुन ह्वै नन्द की दाँवरी बँधावैं ।।[१]

ग—तुम अनादि अविगत अनन्त गुन पूरन परमानन्द ।
सूरदास पर कृपा करौ प्रभु, श्री वृन्दावन चन्द ।।[२]

३—नाम-महिमा भगवान् के नाम की अनन्त महिमा सूर ने गाई है । सूरसाग
के प्रायः पदों का प्रारम्भ "हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ" पंक्ति से होता है। इसी
सूर की नाम-निष्ठा प्रकट हो जाती है ।

क—जब तैं रसना राम कह्यौ ।
मानो धर्म साधि सब बैठ्यौ पढ़िबे में धौं कहा रह्यौ ।।
प्रगट प्रताप ज्ञान गुरु गमतैं दधि मथि घृत लै तज्यौ मह्यौ ।।
सार कौ सार, सकल सुख कौ सुख हनुमान सिव जानि गह्यौ ।।
नाम प्रतीति भई जा जनकौ, लै आनँद दुख दूरि दह्यौ ।।
सूरदास धनि धनि वह प्रानी जो हरि कौ व्रत लै निबह्यौ ।।[३]

ख—सूर एक पौ नाम बिना नर फिरि फिरि बाजी हारी ।[४]

ग—जिहि जिहि जोनि जन्म धारयौ बहु जोरयौ अघ कौ भार ।
तिहि काटन कौं समरथ हरि कौ तीछन नाम कुठार ।।[५]

घ—भव अम्बोधि नाम निज नौका सूरहि लेहु चढ़ाइ ।[६]

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि जो भगवद्भक्त हैं वास्तव मे वही श्रेष्ठ
उच्चकुल से श्रेष्ठता नहीं आती । सूरदास ने भी नाम-जप करने वाले को श्रेष्ठ कहा है

सोइ भलौ जो रामहि गावै ।
स्वपचहु श्रेष्ठ होत पद सेवत, बिनु गोपाल द्विज जनम न भावै ।[७]

३—गुरु महिमा—सूर ने श्रीमद्भागवत षष्ठ-स्कन्ध सप्तम अध्याय की आख्यायिका के आधार पर गुरु की महिमा इस प्रकार बताई है—

हरि गुरु एक रूप नृप जानि । यामें कछु सन्देह न मानि ।
गुरु प्रसन्न हरि परसन होइ । गुरु कैं दुखित दुखित हरि जोइ ।।
× × × ×
तातैं हरि गुरु सेवा कीजै । मेरौ वचन मानि यह लीजै ।।[८]

---

१ सूरसागर पद ४
२ वही २६३
३ वही, पद ३११
४ वही, पद ६०
५ वही, पद ६८
६ वही, पद १५५
७ वही, पद २३१
८ वही, पद ४१६

एक स्वतंत्र पद में सूर ने गुरु के विषय में कहा है—

गुरु बिनु ऐसी कौन करै।
माला तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र धरै।
भवसागर तैं बूडत राखै, दीपक हाथ धरै।
सूर स्याम गुरु ऐसो समरथ, छिन में लै उधरै॥[1]

५—सत्संग—साधुजनों के महत्त्व और सत्संग के अमोघ, कल्याणकारी प्रभाव का सूर ने यों वर्णन किया है—

जा दिन संत पाहुने आवत।
तीरथ कोटि सनान करै फल जैसो दरसन पावत॥
नयौ नेह दिन दिन प्रति उनके चरन कमल चित लावत।
मन बच कर्म और नहिं जानत सुमिरत औ सुमिरावत॥
मिथ्या वाद उपाधि रहित ह्वै विमल विमल जसु गावत।
बंधन कर्म कठिन जे पहिले, सोऊ काटि बहावत॥
संगति रहैं साधु की अनुदिन, भवदुख दूरि नसावत।
सूरदास संगति करि तिनकी जे हरि सुरति करावत॥[2]

६—वैराग्य—श्रीमद्भागवत में भक्ति के साधन और साध्य दोनों ही रूपों में वैराग्य का विशद वर्णन है जो समस्त ग्रंथ में इतस्ततः विकीर्ण है।[3] सूर की रचनाओं में भी वैराग्य परक पदों की संख्या बहुत है जिनमें [illegible] दिग्दर्शन, देह गेह की आसक्ति की निन्दा तथा [illegible] की हानि का उल्लेख किया गया है। साथ ही [illegible] ईश्वर-[illegible] साधन बताकर उसके द्वारा शीघ्रातिशीघ्र [illegible] है।[4]

क—जग में जीवत ही को नातौ।
मन बिछुरें तन छार होइगो, [illegible]
मैं मेरी कबहूँ नहिं कीजै, [illegible]
विषयासक्त रहत निसि बासर [illegible]
साँच झूठि करि माया जोरी, [illegible]
सूरदास कछु थिर न रहैगो [illegible]॥[5]

ख—रे मन, छाँडि विषय कौ रँचिबौ।

× × ×

अन्तर [illegible] कनक कामिनि कौ [illegible]॥[6]

---

१ सूरसागर, पद ४१७
२ वही, पद ३६०, द्रष्टव्य—श्रीमद्भागवत ११. २. ३० [illegible], १–८
३ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ३, अध्याय ३०, ३१, ३२
४ सूरसागर, पद ३०२
५ वही, पद ३१

७—रे मन, जग पर जानि ठगायौ।
धनमद, कुलमद, तरुनी के मद, भवमद हरि बिसरायौ।[1]

८—बौरे मन समुझि समुझि कछु चेत।
इतनौ जन्म अकारथ खोयौ, स्याम चिकुर भए सेत।
तब लगि सेवा करि निस्चय सौं जब लगि हरियर खेत।
सूरजदास भरम जनि भूलौ करि विधना सौं हेत॥[2]

(आ) भागवतोक्त विशेष तत्त्व[3]

१—विविध कृष्ण लीलाओं का गान

दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध—सूरदास ने श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध की निम्नलिखित कृष्ण लीलाओं का गान किया है—कृष्ण प्रादुर्भाव, गोकुल में जन्मोत्सव, पूतना वध, शकटासुर वध, तृणावर्त वध, नामकरण, शिशु क्रीड़ा, माखनचोरी, उलूखल-बन्धन और यमलार्जुन उद्धार, वृन्दावन प्रस्थान, गोचारण, वकासुर वध, अघासुर वध, ब्रह्माकृत गोपबाल एवं गोवत्सहरण, धेनुक वध, कालिय-दमन, दावानल पान, प्रलंबवध, चीरहरण, यज्ञपत्नियों पर अनुग्रह, गोवर्धन-पूजा तथा गोवर्धन धारण, इन्द्रकृत कृष्ण स्तुति तथा कामधेनुकृत कृष्णाभिषेक, वरुण-बन्धन से नन्द का मोचन, रासलीला (श्रीकृष्ण का अन्तर्धान होना, गोपिकागीत, रासनृत्य तथा जलक्रीड़ा) विद्याधर शापमोचन, वृन्दावन विहार एवं वेणुवादन, शंखचूड़ वध, वनभोजन, वृषभासुर वध, केशि-वध, व्योमासुर वध, अक्रूर व्रज आगमन, गोपिकाओं की उद्विग्नता, अक्रूरकृत कृष्णस्तुति, मथुरा गमन, रजक वध, धनुर्भंग, कुवलयापीड वध, मल्ल एवं कंस वध, वसुदेव मिलन, यज्ञोपवीत, गोपी विरह, उद्धव व्रजागमन, भ्रमर-गीत, उद्धव प्रत्यागमन, अक्रूर गृह गमन।

दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध—कालयवन-दहन, द्वारका प्रवेश, रुक्मिणी पत्र-प्राप्ति, कृष्ण रुक्मिणी-विवाह, प्रद्युम्न जन्म, कृष्ण जाम्बवती एवं कृष्ण सत्यभामा विवाह, शतधन्वा वध, श्रीकृष्ण के अन्य विवाह, भौमासुर वध तथा कल्पवृक्ष आनयन, रुक्मिणी परीक्षा, प्रद्युम्न विवाह, अनिरुद्ध-विवाह, नृगउद्धार, बलराम व्रज आगमन, पौण्ड्रक वध, सुदक्षिण वध, द्विविद वध, साम्ब विवाह, नारद संशय, जरासंध वध, राजाओं की प्रार्थना, पाण्डव यज्ञ, शिशुपाल वध, पाण्डव-सभा में दुर्योधन का अपमान, शाल्व वध, दन्तवक्त्र वध, सुदामा ब्राह्मण पर अनुग्रह, कुरुक्षेत्र में गोप-गोपियों से मिलन, देवकी पुत्र आनयन, सुभद्राहरण और अर्जुन-सुभद्रा-विवाह, जनक और श्रुतदेव पर अनुग्रह, वेदस्तुति, शम्भुमोचन (भस्मासुर वध) भृगुकृत त्रिदेव परीक्षा, अर्जुन को स्व-स्वरूप का दर्शन एवं शंखचूड़ ब्राह्मण के पुत्रों का महाकालपुर से आनयन।

---

१. सूरसागर पद ३८
२. वही, पद ३८२
३. इस प्रबन्ध का पंचम अध्याय।

किया है। हाँ यह बात अवश्य है कि जिन लीलाओं में उनकी चित्तवृत्ति अधिक रमी है उनका वर्णन उन्होंने विशेष उत्साह उल्लास और चमत्कार के साथ किया है। इनमें बाल लीला और किशोर का प्रेम लीलायें उल्लेखनीय हैं जिनका सूर ने [illegible] तन्मय हो, हृदय में कृष्ण लीला के स्फुरण का अनुभव कर जिनका गान [illegible] जिसमें प्रतिभा का परिचय दिया है। किन्तु यह बात स्मरणीय है कि श्रीमद्भागवत ही कृष्णलीला विषयक मूल सामग्री निरन्तर सूर का उपजीव्य रही है। कहीं-कहीं सूर ने श्रीमद्भागवत के श्लोकों का अनुवाद सा ही कर दिया है यथा कृष्ण जन्म प्रसंग में—

सूरसागर—

आनन्दै आनन्द बढ्यौ अति।
देवनि दिवि दुन्दुभी बजाई सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति।
विद्याधर किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति।
गावत गुन गंधर्व पुलकि तन, नाचतिं सब सुरनारि रसिक अति।
बरषत सुमन सुदेस सूर सुर, जयजयकार करत मानत रति।
सिव बिरंचि इन्द्रादि अमर मुनि, फूले सुख न समात मुदित मति॥[1]

श्रीमद्भागवत—

मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम्।
जायमानेऽजने तस्मिन् नेदुर्दुन्दुभयो दिवि॥
जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः।
विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं मुदा॥
मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः।
मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम्॥[2]

तृणावर्त वध प्रसंग में—

सूरसागर—

[illegible] आँगन में [illegible]
तृणावर्त [illegible]
[illegible]
[illegible] भवन के [illegible]
[illegible]
[illegible]॥[3]

श्रीमद्भागवत—

[illegible]
गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत्॥

---

१ सूरसागर पद. ६२४

२ श्रीमद्भागवत १० ३. ५-७

३ सूरसागर पद ६७६

महापुरुषमादध्यौ कमसु ॥
दैत्यो नाम्ना तृणावर्त कंसभृत्य प्रणोदित ।
जहारासीन्म भकम् ॥
गोकुलं सर्वमावृण्वन्मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभि. ।
ईरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिश: ॥[1]

बाललीला के प्रसंग में—

सूरसागर—

कबहुँ धरनि पर बैठिकैं, मन मैं कछु गावत ।[2]

श्रीमद्भागवत—

उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयंत्रवत् ।[3]

कृष्ण जन्मोत्सव के प्रसंग में —

सूरसागर—

ब्रज भयौ महरकैं पूत जब यह बात सुनी ।
× × ×
सुनि धाईं सब ब्रजनारि, सहज सिंगार किए ।
तन पहिरे नूतन चीर, काजर नैन दिए ।
कसि कंचुकि तिलक लिलार, सोभित हार हिए
कर कंकन कंचन थार मंगल साज लिए ।
सुभ स्रवननि तरल तरौन बेनी सिथिल गुही ।
सिर बरषत सुमन सुदेस, मानो मेघ फुही ॥[4]

श्रीमद्भागवत—

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ।
आत्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्राकल्पांजनादिभिः ॥
नवकुंकुमकिंजल्कमुखपंकजभूतयः ।
बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्य
चित्राम्बराः पथिशिखाच्युतमाल्य
नन्यालयं सवलयाव्रजतीर्विरेजु-
र्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभा

---

१ श्रीमद्भागवत, १०. ७. १८–२१
२ सूरसागर पद ७४०
३ श्रीमद्भागवत, १०, ११. ७
४ सूरसागर पद ६४२
५ श्रीमद्भागवत १०. ५. ६–११

सूरसागर—

हिरकत हरद दही हिय हरषत ।[1]

श्रीमद्भागवत—

हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिंचन्त्यो जनमुज्जगुः ।[2]

पूतना-वध प्रसंग में —

सूरसागर—

पय सँग प्रान ऐंचि हरि लीन्हौ... ।[3]

श्रीमद्भागवत—

प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ।[4]

इस प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

सूरदास ने दशमस्कन्धीय कृष्ण लीलाओं का एक और भी उपयोग किया है - वह है लीलाओं के संकेत मात्र से अपने इष्टदेव की अनन्त महिमा और भक्त वत्सलता का प्रतिपादन। भागवतोक्त अन्य कथा प्रसंगों का भी ऐसा ही उपयोग उन्होंने किया है। किन्तु उनके लिए कहा जा सकता है कि वे कथाएँ अन्य पुराणों में भी प्राप्त होती हैं, यथा, बलि की कथा, प्रह्लाद और हिरण्यकशिपु की कथा, अजामिल की कथा, गजेन्द्र और ग्राह की कथा आदि। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

हिरनकस्यप बढ्यौ उदय अरु अस्त लौं हठी प्रह्लाद [illegible] ।
भीर के परे तैं धीर सबहिनि तजी, खम्भ [illegible] ।
ग्रस्यौ गज ग्राह लै चल्यौ पाताल काल [illegible] ।
छाँड़ि सुख धाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ पवन [illegible] ।[5]

उपर्युक्त पद में संकेतित कथाएँ श्रीमद्भागवत [illegible] हैं।

अब दशमस्कन्धीय कृष्ण लीलाओं के संकेत [illegible] उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

क—करनी करुनासिंधु की मुख कह[illegible] ।
कपट हेत परसैं बकी, जननी [illegible] ।
बेद उपनिषद जासु कौं निरगुन [illegible] ।
सोइ सगुन ह्वै नन्द की [illegible] ।
उग्रसेन की आपदा सुनि सुनि [illegible] ।
कंस मारि राजा करे, आपहुँ [illegible] ।

---

१ सूरसागर पद ६३७
२ श्रीमद्भागवत १०. ५. १२
३ सूरसागर पद ६६६
४ श्रीमद्भागवत १०. ६. १०
५ सूरसागर पद ५

जरासंध बन्दी कटै नृप कुल जस गावै ।

× × ×

सूरदास की बीनती कोउ लै पहुँचावै ।[१]

ख—कला निधान सकल गुन सागर गुरु धौं कहा पढ़ाए हो ।
तिहिं उपकार मृतक सुत जाँचे सो जमपुर तें ल्याए हो ।।[२]

ग—प्रभु तुम दीन के दुखहरन ।

× × ×

दूर देखि सुदामा आवत धाइ परस्यौ चरन ।

लच्छ सौं बहु लच्छ दीन्हो, दान अवढर ढरन ।[३]

घ—गोप ग्वाल गोसुत जल त्रासत गोवर्धन कर धार्यौ ।[४]

ङ—अघ अरिष्ट केसी काली मथि दावानलहिं पियौ ।
कंस बंस बधि जरासंध हति गुरु सुत आनि दियौ ।।[५]

ऊपर के उदाहरणों में श्रीमद्भागवत की दशमस्कन्धीय श्रीकृष्ण लीलाओं [illegible] से सूर ने अपने इष्ट की अधिक महिमा और भक्त वत्सलता का दिग् दर्शन कि[illegible]

कृष्णलीला के सभी उपकरणों—वृन्दावन, यमुना, गोवर्धन, गौएँ, नन्द, यशोदा आदि का भागवतोक्त स्वरूप सूर ने ग्रहण किया है । उदाहरणार्थ माँ यशोदा के स्वरूप को देखिए—

सूरसागर—

साँझ भई घर आवहु प्यारे ।
दौरत कहा चोट लगिहै कहुँ, पुनि खेलि हो सकारे ।
आपुहि जाइ बाहँ गहि ल्याई, खेल रही लपटाय ।
धूरि झारि तातौ जल ल्याई, तेल परसि अन्हवाइ ।
सरस बसन तन पोंछि स्याम को भीतर गई लिवाइ ।
सूर स्याम कछु करी बियारी पुनि राखौं पौढ़ाइ ।।[६]

श्रीमद्भागवत—

क्रीडन्तं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम् ।
यशोदा जोहवीत्कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ।
कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब ।
अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि पुत्रक ।।

१ सूरसागर पद ४
२ वही, पद ७
३ सूरसागर पद २०२
४ वही पद १६८
५ „ „ १२१
६ „ „ ८६४

× × ×

धूलिधूसरितांगस्त्वं पुत्र मज्जनमावह

× × ×

त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः ।

इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ।

हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥[1]

२—श्रीकृष्ण की अलौकिक रूप माधुरी

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के सौन्दर्य के लिए कहा गया है कि निखिल सृष्टि के सौन्दर्य को एक देश में ही स्थापित करके उसका कुछ आभास पाया जा सकता है।[2] इसी आधारभूत धारणा को लेकर सूर ने कृष्ण की रूपमाधुरी का वर्णन किया है। उनका वर्ण, अंग-विन्यास, मुद्राएँ, वेषभूषा आदि सब कुछ भागवतोक्त रूप के अनुसार है।

वर्ण क—नीलजलद अभिराम स्याम तन, निरखि जननि दोउ निकट बुलाए।[3]

ख—सूर स्याम प्रभु इन्द्रनीलमनि, ब्रज वनिता उरलाइ गही री।[4]

अंगविन्यास—बंधुक सुमन अरुन पद पंकज, अंकुस प्रमुख चिह्न बनि आए।

× × × ×

सुभग चिबुक द्विज अधर नासिका, स्रवन कपोल मोहि सुठि भाए।
भ्रुव सुन्दर, करुनारस पूरन, लोचन मनहु जुगल जलजाए।
भाल बिसाल ललित लटकनि मनि बाल दसा के चिकुर सुहाए।

× × × ×

अंग अंग प्रति मार-निकर मिलि, छबि समूह लै लै मनु छाए।
सूरदास सो क्यों करि बरनै, जो छबि निगम नेति करि गाए।[5]

बालकृष्ण की अल्पदन्त पंक्ति का भागवत में वर्णन है। सूर ने अनेक स्थलों पर उसका उल्लेख किया है।

श्रीमद्भागवत—

दत्वास्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य,
मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥[6]

सूरसागर—

क—सोभित सुकपोल अधर अलप अलप दसना।[7]

१ श्रीमद्भागवत १० ११. १४–२०
२ वही १०. ३२. २१
३ सूरसागर पद ७२२
४ वही पद ६४७
५ ,, ,, ७२२
६ श्रीमद्भागवत १०. ८. २३
७ सूरसागर पद ७०८

स—अल्प दसन, कलबल करि बोलनि ।[1]

भगवान् के चरणारविन्द भक्त-भ्रमर के एकमात्र सेव्य हैं। श्रीमा
...च्चरणारविन्दों को एकमात्र अकुतोभय शरणस्थल कहा गया है। सभी व
...नों ने भगवच्चरणारविंदों का सौन्दर्य और उनकी पावनी शक्ति का वर्णन
...शरण लेने का आग्रह किया है—

> भजि मन नन्दनन्दन चरन।
> चरन पंकज अति मनोहर सकल सुख के करन।
> सनक संकर ध्यान धारत निगम आगम बरन।
> × × ×
> पदपराग प्रताप दुर्लभ, रमा कौ हित करन।
> × × ×
> जासु महिमा प्रगटि केवट धोइ पग सिर धरन।
> कृष्न पद मकरंद पावन, और नहिं सरबरन।
> सूर भजि चरनारबिंदनि, मिटै जीवन मरन ॥[2]

वेषभूषा—

> रोहिनि सुत जसुमति सुत की छवि गौर स्याम हरि हलधर गात
> नीलाम्बर पीताम्बर ओढ़े, यह सोभा कछु कही न जात
> × × ×
> सीस मुकुट मकराकृत कुण्डल झलकत विविध कपोलनि भाँति।
> कटि कछनी कर लकुट मनोहर, गोचारन चले मन मनुमानि।

...ोप बालकों की मण्डली के मध्य में वनभोजनरत बालकृष्ण की
...त्र सूर ने श्रीमद्भागवत से ही लिया है—

सूरसागर—

> वृन्दाविपिन बिसद जमुनातट, सुचि ज्योनार बनाई।
> सानि सानि दधि भात लियौ कर सुहृद सखनि कर देत।
> मध्य गोपाल मण्डली मोहन छाक बाँटि कै लेत।
> देवलोक देखत सब कौतुक, बाल केलि अनुरागे।
> गावत सुनत सुजस सुख करि मन, सूर दुरित दुख भागे।[4]

श्रीमद्भागवत

> बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे।
> वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु॥

---

१ सूरसागर, पद ७०१
२ वही, पद ३०८
३ ,, ,, १८३३
४ वही, पद १०२४

तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः ।
स्वर्गेलोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥[1]

सूर ने श्रीकृष्ण को विष्णु के विग्रह रूप में भी चित्रित किया है—

अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी ।
नाथ सारंगधर कृपा करि मोहिं सब सकल अघहरन अघहारी ।[2]

बालकृष्ण के अनन्त सौन्दर्य का वर्णन असमर्थ समझ कर सूर ने कहा है—

सुन्दरता को पार न पावति रूप देखि महतारी ।
सूर सिन्धु की बूँद भई मिलि मति गति दृष्टि हमारी ॥[3]

३ श्रीकृष्ण का परब्रह्मपरमेश्वरत्व

सूरदास ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म परमेश्वर माना है। ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में श्रीकृष्ण ही उनके इष्ट हैं। अपनी अलौकिक सामर्थ्य के कारण वह परमेश्वर भी हैं। उनके अद्भुत कार्य उनकी ईश्वरता का बोध कराते हैं। श्रीमद्भागवत में इस विषय का सर्वत्र प्रतिपादन है।[4] सूर की कतिपय पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत की जाती हैं—

क—बेद उपनिषद् जासुकौं निरगुनहि बतावै ।
सोइ सगुन ह्वै नन्द की दाँवरी बँधावै ।[5]

ख—नागरी स्याम सौं कहत बानी ।
सुनहु गिरिधरनवर सीस सीखण्डधर, जगत सूर नाथ वर ब्रह्मज्ञानी ।
रुद्रपति, छुद्रपति, लोकपति ओकपति धरनिपति गगनपति अगम बानी ।
अखिल ब्रह्मांडपति तिहूँ भुवनाधिपति, [illegible] ईस बानी ।[6]

परब्रह्म ही भक्तवत्सलता के कारण अवतार लेकर दुष्टदलन करता है। वही यह केवल प्रेम के वश होकर अवतार धारण कर भक्तों को आनन्द देने वाली लीलाएँ करता है—

क—का न कियो जनहित जदुराई ।
प्रथम कह्यौ जो बचन दयारत तिहिं बस गोकुल गाय चराई ।
भक्तबछल बपु धरि नर केहरि, दनुज दह्यौ उर दरि सुरसाई ।[7]

निगमनि अगम हरिकृपा न्यारी ।
प्रीति बस देवकी गर्भ लीन्हौ बास, प्रीति कै हेतु ब्रज [illegible] ।
प्रीति कै हेतु जसुमति पयपान कियौ, प्रीति कै हेतु [illegible] ।

---

१ श्रीमद्भागवत १०, १३. ११
२ सूरसागर, पद २२४
३ वही, पद ७०६
४ श्रीमद्भागवत, ७. १५. ७५
५ सूरसागर पद ४
६ वही, पद २६६५
७ वही, पद ८

प्रीति कै हेतु बन धेनु चारत कान्ह, प्रीतिकै हेतु नंदसुवन नामा।
प्रीतिकै हेतु सूरज प्रभुहि पाइए, प्रीति के हेतु दोउ स्याम स्यामा।[1]

राम-कृष्ण-अभेद—विष्णु के २४ अवतारों में राम और कृष्ण अवतारों की प्रमुखता है। सूर ने राम और कृष्ण में ही नहीं विष्णु के सभी अवतारों में श्रीमद्भागवत के अनुसार[2] अभेद स्थापित किया है—

को गोपाल कहाँ के कहाँ के बासी, कासौं है पहिचानि।
× × ×
पय प्यावन पूतना संहारी, छले जु बलि से दानि।
सूपनखा नासिका निपाती, सूर सदा यह बानि॥[3]

४—श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का अनन्य और अलौकिक प्रेम

गोपी-प्रेम सूर के साहित्य का प्राण है। श्रीमद्भागवत में गोपी-प्रेम का जो स्वरूप व्यक्त हुआ है, सूर ने उसे आदर्श रूप में स्वीकार कर उसके समस्त उपकरणों—यथा वेणु, रास, भ्रमरगीत आदि का सविस्तर वर्णन करते हुए उसे रस कोटि तक पहुँचा दिया है। सूर ने राधाकृष्ण प्रेम का निरूपण अन्य वैष्णव पुराणों के आधार पर किया है, किन्तु प्रेम की प्रगाढ़ता का आदर्श भागवत का गोपी प्रेम ही है। वशिष्ट गोपी राधा के नामोल्लेख मात्र से सामान्य इष्ट वस्तु प्रेम' के निरूपण में कोई अन्तर नहीं पड़ता। गोपियों के कृष्ण-प्रेम के विविध रूपों के कतिपय उदाहरण देखिए—

क—गुणमाहात्म्यासक्ति—

हम तौ दुहूँ भाँति फल पायौ।
जौ गोपाल मिलैं तौ नीको, नतरु जगत जस छायौ।
कहँ हम या गोकुल की गोपी, बरन हीन घटि जाति।
कँह वे श्री कमला के वल्लभ, मिलि बैठी इक पाँति।
निगम ज्ञान मुनि ध्यान अगोचर, ते भए घोष निवासी।
ता ऊपर अब कहाँ देखि धौं मुक्ति कौन की दासी॥

ख—रूपासक्ति—

सूर ने गोपियों की कृष्ण के प्रति रूपासक्ति का बहुत ही विशद वर्णन किया है। उसके वैचित्र्य और गाम्भीर्य का अनुमान करना कठिन है। कृष्णलीला में जहाँ भी गोपियों का भाग है वहीं सर्वत्र उनकी रूपासक्ति के दर्शन होते हैं—

अखियाँ कैसैं कहौं हरि के रूप रसहिं।
अपने तन में भेद बहुत विधि, रसना जानै न नैन दसहिं।
बिन देखे ते आहिं बचन बिनु, जिनहिं बचन दरसन न तिसहिं।

1 सूरसागर पद, २६३५
2 श्रीमद्भागवत १०, ४७, १७
3 सूरसागर, पद ४४५७

बिनु बानी ये उमँगि प्रेम जल, सुमिरि सुमिरि वा रूप अन्हवाहिं ।
बार बार पछिताति यहै कहि, कहा करौं जो बिधि न बनाहिं ।
सूर सकल अंगनि की यह गति, क्यों समुझावैं छपद चपाहिं ॥[1]

तन्मयतासक्ति—

रहति रैनिदिन हरि हरि हरि रट ।
चितवति इकटक मग चकोर ज्यों, जबहीं तुम बिछुरे नागर नट ।
भरि भरि नैन नीर ढारति हैं, सजल करति अति कंचुकि के पट ।
मनहु बिरह की ज्वालानि लगि, लियौ नेम हिय सीस महल घट ।
जैसैं जल के अग्र ओर्न कन, मानि रहत तेसैंहि अचवहिं लट ।
सूरदास प्रभु मिलहु कृपा करि, जे दिन कहे नेत आए निकट ॥[2]

परमविरहासक्ति—

गोपियों की परम विरहासक्ति का जैसा चित्रण सूर ने किया है, वैसा विश्व-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है । श्रीमद्भागवत का गोपी-विरह सूर का प्रेरक स्रोत है । गोपियों द्वारा लोक लज्जादि का त्याग, अतीत संयोग की सुखद स्मृति और विरहाग्नि की तीव्रता का श्रीमद्भागवत में उल्लेख है ।[3] सूर के सरस पदों में ये भाव व्यक्त हुए हैं—

क—चलन कौं कहियत हैं हरि आज ।

× ×

कोउ इक कंस कपट करि पठयौ, कछु [illegible]
सु तौ हमारो लिए जात है, [illegible]
सो यह सुन नाहिं सुनि सजनी, सहि [illegible]
धीरज जात, चलौ अबहीं मिलि, दुरि [illegible]
छाँडौ जगजीवन की आसा, अब [illegible]
बिनती कमल नयन सौं करियै, सूर [illegible]

ख—चलत हरि फिरु जु रहत ये प्रान ।
कहँ वह सुख अब कहाँ दुसह दुख, [illegible]
कँह वह कण्ठ स्याम सुन्दर भुज, [illegible]
अँचवत नैन चकोर सुधा बिधु, [illegible]

× ×

सूर सुनिधि हमतैं है बिछुरत, [illegible]

१ सूरसागर पद ४१६२
२ वही, पद ४७३६
३ श्रीमद्भागवत १०. ३६. १६–३१
४ सूरसागर पद ३६०१
५ वही, पद ३६०२

ग—अनल तैं बिरह अगिनि अति ताती।

× × ×

त्योंहिं नागरि नारि बिरह बस, जरति तिया ज्यौं बाती।
जे जरि मरीं प्रगट पावक परि, ते त्रिय अधिक सुहाती।
ढरति नीर नयननि भरि भरि सब, व्याकुलता मदमातीं।
सूर तिया सोई पै जानैं, स्याम सुभग रँग राती ॥[1]

वेणुमाधुरी और उसका प्रभाव—

सूर ने श्रीकृष्ण की वेणुमाधुरी और उसके लोकोत्तर प्रभाव का बड़ा विशद वर्णन किया है। गोपियों और मुरली का सापत्न्य भाव भी दिखाया है। श्रीमद्भागवत के वेणु-गीत और युगल-गीत विशेषकर सूर की प्रेरणा के स्रोत हैं—

क—जब हरि मुरली अधर धरत।
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहै, जमुना जल न बहत।
खग मोहैं, मृग जूथ भुलाहीं, निरखि मदन छबि छरत।
पसु मोहैं सुरभी बिथकित, तृन दंतनि टेकि रहत।
सुक सनकादि सकल मुनि मोहैं ध्यान न तनक गहत।
सूरजदास भाग हैं तिनके जे या सुखहिं लहत ॥[2]

ख—मुरली हम कहँ सौति भई।
नैंकु न होति अधर तैं न्यारी, जैसे तृषा दई।

× × ×

सूर बचन याके टोना से सुनत मनोज जई ॥[3]

ग—मुरली हम पर रोष भरी।
अधर हमारी आपुन अँचवत, नैंकुहुँ नहीं डरी।

× × ×

ऐसी डीठि टरी न उहाँ तैं जउ हम रिसनि भरी।
यह तौ कियौ अकाज हमारौ अब हमें जानि परी।[4]

रासलीला—सूर ने श्रीमद्भागवत की रासपंचाध्यायी का विशद और सांगोपांग वर्णन किया है। किन्तु उनके रास वर्णन में भागवत के रास से कुछ वैशिष्ट्य भी है जो उन पर अन्य ग्रन्थों के प्रभाव का द्योतक है। सूर ने रास को राधाकृष्ण के गान्धर्व विवाह के रूप में भी चित्रित किया है।[5] उन्होंने राधाकृष्ण का विवाह कराया है और रासमण्डल के

---

१ सूरसागर पद १२८१
२ वही, १२३८
३ वही, पद १२८८
४ वही, पद १२९०
५ ज्यौं व्यास बरनत रास।
है गन्धर्व विवाह चित दै सुनौ विविध बिलास। आदि, सूरसागर, पद १६८६

अनुसार है

सूरसागर

सरद निसि देखि हरि हरष पायौ ।
बिपिन बृन्दा रमन, सुभग फूले सुमन, रास रुचि स्याम के मनहिं आयौ ॥[1]

श्रीमद्भागवत

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥[2]

भ्रमरगीत—समस्त हिन्दी-भ्रमर-गीत-साहित्य का स्रोत श्रीमद्भागवत ही है। भागवत के भ्रमरगीत में जो उपालम्भ, व्यंग्य और अनन्य-प्रेम का तत्त्व है, वह सूर आदि सभी कृष्ण भक्त कवियों का आधार है, अपनी सहज प्रतिभा और मनोरम कवि कल्पना से सूर आदि कवियों ने उसे और प्रभावोत्पादक बना दिया है। भागवत की वक्रिम कथन शैली से प्रभावित सूर के भ्रमरगीत का एक पद देखिए—

सूरसागर

मधुकर काके मीत भए ।
द्यौस चारि करि प्रीति सगाई, रस लै अनत गए ।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible][3]

श्रीमद्भाग[illegible]—

[illegible]
[illegible][4]

सूर ने श्रीमद्भागवत [illegible]
विस्तार कर दिया है [illegible]
में दीक्षित होने [illegible]
भक्ति मार्ग [illegible]
भक्ति भावना में [illegible]
कमी नहीं आई। श्रीमद्भागवत [illegible]

---

१ सूरसागर, पद [illegible]

२ श्रीमद्भागवत १०. २९. १

३ सूरसागर पद [illegible]

४ श्रीमद्भागवत, १०, ४७, [illegible]

कृष्ण भक्त कवि सूर हैं।

(२) परमानन्ददास (संवत् १५५०–१६४१) पुष्टि सम्प्रदाय में परमानन्ददास की रचनाओं एवं स्वयं उनको सागर की उपाधि दी गई था।[1] सागर शब्द श्रीमद्भागवत वाचक है जैसा कि श्री द्वारकादास परीख ने वार्ता एवं वल्लभकृत पुरुषोत्तमसहस्रनाम के एक श्लोक के आधार पर बताया है।[2] वार्ता में आता है, "जो अनुक्रमणिका ... श्रीभागवत रूपी समुद्र श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने परमानन्ददास के हृदय में धरयौ।[3] इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि परमानन्ददास ने भागवतीय कृष्ण लीला का ही गान ... का। पुष्टि सम्प्रदाय के अनुसार परमानन्ददास ने भागवतोक्त प्रेमभक्ति को कृष्ण ... चार अवस्थाओं—बाल, कुमार, पौगण्ड और किशोर लीलाओं के माध्यम से प्रतिपादित ... है। बाल लीला के गान से 'स्नेह' कुमार लीला के गान से 'आसक्ति', पौगण्ड ... के गान से 'व्यसन' और किशोर लीला के गान से 'तन्मयता' प्राप्त होती है। ...नन्ददास ने मुख्यतया भागवतोक्त विशिष्ट तत्त्वों में कृष्ण-लीला और गोपी-प्रेम को ... किया।

लीलागान—

(१) बाललीला—(जन्म से ढाई वर्ष की अवस्था तक) परमानन्ददास ने इसके अन्तर्गत कृष्ण जन्म, जन्ममहोत्सव, नामकरण, उलूखल बन्धन, मृत्तिकाभक्षण, माखनचोरी आदि भागवतीय कृष्ण लीलाओं का वर्णन किया है। सर्वत्र कृष्ण के परब्रह्मत्व की ओर ... किया है—

बालविनोद गोपाल के देखत मोहि भावै।
प्रेम पुलक आनँदभरी जसुमति गुन गावै।
बल समेत घन साँवरौ आँगन में धावै।
बदन चूमि गोद लियो सुत जानि खिलावै।
सिव विरंचि मुनिदेवता जाको पार न पावै।
सो परमानँद ग्वाल कौं हँसि भलौ मनावै।[4]

गोपियों के कृष्ण लीलागान सम्बन्धी निम्नांकित पद का आधार श्रीमद्भागवत का ... श्लोक है, जो पद के साथ उद्धृत किया जा रहा है—

हरिलीला गावत गोपीजन आनँद में निसिदिन जाई।
बालचरित्र विचित्र मनोहर कमल नैन ब्रजजन सुखदाई।

---

१ ...श्रृंगार (सं० १६६९ की वार्ता और भावप्रकाश) सम्पा० कंठमणि शास्त्री पृ० १४२
२ परमानन्द सागर, भूमिका ने श्री परीख का लेख, पृ० २
श्लोक यह है— कर्मसिद्धिनिचिन्तन श्रीभागवतसागरात्।
समुद्धृतानि नामानि चिन्तामणिनिभानि हि॥
३ ...श्रृंगार (सम्पा० कंठमणि शास्त्री) पृ० १४२
४ परमानन्द सागर, पद ८०

दोहन मण्डन खण्डन लेवन, मज्जन सुत पटि सेवा ।
चारि याम अवकास नहीं पल सुमिरत कृष्ण देव देवा ॥
भवन-भवन प्रति दीप विराजत, कर कंकन नूपुर बाजै ।
परमानन्द घोष कौतूहल निरखि पाँति सुरपति लाजै ॥[1]

श्रीमद्‌भागवत—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥[2]

(२) कुमारलीला—(ढाई वर्ष से लेकर पाँच वर्ष की अवस्था तक) इसके अन्तर्गत कवि ने गोचारण ; मुरलीवादन आदि का वर्णन किया है तथा श्रीकृष्ण की वेषभूषा सौन्दर्य आदि का भी चित्रण किया है।[3]

(३) पौगण्ड लीला—(पाँच वर्ष से लेकर नौ वर्ष की अवस्था तक) इसके अन्तर्गत कवि ने चीरहरण, गोवर्धन धारण, इन्द्र मान भंग आदि का वर्णन किया है।[4]

(४) किशोर लीला—(नौ वर्ष की अवस्था से ग्यारह वर्ष की अवस्था तक) इसके अन्तर्गत कवि ने वेणुवादन और रासलीला का वर्णन किया है। यह रास भागवत के अनुकूल शरद्‌रास ही है—

रास महल में बन्यो माधो मंडि में मंडि उपजावें हो ।

× × ×

सरद विमल निसि चन्द विराजत, [illegible]
परमानन्द स्वामी कौतूहल, देखत [illegible]।[5]

परमानन्ददास जी ने भागवत की गोपियों [illegible] आदर्श माना है।[6] भक्त कवि ने भगवन्नाम माहात्म्य, [illegible] आदि का भी वर्णन किया है।

४—कृष्णदास—(संवत् १५५६–१६३६) [illegible] मधुरभक्ति को विशेष रूप से ग्रहण कर राधाकृष्ण [illegible] किया।[7] उनके काव्य में मधुर भक्तिरस का [illegible] विविध लीलाओं, श्रीकृष्ण की अलौकिक रूप माधुरी, [illegible] का वर्णन पाया जाता है।

---

१ परमानन्दसागर, पद ८१
२ श्रीमद्‌भागवत १०. ४४ १५
३ परमानन्दसागर, पद ११६, १२०, १२२ आदि
४ वही, पद २७२ से २८९
५ वही, पद २९९
६ परमानन्ददास गोविन्द की प्रेम कथा सुक व्यास कही री [illegible] परमानन्दसागर, पद [illegible]
७ डॉ० दीनदयालु गुप्त, अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भ० [illegible]

(१) लीलागान—

कृष्ण जन्मोत्सव—

नाँचत गोप कुमकुमा छिरकत देत अखिल नग पाँति ।
बरषत कुसुम निकर सुरनर मुनि व्रज जुवती मुसकात ॥[१]

(तुलनीय श्रीमद्भागवत, १० ५)

गोवर्धनधारण और इन्द्रमानभंग—

जै जै लाल गोवर्धन धारी, इन्द्र मान भंग कीनौं ।
बामबाहु राख्यौ गिरिनायक, दासन कौं सुख दीनौं ।
सात दिवस सुरपति पचि हार्‌यौ गोसुत सींग न भीनौं ।
कृष्णदास स्वामी मोहन के पाँय पर्‌यौ मति हीनौं ॥[२]

रासलीला—

रास रस गोविन्द करत बिहार ।
सूर सुता के पुलिन रम्य मँह फूल कुन्द मँदार ।
× × ×
मलय पौन बहै सरद-पूर्निमा-चन्द्र मधुप झंकार ।
× × ×
व्रजभामिनि संग प्रमुदित नाँचत तन चर्चित घनसार ।[३]

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि कृष्णदास ने भागवत के शरद् रास का ही वर्णन किया है ।

(२) श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी—

क—आवत बनहिं कान्ह गोप बालक सँग, नेंचुकी खुर रेनु छुरित, अलकावली ।
भौंहें मनमथ चाप बक्र लोचन बान, सीस सोभित मत्त मयूर चन्द्रावली ॥
× × × ×
श्रवन कुंडल, माल्वतिलक, बेसरिनाक, कंठ कौस्तुभ मनि सुभग त्रिवलावली ।
× × × ×
करतर मुरलिका मोहित अखिल विस्व, गोपिका जनमसि ग्रसित प्रेमावली ।
× × × ×
पीत कौसेय परिधान सुन्दर अंग, चरन नूपुर बाद्य गीत सब्दावली ।[४]

ख—मो मन गिरिधर छबि पर अटक्यौ ।
ललित त्रिभंगी अंगन पर चलि, गयौ तहाँई ठटक्यौ ।
सजल स्याम घन बरन लीन ह्वै, फिर चित अनत न भटक्यौ ।[५]

---

१ अष्टछाप परिचय, कृष्णदास काव्य संग्रह, पृ० २२६
२ वही पृ० २२६
३ वही, पृ० २२१
४ वही, पृ० २२०
५ वही पृ० २२४

(३) श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व—

ध्यावत कान्ह विमल जस तेरौ।
गावत सिव सारद मुनि नारद, प्रान जीवन धन मेरौ।
गावत वेद बंदिजन निसदिन, मन मुनि सुख अनेरौ।
गावत सेष महेन विविध विधि, रस रसिकहिं सुख केरौ॥[1]

(४) गोपी प्रेम—

रूपासक्ति—

क—गिरिधर देखेंई सुख होय।
नैनवन्त कौ यहै परमफल कोंही विधि भई जोय।
महामत्त नील अम्बुज कौं, रूप लियो है निचोय।
कृष्णदास नाथ नवरंगहि, मिलें बिरह दुख होय॥[2]
तुलनीय—'अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः' इत्यादि श्रीमद्० १०. २१

कृष्णदास ने भी कुम्भनदास की भाँति गोवर्धन पर्वत के लिए प्रयुक्त भागवत के 'हरिदासवर्य' शब्द का प्रयोग किया है—

बन्यौ अद्भुत भेष गावत, मुरलिका उल्लास।
कृष्णदास नमित चरन 'हरिदासवर्य' निवास।[3]

(५) गोविन्दस्वामी—(संवत् १५६२–१६४२) पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाने के उपरान्त गोविन्द स्वामी ने गुसाईं विट्ठलनाथ जी के व्याख्यानों से श्रीमद्भागवत का ज्ञान प्राप्त किया था। इनकी भक्ति सख्यभाव की थी।[4] इनके रचित ५७२ प्रकीर्ण पदों का सम्भवतः सबसे बृहत्संग्रह कांकरौली से प्रकाशित हो चुका है। इन पदों में भागवतीय कृष्ण-लीला, कृष्ण की रूप माधुरी, कृष्ण के परब्रह्मत्व और गोपी प्रेम के अनुरूपतया वर्णन के अतिरिक्त सामान्य भक्ति तत्त्वों, तथा भक्ति के श्रेष्ठत्व, गुरु महिमा, आदि का भी वर्णन है। पुष्टि सम्प्रदाय के जो वर्षोत्सव श्रीमद्भागवत पर आधृत हैं उनका वर्णन भी गोविन्द स्वामी ने किया है।[5]

लीलागान—कृष्णलीला और उसके उपकरणों [illegible], गोप सखाओं के साथ विविध क्रीड़ाओं, गोचारण, [illegible] वेणुवादन गोपियों की तन्मयता, रासक्रीड़ा, गोवर्धन [illegible] विहार [illegible] और व्रजमाहात्म्य का वर्णन किया है।[6] विस्तार भय से हम [illegible] यहाँ गोविन्द स्वामी के केवल उन पदों के कुछ [illegible] हैं जो [illegible] श्लोकों के अविकल अनुवाद हैं—

---

१ अष्टछाप परिचय, कृष्णदास काव्य संग्रह पृ० २४०
२ वही, पृ० २३२
३ वही, पृ० २४०
४ डॉ० दीनदयालु गुप्त: अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, भा० १ [illegible] पृ० २६१
५ गोविन्द स्वामी (साहित्यिक विश्लेषण, वाणी और पद संग्रह) भूमिका पृ० १५
६ वही, भूमिका

रासलीला के गोपीगीत प्रसंग में—

अहो पिय कैमेंकै धरत मृदुल चरन धरनि ।

गिरि की कांकरी अति कठिन तृन अंकुर रसनाधर जियहिं सुधि करिकरि छतियाँ

सरसि सुजात गरभ की श्रिय मुसत हमारे कठिन उर सहसा ही न धरि सकै डर

श्रीमद्भागवत—

क – यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु. भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु

तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां न.

ख—शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।[३]

वेणुमाधुरी के युगलगीत प्रसंग में—

बेनु बाजत री मोहन कल ।

बाम कपोल बाम भुज पर धरि वलगितभ्रूव रस चपल दृगंचल ।[४]

सिन्दूरारुण अधर सुधारस पूरत रन्ध्र मृदुल अँगुली दल ।[५]

मोहत व्योम विमान बनिता खसित नीवी सुध्यौ न अंचल ।[६]

श्रीमद्भागवत—

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।

कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ।

व्योमयान वनिताः सहसिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।

काममार्गसमर्पित चित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ।[७]

वेणुमाधुरी के प्रसंग में—

धनि धनि वृन्दारण्य कुरंगिनि ।

श्रीमुख कमल पीवति सखी सादर कृष्णसार पति संगिनि ।

चरन कमल कुंकुम रंजित तन कुच अवलेप करति—

युवति माधि मनसिज पुलिंदिनि ।

गोविन्द प्रभु को जु अमृत नाद सुनि थकित प्रवाह तरंगिनि ।[८]

श्रीमद्भागवत—

धन्याःस्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ।

आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥

१ गोविन्दस्वामी, पद संग्रह पद २५७

२ श्रीमद्भागवत १०. ३१. १९

३ वही. १०. ३१. २

४ गोविन्दस्वामी, पद ४२०

५ वही, पद ४२०

६ वही, पद ४२१

७ श्रीमद्भागवत १०, ३५. २. ३

८ गोविन्दस्वामी, पद ५५०

९ श्रीमद्भागवत १०. २१. ११

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥[1]

(६) छीतस्वामी—(संवत् १५७२–१६४२)

भागवत-माहात्म्य एवं प्रामाण्य—श्री छीतस्वामी ने श्रीमद्भागवत एवं श्रीकृष्ण की लीला के उपकरण यमुना, गोवर्धन, गोकुल आदि का माहात्म्य गाया है—

जब लगि जमुना गाइ गोवर्धन गोकुल गाउँ गुसाईं ।
जब लगि श्री भागवत कथा-रस जब लगि कलियुग माहीं ।[2]

अपने गुरु गोसाईं विट्ठलनाथ जी की स्तुति (बधाई) में उनके भागवत-ज्ञान की चर्चा करते हुए उन्होंने श्रीमद्भागवत को वेदवाणी कहा है—

जो बानी जु वेद की कहियत श्रीभागवत मांझ अवगाहीं ।[3]

छीतस्वामी ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि गोसाईं श्री विट्ठलनाथ जी ने मुझे अन्य मार्ग छोड़कर भक्ति मार्ग में रुचि दिलाई और श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान् को सर्वस्वार्पण करने की शिक्षा दी—

अन्य मारग तजि भक्ति मारग रुचि श्री गिरिधर प्रगट दिखाई ।
तन मन प्रान समर्पन कीनों श्रीभागवत विधि नई सिखाई ॥[4]

श्री छीतस्वामी ने भागवतोक्त सामान्य भक्ति-तत्त्वों में से विशेष कर गुरुमहिमा को ग्रहण किया है और अपने गुरु श्री विट्ठलनाथ जी को ईश्वर करके ही माना है।[5] भागवतोक्त विशिष्ट तत्त्वों में उन्होंने विविध कृष्ण लीलाओं, श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी, श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व और गोपी प्रेम का वर्णन किया है। इनके कृष्ण लीला के पद बिलकुल अन्य वल्लभीय सम्प्रदाय के भक्त कवियों के पदों के समान हैं।[6]

लीलागान—छीतस्वामी ने कृष्ण की गोचारण, वन भोजन, यमलार्जुनोद्धारलीला, ब्रज-विहार, वेणुवादन और रासलीला का वर्णन किया है। इनका रास वर्णन भी श्रीमद्भागवत के अनुसार शरद्‌रास का वर्णन है—

क—मुकुलित बकुल मधुर कुल कुंज प्रफुल्लित कमल कुमुद फूले ।
× × × ×
[illegible] ।[7]

ख—छीतस्वामी गिरिधरन, श्री विट्ठल [illegible] ।[8]

---

१ श्रीमद्भागवत, १०. २१. १७
२ छीतस्वामी, जीवनी और पदसंग्रह पद ४२
३ वही, पद ३७
४ वही, पद १८८
५ वही, पद १०९–१६०
६ वही, पद १२६
७ वही, पद ३
८ वही, पद ११७

गोचारण से व्रज में आगमन—

आवै माई नंदनंदन सुख दैंनु।
सध्या समैं गोप बालक सँग आगे राजत धैंनु।
गोरज मण्डित अलक मनोहर, मधुर बजावत बैंनु।
इहि विधि घोष माँझ हरि आवत सबकौ मन हरि लैंनु।[१]

(तुलनीय, श्रीमद्भागवत, १०. २१. ७)

छीतस्वामी ने कृष्णलीला के उपकरणों, गौओं, वृन्दावन, यमुना, और गोवर्धन का माहात्म्य भी गाया है।[२]

गोपी-प्रेम—छीतस्वामी ने श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों की रूपासक्ति, तन्मयतासक्ति आदि का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण की वेणुमाधुरी का प्रभाव भी उनका प्रिय वर्ण्यविषय है—

क—मेरे नैंननि इहै बानि परी।
गिरिधरलाल मुखारविन्द छबि छिनु छिनु पीवत खरी।
× × ×
हरि नख उरहिं विराजत मनिगन जटित कंठ कंठसिरी।
छीतस्वामी गोवर्धनधर पर वारौं तन मन री।[३]

ख—गिरिधरलाल के रँग राँची।
तन सुधि भूलि गई मोकों अब, कहति हों तोसों साँची।
× × ×
मन हरि लियौ नन्द के नन्दन चितवनि माँझ बिकाने।
जादिन तैं मेरी दृष्टि परे सखि! तब तैं रह्यौ न जावै।
ऐसो है कोउ हितू हमारो छीतस्वामी सों मिलावै।[४]

ग—ऐसी को नार जो देखत व्रत तैं न टरै मेरे जीवन मूली।[५]

(तुलनीय श्रीमद्भागवत १०, २९. ४०)

घ—मुरली सुनत गई सुधि मेरी।
गृह कारज सब भूलि गयौ मोहिं मपति करति हौं तेरी।
इक टक लागि सुनति स्रवननि पुट जैसे चित्र चितेरी।
छीतस्वामी गिरिधर मन करष्यौ इत उत चलै न फेरी॥

(७) चतुर्भुजदास (संवत् १५८७–१६४२)—चतुर्भुजदास ने अपने स्फुट पदों में कृष्ण के जन्म से गोपी विरह तक की व्रज लीलाओं का वर्णन किया है।[६] इनकी रचना में

---

१ छीतस्वामी जीवनी और पदसंग्रह, पद १२०
२ वही, पद १११–११६, १२३, ९५
३ वही, पद ९७
४ वही, पद १००
५ वही, पद १२१
६ अष्टछाप परिचय, पृ० २७५

रथवत्तुल्य माना है।[2] कृष्णलीला में विशेषकर इन्होंने बालक्रीड़ा माखनचोरी वनभोजन गोचारण और रासक्रीड़ा का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी वेणुमाधुरी और गोपीप्रेम भी इनके प्रिय विषय हैं।[3]

१ लीलागान—माखनचोरी –

घर घर डोलत माखन खात।
ग्वाल बाल सब सखा संग लिएँ सूने भवन भीत [illegible]।
जब ग्वालिन जल भरि घर आई तबहिं भजे मुसकात।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधरनलाल सों माखिन कछू बसात।[4]

(द्रष्टव्य श्रीमद्भागवत १०. ८)

वनभोजन—

सुन्दरसिला खेल की ठौर।
मदनगुपाल जहाँ अधिनायक, बहुँ दिसि सखा मण्डली और।
बाँटत छाक गोवर्धन ऊपर, बहुविधि कानन बैठे ठौर।
हँसिहँसि भोजन करत परस्पर, चाखिचाखि लैं करौ [illegible] और।
कबहुँक बोलि गिरि के सिखर पर लै नाम धूमरी धौर।
'चतुर्भुज' प्रभु लीलागम रीझे श्रीगिरिधरलाल रसिक सिरमौर।।[5]

(द्रष्टव्य श्रीमद्भागवत १०. १३. ११)

रासलीला –

प्यारी मुख दीवा मेलि, नृत्यत गोप सुजान।
मुदित परस्पर लेत बनि ले सुगति, रूपरासि राधे गिरिधरन [illegible]।
सरस मुरली कुनि सों मिले [illegible] सुर रासरंग भीने सबै और [illegible]।
'चतुर्भुज' प्रभु स्यामास्याम की नटनि देखि मोहे [illegible] [illegible] [illegible]।[6]

(द्रष्टव्य श्रीम[illegible])

२—रूपमाधुरी –

आजुकी सिंगार सुभग साँवरे गोपाल को कहत न आवें देखे [illegible]।

× × × ×

मकर कुण्डल तिलकभाल कस्तूरी अनि रसाल, चितवनि कोमल-चितवन [illegible]।
कंठ श्री बनमाल, फेंटा कटि अति उताल छवि निरखत त्रिभुवनतिय [illegible]।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिवरधर नवकिसोर सुन्दर सुघर, ऐसी कोऊ भामिनी [illegible] है।[7]

---

१ डॉ० दीनदयालु गुप्त: अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय प्र० खण्ड पृ० २४६
२ वही, पृ० १०१, १०२
३ अष्टछाप परिचय: (चतुर्भुजदास काव्य संग्रह) पृ० २५६–२६६
४ वही १९
५ वही, पद २२
६ वही, पद ५६
७ वही, पद ३५

३—वेणुमाधुरी—

बेनु धरयौ कर गोविन्द गुननिधान ।
जात हुती बन काज सखिन संग ठगी धुनि सुनि कान ।
मोहन मोहे सकल खग मृग पसु, बहुविधि ससक सुर बंधान ।
'चतुर्भुजदास' प्रभु गिरिधर तन मन चोरि लियो करि मधुर गान ।।[1]

४—गोपीप्रेम—रूपासक्ति, तन्मयतासक्ति, परमविरहासक्ति—

क—गोपाल कौ मुखारविन्द देख्यौ आज माई ।
तन मन तैं ताप तिमिर निरखत ही नसाई ।
सरस सरोज सुधा नैननि भरि पाई ।
सुख समुद्र सोभा मोपै कही हू न जाई ।
धर्म कर्म लोक लाज सुत पति तजि धाई ।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर मैं जाँचे री माई ।।[2]

ख—अब हौं कहा करौं री माई ।
जब तैं दृष्टि परयौ नंदनंदन, पल भर रह्यौ न जाई ।
× × ×
निसिबासर मोहि कल न परत है, घर आँगन न सुहाई ।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधरन छबीले, हँसि मन लियौ है चुराई ।।[3]

८—नन्ददास (संवत् १५९०–१६४०) अष्टछाप के कवियों में भक्ति भाव के माधुर्य, सर्वहितदृष्टि, रचना-विस्तार और काव्यत्व की दृष्टि से सूर और परमानन्ददास के बाद नन्ददास का ही नाम आता है ।[4] डॉ० दीनदयालु गुप्त जी ने नन्ददास के स्फुट पदों और उनके अतिरिक्त जिन १३ ग्रंथों को प्रामाणिक माना है, वे सभी "कृष्णभक्ति अथवा कृष्णचरित्र से लगाव रखते हैं ।"[5] डॉ० गुप्त के मतानुसार नन्ददास की प्रामाणिक रचनाएँ कालक्रमानुसार ये हैं—(१) रस मंजरी (२) अनेकार्थ मंजरी, (३) मान मंजरी, (४) दशमस्कन्ध भाषा, (५) स्याम सगाई, (६) गोवर्धन लीला, (७) सुदामा चरित्र, (८) विरह मंजरी (९) रूप मंजरी, (१०) रुक्मिणी मंगल, (११) रास पंचाध्यायी, (१२) भँवरगीत और (१३) सिद्धान्त पंचाध्यायी ।[6] इनमें से 'दशमस्कन्ध भाषा' तो प्रत्यक्ष ही श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध के कुछ अंश का भावानुवाद है, 'रास-पंचाध्यायी', 'गोवर्धन-लीला', 'भँवरगीत', 'सुदामा चरित्र' और रुक्मिणी मंगल श्रीमद्भागवत की कृष्णलीला का वर्णन करते हैं । उनके 'रसमंजरी', 'रूप मंजरी', सिद्धान्त पंचाध्यायी आदि ग्रंथ भी 'मधुर-

---

१ अष्टछाप परिचय: (चतुर्भुजदास काव्य संग्रह) पृ० ६१
२ वही, पद ४२
३ वही, पद २१
४ डॉ० दीनदयालु गुप्त, अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भा० २, पृ० ८६५
५ वही, भाग १ पृ० ३७४
६ वही, भाग १ पृ० ३७०

भक्ति' का ही विवेचन करते हैं।[1] कहना न होगा कि इस भक्ति का प्रतिपादन भी श्रीमद्भागवत में हुआ है। अतः हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि कृष्णभक्ति के प्रतिपादन में नन्ददास का प्रधान उपजीव्य श्रीमद्भागवत ही है।

श्रीमद्भागवत का माहात्म्य-कथन—नन्ददास ने निम्नलिखित पंक्तियों में श्रीमद्भागवत का माहात्म्य गाया है—

> जब दिनमनि श्रीकृष्ण दृगनि तें दूरि भए दुरि।
> पसरि परयो अँधियार सकल संसार घुमड़ि घुरि।
> तिमिर ग्रसित सब लोक-ओक लखि दुखित दयाकर।
> प्रकट कियो अद्भुत प्रभाउ भागवत दिवाकर॥[2]

श्रीमद्भागवत के पूर्वोक्त प्रायः सभी सामान्य और विशिष्ट तत्वों के उदाहरण हमें नन्ददास की रचनाओं में प्राप्त होते हैं। उन्होंने इन तत्वों का दार्शनिकता के साथ सूक्ष्म प्रतिपादन भी किया है। यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

सामान्य तत्त्व

१—भक्ति का सर्वश्रेष्ठत्व—

> ज्योंही हिय हरि चरित्र अमृत-सिन्धु सों रति मानी।
> नन्ददास ताहि कूँ मुक्ती लोन को सी पानी॥[3]

२—गुरु महिमा—

> क—जयति सकल तीरथ फलित, नाम सुमिरन साथ।[4]
> ख—अति प्रताप महिमा सभाव जस लोक ताप अपहरन।[5]

विशिष्ट तत्त्व

१—लीलागान—

श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं में नन्ददास ने कृष्ण-जन्म, जन्म-महोत्सव, बालक्रीडा, वनभोजन, गोवर्धन धारण, रासलीला आदि का वर्णन किया है और यमुना, ब्रजभूमि आदि का माहात्म्य गाया है।[6]

रासलीला—

> कोउ मुरली सँग रली रँगीली रसहि बढ़ावति।
> कोउ मुरली को छीनि [illegible]
> ताहि साँवरो कुँवर रीझि [illegible]
> चुम्बन करि मुख सदन [illegible][7]

([illegible])

---

१ डॉ० दीनदयाल गुप्त, अष्टछाप और वल्लभ-[illegible]
२ नन्ददास ग्रंथावली (सम्पा० श्री ब्रजरत्नदास) [illegible]
३ नन्ददास ग्रंथावली पृ० २२६
४ वही, पृ० २२४
५ वही, पृ० २२६
६ वही, (पदावली) पृ० ३३२-३३७)
७ वही, रासपंचाध्यायी, पृ० २१

यमुना महिमा —

भक्त पै कृपा करी श्री जमुना जी ऐसी ।
छाँडि निज धाम विश्राम भूतल कियो प्रगट लीला दिखाइ हो तै
परम परमारथ करत हैं सबन कौं देति अद्भुत रूप आप जै
'नन्ददास' जो जन हठ करि चरन गहै, एकु रसना कहा कहै विसे

रज महिमा—

जो गिरि रुचे तो बसो श्री गोवर्धन, गाम रुचे तो बसो नँदगाम
नगर रुचे तो बसो श्री मधुपुरी, सोभा सागर अति अभिराम
सरिता रुचे तो बसो श्री यमुना-तट, सकल मनोरथ पूरन काम
'नन्ददास' कानन रुचे तो, बसो भूमि वृन्दावन धाम ॥[2]

२ —श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी—

गाइ खिलावत सोभा भारी ।
गोरज रंजित बदन कमल पै, अलक झलक कुँवरारी ।
× × ×
स्रम कन राजै भाल गंड भ्रू, इहि छबि पै बलिहारी [3]

३ —श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व—

नन्द भवन को भूषन माई ।
जसुदा को लाल बीर हलधर को, राधारमन सदा सुखदाई ।
इन्द्र को इन्द्र देव देवन को ब्रह्मा को ब्रह्म महा बरदाई ।
काल को काल ईस ईसन को, बरुन को बरुन महा बरदाई ।
सिव को धन संतन को सर्वस, महिमा वेद पुरानन गाई ।
नन्ददास को जीवन गिरिधर गोकुल मंडन कुँअर कन्हाई ।[4]

रामकृष्ण का अभेद—

रामकृष्ण कहिए उठि भोर ।
वोहि अवधेस वोहि ब्रजजीवन, धनुष धरन अरु माखन चोर
इतमें अयोध्या निर्मल सरजू, उत जमुना जल करत किलोल
इतमें दसरथ-पुत्र कहाए, उतमें कहाए नन्दकिशोर
× × ×
नन्ददास के वे दोउ ठाकुर, दसरथ-सुत बाबा नन्दकिशोर ।[5]

---

१ नन्ददास ग्रंथावली, पदावली, पृ० ३३८
२ वही, पदावली, पृ० ३३०, विशेष द्रष्टव्य, रासपंचाध्यायी, श्री वृन्दावन वर्णन, पृ
३ वही, पदावली, पृ० ४३६, अन्यत्र भी, पृ० ३५०
४ वही, पदावली, पृ० ३४३
५ वही, पदावली, पृ० ३२४

४—गोपी प्रेम—

जदपि जगत् गुरु नागर व्रजपति-नन्द-दुलारे।
पै गोपिन के प्रेम अग अपने मुख हारे।
तब बोले पिय नव किसोर, तुम सुनौ पियारे।
अपुने हिय तैं दूरि करौ, सब दोष हमारे।
कोटि कलप लगि तुम प्रति, प्रति उपकार करौं जो।
हे मन हरनी तरुनी उऋण न होउँ तबौ तो।[1]

(तुलनीय श्रीमद्भागवत १०. ३२. २२)

निष्कर्ष

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर हम देखते हैं कि अष्टछाप कवियों का समस्त वाङ्मय भागवत-मय है। उनके काव्य में श्रीमद्भागवत अपनी समग्रता के साथ दुग्ध में शर्करा के समान कुछ इस प्रकार ओत-प्रोत है कि उनको कुछ तत्त्वों के वर्गीकरण के आधार पर पृथक्-पृथक् दिखाने की चेष्टा हास्यास्पद-सी मालूम होती है। इन अष्ट सखाओं को भागवतोक्त कृष्ण सखा[2] ठीक ही कहा गया है[3]। क्योंकि इनका लीलागान प्रत्यक्ष लीलावलोकन के समान ही जीवन्त है। कवि प्रवर रसिकदास ने अष्टछाप के विषय में जो श्रद्धा-गद्गद उद्गार प्रकट किए हैं, हम भी सर्वथा उसका समर्थन करते हैं—

जो जन अष्टछाप गुन गावत।
चित्त निरोध होत ताही छिन हरिलीला दरसावत।
सूर सूर जस हृदै प्रकासत परमानन्द बढ़ावत।
छीतस्वामि गोविंद कुमल बस, तन पुलकित जस गावत।
कुंभनदास चत्रभुजदासहिं, गिरिलीला प्रकटावत।
नन्ददास कृष्णदास रास रस उज्ज्वल अंग अंग समावत।
'रसिकदास' जन कहाँ लौं बरनौं श्री वल्लभ मन भावत।[4]

---

१ नन्ददास ग्रंथावली रासपंचाध्यायी, पृ० २०, २१

२ श्रीमद्भागवत १० २२, ३१

३ सूरदास सो तो कृष्ण तोक परमानंद जानो।
कृष्णदास सो ऋषभ छीतस्वामि सुबल बखानो।
अर्जुन कुंभनदास, चत्रभुजदास विशाला।
नन्ददास सो तेजस्वी गोविन्द श्रीदामा।
अष्टछाप आठों सखा 'द्वारकेश' परमान।
जिनके कृत गुनगान तें, होत सुजीवन प्रान।
श्री द्वारकानाथ कृत धन्यम, उद्धृत, डॉ० दीनदयालु गुप्त-
अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, प्रयाग, पृ० ८, ९

४ उद्धृत : अष्टछाप परिचय: सम्मति- पृ० २

उक्त पद में स्पष्ट ही अष्टछापी कवियों द्वारा स्कन्धीय कृष्ण लीला) के गान की ओर संकेत किया गय [illegible] लीला का, जिसमें उनका चित्त विशेष रूप से [illegible] भक्ति साहित्य में अष्टछाप के कवियों का जो [illegible] [illegible] व्यर्थ है। श्रीमद्भागवत इन अष्टछापी कवियों [illegible] उपरान्त हिन्दी साहित्य के भी केन्द्रीय प्रेरणा [illegible] है, जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे। वल्ल [illegible] नदियों ने श्रीमद्भागवत की मधुरोपासना को [illegible] [illegible] अध्याय में निरूपित किया गया है।

सप्तम अध्याय

श्रीमद्भागवत एवं पुष्टिमार्गेतर वैष्णव सम्प्रदायों के कृष्ण भक्त हिन्दी कवि ।

जहाँ वल्लभ-सम्प्रदाय के अष्टछापी कवियों ने बहुधा श्रीमद्भागवत की बाल, कुमार और पौगण्ड कृष्ण लीलाओं का विशेष गान किया वहाँ चैतन्य, राधावल्लभ, आदि सम्प्रदायों ने प्रमुखतया श्रीमद्भागवत की किशोर-कृष्णचरित माधुर्य-लीला को, जिसका चरम विकास गोपियों की प्रेमलक्षणाभक्ति में दृष्टिगोचर होता है अपनी रस-साधना का प्राण स्पन्दन बनाया। यद्यपि यह गोपी प्रेम अन्य पुराणों, प्राचीन संस्कृत काव्यों, और अपभ्रंश की काव्य परम्पराओं के प्रभाव से कालान्तर में ऐकान्तिक होते होते केवल राधा कृष्ण के युगल-प्रेम में ही आबद्ध होगया और राधावल्लभ सम्प्रदाय तक पहुँचते-पहुँचते इसमें राधा का ही प्राधान्य होगया, तथापि यह बात निर्विकल्प रूप से कही जा सकती है कि कृष्ण-प्रेम की परम तन्मयावस्था और उनके मर्मस्पर्शी भावों की स्वरूपोपलब्धि में सभी वैष्णव कवियों का आदर्श श्रीमद्भागवत का गोपी प्रेम ही है। एक विशिष्ट व्यक्तित्व (राधा) के समावेश-मात्र से मूल प्रेम भावना में कोई अन्तर नहीं पड़ा है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है श्रीमद्भागवत में राधा का स्पष्ट नामोल्लेख न होने पर भी रासलीला के प्रसंग में श्रीकृष्ण द्वारा एक विशिष्ट गोपी को निभृत निकुंज में ले जाकर रहस्यकेलि का संकेत वैष्णव कृष्ण-प्रेम-लीला के साहित्य को प्रभावित करने की दिशा में कम महत्वपूर्ण बात नहीं है। राधावल्लभीय, हरिदासीय आदि सम्प्रदायों में नित्यविहार और निकुंज लीला आदि की कल्पना कृष्ण की श्रीमद्भागवतोक्त मधुर-रस प्रधान रासलीला से ही प्रभावित है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में रासलीला के श्रवणादि का फल हृद्रोग (काम) का नाश बताया गया है, वैसे ही राधावल्लभीय सम्प्रदाय में रासलीला को 'कामजयी-लीला' माना जाता है।[1] श्रीकृष्ण की इस मधुर लीला को जिन वैष्णव सम्प्रदायों में विशिष्ट महत्व दिया गया, वे हैं—

१—निम्बार्क सम्प्रदाय।

२—चैतन्य सम्प्रदाय।

३—हित हरिवंश का राधावल्लभ सम्प्रदाय एवं

४—हरिदास का सखी सम्प्रदाय।

इन सम्प्रदायों में श्रीकृष्ण की माधुर्य [illegible]

१ राधावल्लभ सम्प्रदाय: सिद्धान्त और साहित्य [illegible]

सम्प्रदायों पर श्रीमद्भागवत का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। यहाँ हम संक्षेप में उक्त सम्प्रदायों के प्रमुख कवियों पर श्रीमद्भागवत के प्रभाव का निरूपण करेंगे। कवि संख्या को महत्त्व न देकर प्रतिनिधित्व का ही ध्यान रखा गया है।

१—निंबार्क-सम्प्रदाय के कवि

१—श्रीभट्ट -(संवत् १५९५ वि०) ये निम्बार्क मतानुगामी सुप्रसिद्ध केशव काश्मीरी के पट्टशिष्य थे। श्रीभट्ट ने सर्व प्रथम वैधी भक्ति प्रधान निम्बार्क सम्प्रदाय में रसो-दमन का समावेश किया और राधा कृष्ण की प्रेम-लीला का वर्णन करते हुए 'युगल-शतक' नामक सरस ग्रंथ लिखा। इस ग्रंथ की विस्तृत पद्यात्मक टीका इनके शिष्य श्रीहरिव्यास देवाचार्य ने लिखी थी, जो 'महाबानी' के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीभट्ट ने राधा कृष्ण की अनन्य भक्ति, रूप माधुरी, व्रज माहात्म्य, वेणुमाधुरी आदि का सुन्दर वर्णन किया है—

व्रजमहिमा—

व्रजभूमि मोहिनी मैं जानी।
मोहन कुंज, मोहन वृन्दावन, मोहन जमुना पानी।
मोहन नारि सकल गोकुल की बोलति अमृत बानी।
'श्रीभट' के प्रभु मोहन नागर, मोहनि राधा रानी।[२]

रूपमाधुरी—

अंग अंग दुति माधुरी, बिबि मुख चन्द्र चकोर।
अटके 'श्रीभट' दृष्टि में, नटवर नवल किशोर।[३]

अनन्यभक्ति एवं वेणुमाधुरी—

बंसी बिरमंनी-लाल की मनमीन की बनसी।
कहा अन्तर भरि दुरि रहे छई मूरति घनसी।
हरि देखे बिनु क्यों रहौं बीरज नहिं तनसी।
जै श्रीभट हरिरस बस भई, सुनि धुनि नेकु भनसी।[४]

२—श्री हरिव्यासदेवाचार्य—(लगभग सं० १६०० वि०) ये निम्बार्क-सम्प्रदाय के एक प्रमुख आचार्य हैं। इनकी उपाधि 'परमहंसवंशाचार्य' थी। कविता में ये अपना नाम 'हरिप्रिया' लिखते थे। इनके ग्रंथ का नाम 'महावाणी पंचरत्न है'। इसमें पाँच अध्याय हैं। ग्रंथ में निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्तों एवं राधा कृष्ण की निकुंज-लीला का वर्णन है—

---

१ वृन्दाटवी यदि रवीन्दुदुकारसिंधुर, कोटिप्रभाविभवकारि महाप्रभाढ्या।
भावग्रथा महदपि प्रतिभाति चित्ते, वैरौचवादि नहि तस्य मनस्युदेति॥
श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीकृत, वृन्दावनमहिमामृत, श्लोक २७

२ व्रजमाधुरीसार (श्रीभट्ट) पृ० ११२
३ वही पृ० ११४
४ वही पृ० ११३

युगल प्रेमलीला—

प्रेम पयोधि परे दोउ प्यारे निकसत नाहिन कबहूँ रैन दिन।
जल तरंग नैननि न्यारे ज्यों न्यारे होत न जतन करो छिन।
× × × ×
'श्री हरिप्रिया' लगे लग दोऊ निमिष न रहें ए इमि ए उमि छिन।[1]

निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्य कवि—श्रीहरिव्यासदेवाचार्य के शिष्य परशुराम-देव (रचनाकाल सं० १६७७) ने श्रवण कीर्तनादि नवधाभक्ति का अनुसरण किया था। इनके रचित 'परशुराम सागर' ग्रंथ में 'श्रीकृष्ण चरित्र', सिंगार सुदामा चरित्र, द्रुपदा गजग्राह का, प्रह्लाद चरित्र आदि छोटे ग्रंथों का संग्रह है। श्री परशुरामदेव के शिष्य श्री 'तत्ववेत्ता' (जन्म सं० १६८०) भी ज्ञानी-भक्त थे और भक्तों के गुणगान में कवित्त लिखते थे।[2] प्रसिद्ध भावुक भक्त कवि घनानन्द अथवा आनन्दघन (जन्म सं० लगभग १७४६ वि०) भी निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव थे।

२—राधावल्लभ सम्प्रदाय के कवि

गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी (सं० १५५९-१६०९) थे स्वयं श्री राधावल्लभ वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। इन्होंने दार्शनिक महत्त्वों और विधि निषेधों में न जाते हुए शुद्ध रसोपासना को अपनाया और प्रेमलक्षणाभक्ति का प्रचार किया। इनके सम्प्रदाय में इन्हें साक्षात् श्रीकृष्ण की वंशी का अवतार कहा गया है।[3] इन्होंने अपने सम्प्रदाय में राधा को सर्वोपरि महत्त्व और प्राधान्य दिया है। 'राधावल्लभ' होने के कारण ही कृष्ण का महत्त्व है, स्वतंत्र नहीं। हितहरिवंश जी ने अपने संस्कृत के सुप्रसिद्ध स्तोत्रग्रंथ 'राधासुधानिधि' में अपनी परमाराध्या राधा का अतिशय भक्ति विह्वल होकर मधुर स्तवन किया है। २७० श्लोकों के इस ग्रंथ में राधाकृष्ण का उत्कट प्रेम निकुंज-लीला, रासलीला, वृन्दावन धाम एवं यमुना का अत्यन्त सरस वर्णन है। हितहरिवंश जी का दूसरा संस्कृत ग्रंथ 'यमुनाष्टक' है जिसमें यमुना का माहात्म्य और स्तुति-गान है। श्री हितहरिवंश जी के दो ब्रजभाषा ग्रंथ 'हितचौरासी' एवं 'स्फुटवाणी' हैं। इनमें रासलीला, वनविहार, प्रेम, अनन्यता आदि विषयों का वर्णन है।

(अ) सामान्य तत्त्व—भक्ति, वैराग्य—

क—तू बालक नहिं भरयो सयानप काहे कृष्ण भजन नहिं कीजै।
अनित सुमिरि तजिव सुरभित पय मन अचिरन तरुन जरा भीजै।
जय श्री हितहरिवंश नरकमांति दुस्तर यमद्वारे कठिनता भाजै।
भव अज कठिन मुनीजन दुर्लभ पावत क्यों तू मनुज जन्म छीजै।[4]

ख—मानुष को तन पाय भजो ब्रजनाथ को।
दर्वी लेकैं मूढ़ जरावत हाथ कों।[5]

---

१ खोज रिपोर्ट (१९१२-१९१६ ई०) ना० प्र० सभा काशी, विवरणांक ९४
२ राजस्थान का पिंगल साहित्य (श्री मोतीलाल मेनारिया) पृ० ७१-७५
३ [illegible] उद्धृत, भूमिका (शिवाय) श्री हितसुधासागर पृ० २
४ श्री हितसुधासागर, स्फुटवाणी, पृ० १५२
५ वही, पृ० १५२

नाममहिमा, गुरुमहिमा—

जय श्री हितहरिवंश विचारिकैं मनुज देह गुरुचरण गहि।
सकहि तौ सब परपंच तजि, कृष्ण कृष्ण गोविन्द कहि।[1]

सत्संग एवं प्रेमलक्षणाभक्ति—

तनहि राखि सतसंग मे, मनहि प्रेम रस भेव।
सुख चाहत हरिवंश हित, कृष्ण कल्पतरु सेव॥[2]

(आ) विशेष तत्त्व—

(१) लीलागान—श्रीकृष्ण जन्मोत्सव (नन्दमहोत्सव)

आनँद आज नन्द के द्वार।
दास अनन्य भजन रस कारन प्रगटे लाल मनोहर ग्वार।
× × × ×
युवति यूथ मिलि गोप विराजत, बाजत पणव मृदंग सुतार।
जयश्री हितहरिवंश अजिर वर, वीथिनु दधि मधु दुग्ध-हरद के खार॥[3]

रासलीला—श्री हितहरिवंश जी ने कृष्ण की इस मधुर लीला के गान में अपने 'चौरासी' में इतस्ततः विकीर्ण सत्रह पद लिखे है। 'रास समय' मे श्रीमद्भागवत के शरद् रास के अतिरिक्त वसंतरास का भी वर्णन है। 'हित चौरासी' मे रासलीला जो का वर्णन है उसका सारांश यह है—'सुखनिधान श्री व्रजराजकुमार ने कालिन्दी के तट पर रास रचा है। रसमयी मुरली एवं स्वर्गीय संगीत का नाद हो रहा है। परम रमणीया भूमि में शीतल मन्द सुगन्ध मलय-मारुत बह रहा है। जाती पुष्प खिल रहे हैं। शरदृतु है, पूर्णिमा की रात्रि है। स्वच्छ चन्द्रिका छिटकी हुई है। नखशिख शृङ्गार किये गोपिकाएँ लीला विग्रह धारी श्यामसुन्दर को लोचन भर देख रही हैं। श्रीकृष्ण और उनकी प्रियतमा व्रजांगनाएँ परस्पर गले में बाँहें डाले, कपोल से कपोल स्पर्श कर रास कर रहे हैं।"

"मधुऋतु में वृन्दावन में आनन्द छा रहा है। चम्पक, बकुल, केतकी और नाना अन्य कमल पुष्प खिल रहे हैं। कोकिल और शुक कलरव कर रहे हैं। यमुना का जल स्थिर हो गया है। अभिनय मे निपुण श्रीकृष्ण अनंगोद्दीपक भ्रकुटि संचालन करते है। युवतियाँ अपने-अपने अनुरूप परिरम्भण चुम्बन आदि प्राप्त करती है। देवगण प्रसन्न होकर पुष्प वर्षा करते हैं।"[4]

कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

क—आजु बन नीको रास बनायौ।
पुलिन पवित्र सुभग जमुनातट मोहन वेणु बजायौ।
कल कंकण किंकिणि नुपुर धुनि सुनि खगमृग सचु पायौ।

---

१ श्रीहितसुधासागर, स्फुटवाणी, पृ० १५०
२ वही, पृ० १५८
३ वही, पृ० १६२
४ श्रीहितसुधासागर (श्रीहितचतुराशीजी) पृ० १६१–२२५

युवतिन मंडल मध्य स्याम घन, मारैंव गान कलापी।
ताल मृदंग उपंग मुरज डफ, मिलि रस सिन्धु बढ़ायी।

× × ×

परिरंभन चुम्बन आलिंगन उचित जुवति जन पायी।
बरषत कुसुम मुदित नभ नायक इन्द्र निसान बजायी।[1]

ख—सरद राका रजनि विपिन वृन्दा सजनि,
अनिल अतिमन्द सीतल सहित बास री।
परम पावन पुलिन भृंग सेवत नलिन,
कल्पतरु तीर बलवीर कृत रास री।[2]

ग—राग रागिनि तान मान संगीत मत
थकित राकेश नभ सरद की यामिनी।[3]

वृन्दावन महिमा —

प्रथम यथामति प्रणमउँ श्रीवृन्दावन अति रम्य।
श्री राधिका कृपा बिनु सबके मननि अगम्य।
वर यमुना जल सींचन दिन हीं सरद बसंत।
विविध भाँति सुमनसि के सौरभ अलिकुल मंत।[4]

(२) रूपमाधुरी —

क—नन्द के लाल हरयो मन मोर।
बंक विलोकनि चाल छबीली रसिक सिरोमनि नंदकिसोर।
कहि-कहि मन रहत अवस सुनि सरस मधुर मुरली की घोर।
इन्दु गोविन्द वदन के कारन चितवन कौं भए नैन चकोर।[5]

ख—मोहन मदन त्रिभंगी। मोहन मुनि मन रंगी।
मोहन मुनि सघन प्रकट परमानंद गुण गंभीर गुपाला।
सीस किरीट श्रवन मनि कुण्डल उर मंडित बनमाला।
पीताम्बर तन धातु विचित्रित कल किंकिनि कटि चंगी।
नख मनि तरनि चरन सरसीरुह मोहन मदन त्रिभंगी।[6]

मुरली माधुरी—

क—मोहन लिहैं मधु मधुर मुरली री।[7]

श्री हितसुधासागर (श्रीमच्चतुरासीजी) पृ० १८८
वही, पृ० १७६
वही, पृ० २२५
वही, पृ० २८२
वही, पृ० १६६
वही, पृ० २०७
वही, पृ० २०३

स -मोहन बेनु बजावैं। इहि रव नारि बुलावैं।
आई ब्रज नारि सुनत बंशी रव गृहपति बंधु बिसारे।[८]

९—श्रीदामोदरदास 'सेवकजी'—(सं० १५७७–१६१०) श्री हितहरिवंश जी की 'चतुरासी' (चौरासी) का रहस्योद्घाटन करने वाले और राधावल्लभ सम्प्रदाय के महान् व्याख्याता के रूप में श्री सेवक जी का स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण है। माधुर्य-भक्ति ही सोलह प्रकरणों में विभाजित सेवक वाणी का महान् प्रतिपाद्य है। विधि निषेध की मर्यादा को छोड़कर केवल अनन्य भाव से 'रस-रीति' को अपनाना इनका आग्रह था। भागवतोक्त गोपियों की अनन्य मधुराभक्ति ही 'रस-रीति' का प्रेरणा स्रोत है। सेवक जी ने स्पष्ट रूप से अपने सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत के श्रवण का उल्लेख किया है।

श्रीमद्भागवत की मान्यता—श्री सेवक जी ने कहा है कि भगवद्भक्ति की प्राप्ति निरन्तर मन से भगवन्नाम के स्मरण करने पर होती है और श्रीमद्भागवत में इस बात पर जोर दिया गया है, अतः शुक के वचन (श्रीमद्भागवत) सुनाकर ही शिष्य को श्री हितहरिवंश का नामोपदेश करना चाहिए

शुक मुख वचन जु श्रवन सुनावहु।
तब हरिवंश सुनाम कहावहु॥
मन सुमिरन बिसरै नहीं।[२]

श्री सेवक जी ने अपनी वाणी के प्रथम प्रकरण 'श्री हित यश विलास' में कहा है कि श्री हितहरिवंश का जन्मोत्सव ब्रजभूमि में वैसा ही मनाया गया था जैसा श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण जन्मोत्सव नन्द द्वारा सम्पन्न हुआ था—

श्रीभागवत जु शुक उच्चरी। तैसी विधि जु व्यास विस्तरी।
करी नन्द जैसी हुती।
घर घर तोरण बन्दनवार। घर घर प्रति चित्रहि दरबार।[३]

श्रीमद्भागवत की नवधा एवं प्रेमलक्षणाभक्ति—श्री सेवक जी ने स्पष्ट कहा है कि श्रवण कीर्तन आदि नवधाभक्ति के उपरान्त ही परम दुर्लभ प्रेमलक्षणाभक्ति प्राप्त होती है और श्री हितहरिवंश जी ने यही किया था। यह मत श्रीमद्भागवत से समर्थित है।[४]

श्रवणादिक चितलाय योग जप तप तजे।
औरौ कर्म सकाम सकल तजि सब भजे।
साधन विविध प्रयास ते सकल बिहावहीं।
श्रवण कथन सुमिरण सेवन चितलावहीं।

---

१ श्री हितसुधासागर (श्री सेवक वाणीजी) पृ० २०७
२ वही, पृ० २४५
३ वही, पृ० २३१
४ देखिये इस प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय (वैधी एवं रागानुगा भक्ति)

अर्चन वन्दन अरु दासंतन । सख्य और आत्मा समर्पन ।
ये नवलक्षण भक्ति कहाई । तब तिन प्रेमलक्षणा पाई ।
पाई रसभक्ति गूढ गुण गुरु बश दुर्लभ भव इन्द्रादि बिरंचिहू ।
आगम निगम पुराण अगोचर सहज माधुरी रूप निरंचिहू ।
× × × श्री हरिवंश चरण शरणहू ।[1]

भक्त लक्षण

अरु अपनी प्रभुता नहिं सहै । तृण तें नीच आपको कहै । × × × ।
समुझै नहीं कछु कुल कर्म । मुखी करैं आपने धर्म । × × × ।
जब श्री हरिवंश नाम आनि है । तब सबही ते आनु आनि है ।
हूँसि बोलै बहुमान दै ।
तब सम सहनशीलता होय । परम उदार कहै सब कोय ।
सोच न मन कबहूँ करै ।[2]

तुलनीय श्रीमद्भागवत —

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः ।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ।
आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयादिष्टानपि स्वकान् ।
धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः ॥[3]

श्रीमद्भागवत के इन श्लोकों के भावों के साथ सेवक जी का उक्त पद श्री चैतन्य के शिक्षाष्टक के इस श्लोक का अनुवाद प्रतीत होता है—

तृणादपि सुनीचेन, तरोरिव सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥[4]

गुरु महिमा— क—गुरु गोविन्द न भेद कराय ।
सन्तत सकल कुलहु हित आय ।
ख—गुरु सेवा तजि करहिं जे आनि ।
गहैं अधर्म लहैं सब हानि ॥[5]
(द्रष्टव्य श्रीमद्भागवत ११. १७. २७)

विशिष्टतत्त्व—लीलागान—

बाललीला का महत्त्व—बाल चरित्र प्रेम की नींव ।
कहत सुनत सब सुख की सींव ।
जीवन व्रजवासिन सकल ।[6]

---

1. श्री हितसुधासागर (श्री सेवक वाणी जी) पृ० २६१ पृ० २८६
2. वही, पृ० २४७
3. श्रीमद्भागवत ११. ११. ३१, ३२
4. श्री श्रीचैतन्य चरितावली, खण्ड ५, (श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी) पृ० [illegible]
5. श्री हितसुधासागर (श्री सेवक वाणीजी) पृ० २४४
6. वही, पृ० २२५

रासलीला—

क—प्रिय विपिन बन हरषि मन जिय यश बेनु बजान्त।
तिय तरुणी सुनि तुष्ट धुनि किय तहँ गमन तुरन्त।
किय तहँ गमन तुरन्त कन्त मिलि विलसत सर्वस।
तत रास मण्डल कुरन्त रम निर्त रंग रस।
सन्तत सुर दुंदुभि बजन्त बरषन्त सुमन लिय।
श्रन्त केलि जल जमुकि मत्त इभराट करिरिष्टि पिय।[1]

ख—वंश बजाय विमोहित नारी। बोली संग सुनित्य विहारी।
परिरंभन चुम्बन रसकेली। विहरत कुँवरि कंठ भुज मेली।
सुन्दर रास रच्यौ बन माँहीं। यमुना पुलिन कल्पतरु छाहीं॥[2]

श्री वृन्दावन महिमा—

नव पल्लव नवफुल अनन्ता। सदा रहत ऋतु सरद बसन्ता।
श्री वृन्दावन सुन्दरताई। श्री हरिवंश नित्य प्रति गाई।[3]

मथुरा महिमा—

मथुरा नित्य कृष्ण को वास। निशि दिन श्याम न छाँड़े पास।
तासु सकल लीला कही।[4]

(तुलनीय—मथुरा भगवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः। श्रीमद्० १०. १. २८)

श्री सेवक जी की रचनाओं पर श्रीमद्भागवत का विपुल प्रभाव है, किन्तु विस्तार भय से यहाँ हमने दिङ्मात्र प्रदर्शन किया है।

३—श्री हरिराम व्यास (व्यासजी) (सं० १५४६–१६५०–५५) राधावल्लभ सम्प्रदाय में व्यासजी का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। इनका वाणी साहित्य बहुत विशाल है। व्यास वाणी का मुख्य प्रतिपाद्य तो मधुराभक्ति ही है किन्तु आनुषंगिक रूप से उसमें सामान्य भक्ति सिद्धान्त एवं जीवन के व्यावहारिक पक्ष का निरूपण भी हुआ है। व्यासजी पर श्रीमद्भागवत का बहुत ही व्यापक प्रभाव पड़ा था, और उन्होंने अपनी वाणी में अनेक स्थलों पर श्रीमद्भागवत के नामोल्लेख पूर्वक उसके भक्ति एवं धर्म मत का समर्थन किया है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

अ—सामान्य तत्त्व

(१) भागवतोक्त भक्ति का आदर्श—

क—जैसी भक्ति भागवत बरनी।
तैसी बिरले जानत मानत कठिन रहनि तैं करनी।
स्वामी, भट्ट, गुसांईं, पंडित, मति मति तैं आचरनी॥

× × ×

१ वही, पृ० २८६
२ वही, पृ० २९१
३ वही, पृ० २९०
४ वही, पृ० २९६

सहज प्रीति बिना परतीति न, बिलोइए की करनी ;
व्यास आस जौ लगि है तौ लगि, हरि बिनु दुख किय भरनी ।।[1]

ख—सुक नारद से भक्त न कोऊ, जिन्हि भागवत सुनायौ ।
बिनु भागवत भक्ति नहिं उपजै, साधन साधि अघायौ ।।[2]

(२) नाम महिमा—श्री व्यास जी ने कहा है कि यदि भगवान् की करोड़ों कल्प आरम्भ करके नाम की महिमा गाएँ तो पार नहीं पा सकेंगे। यह समस्त वेदों का सार है। मेरा परम धन 'राधा' नाम है। यह परम सुखमय सारपूर्ण तत्व है, इसीलिए शुकदेव ने इसे श्रीमद्भागवत में प्रकट नहीं किया।[3] श्री व्यासजी ने कृष्णनाम कीर्तन की मानो झड़ी ही लगादी है—

हरि हरि हरि मेरे आधार। हरि हरि मेरे प्राण अधार।
हरि हरि सकल सुखन कौ सार। हरि हरि 'व्यास' सुखन के भंडार ।।[4]

इष्ट-निर्भरता—

काहू के बल भजन कौ काहू के आचार।
'व्यास' भरोसे कुँवरि के सोवत पाँव पसार ।।

(३) गुरु महिमा—गुरु की अनिर्वचनीय महिमा के स्थापन में भी व्यासजी ने श्रीमद्भागवत के कृष्णचरित एवं धर्म-मत का प्रामाण्य स्वीकार किया है—

क—गुरु की सेवा हरि करि जानी।
गए उजैन रैन दिन दुख सहि, तजि मथुरा रजधानी।
छाँड़ी प्रभुता पाँइ लगत हैं, दास कहत गुरुरानी।
भूखें प्यासें मेह सह्यौ निसि, बोझ भर्यौ हरि पानी।
दियौ जिवाइ मृतक सुत तबहीं, गुरु महिमा पहिचानी ।।[5]

ख—गुरु गोविन्द एक समान।
वेद पुरान कहत भागवत, ते जु वचन परमान ।।[6]

(४) वैराग्य—व्यासजी ने श्रीमद्भागवत का अनुसरण करते हुए मनुष्य को कांचन-कामिनी की ओर से वैराग्य की ओर भक्ति की प्राप्ति के लिए ही प्रेरित किया है—

जो पै हरि की भक्ति न साजी।
जीवत हू ते मृतक भए अपराधी जननी लाजी।
जोग, जग्य, तीरथ, व्रत, जप-तप, सब स्वारथ की बाजी।

---

१ भक्त कवि व्यासजी (डि॰ बु॰ शास्त्री संकलन, श्री वासुदेव गोस्वामी) पृ॰ २२८
२ वही, पृ॰ १६२
३ वही, पृ॰ १८८
४ वही, पृ॰ १६६
५ वही, पृ॰ १६१
६ वही, पृ॰ १६१

पीड़ित घर घर भटकत डोलत, पंडित मुंडित काजी।
पुत्र कलत्र सजन की देही बाँध स्वान की खाजी।
बीत गए तीनों पन कपटी, तऊ न तृष्ना भाजी।
व्यास निरास भयौ जाहो तैं कृष्न चरन रति राजी।[1]

आ—विशिष्ट तत्त्व

श्रीमद्भागवत की माधुर्य लीला का विशेष रूप से गान करने के लिए श्री व्यासजी ने 'रासपंचाध्यायी'[2] का पृथक् रूप से वर्णन किया। किन्तु अष्टछाप के कवियों की भाँति कृष्ण की बाललीला का गान करना व्यासजी की विशेषता है। कृष्ण लीला के उपकरणों में व्यास जी ने मथुरा, वृन्दावन, यमुना, मुरली आदि का भी महत्त्व-प्रतिपादन किया है। उक्त विषयों के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

(१) **लीलागान**—बाललीला—

ग्वाल-चबैनी ग्वाल चबात।
मीठी लागत मोहन के सँग, घर की छाक न खात।
तोरि पतौवा जोरि पतोखी, पय पीवत न अघात।
मधुर दही के स्वाद निवेरत, फूले अँग न समात।
कबहुँक जमुना जल में पैरत, मोहन मारत लात।
बूड़क लै उछरत छलबल सौं, स्याम गात लपटात।
कबहुँक खगमृग भाषा बोलत, वन सिंघै न डरात।
अदभुत लीला देखि देखि कै व्यास दास बलिजात।।[3]

रासलीला—

नाँचत नागर नटवर वेष धरि, सुखसागरहिं बढ़ावति।
सरद सुखद निसि ससि गो रंजित, वृन्दावन छबि रुचि उपजावति।
ताल लए गोपाल लाल सँग ललिता ललित मृदंग बजावति।
× × × ×
मिश्रित धुनि सुनि खग मृग मोहित जमुना जल न बहावति।
× × × ×
जय जय साधु करत हरि सहचर, व्यास निराक दिखावति।।[4]

मथुरा माहात्म्य—

धनि धनि मथुरा धनि धनि मथुरा धनि मथुरा बासी हो।
जीवन मुक्त सबै विहरत हैं केसौराइ उपासी हो।।[5]

---

१ भक्तकवि व्यासजी (द्वि० खं० वाणी संकलन, श्री वासुदेव गोस्वामी) पृ० २२६
२ वही, पृ० ४००–४०७
३ वही, पृ० ३८६
४ वही, पृ० ३६०
५ वही, पृ० २०६

वृन्दावन-महिमा — माधुर्य-भक्ति-मार्गीय सभी सम्प्रदायों में वृन्दावन धाम की [illegible] महिमा है। उनमें भी 'नित्य विहार' और 'निकुंज लीला' के अनुयायियों [illegible]वल्लभीय भक्त कवियों ने वृन्दावन की बड़ी महिमा गायी है। व्यास जी ने श्रीमद्भागवतोक्त कृष्ण की वृन्दावन लीलाओं का संकेत करते हुए वृन्दावन की महिमा में [illegible] [illegible] बीस दीर्घकाय पदों की रचना की है।[1] केवल एक उदाहरण देखिए —

धनि धनि वृन्दावन की धरनि।
अधिक कोटि बैकुण्ठ लोक तैं, सुक नारद मुनि बरनि।
जहाँ स्याम की काम-केलि, कुल लाज, काम मद हरनि।
ब्रह्मा मोह्यो ग्वाल मंडली, भेद रहित आचरनि।
राधा की छवि निरखत मोह्यो, नारायन की घरनि।
और बार काली बनि बनिता, प्रेम गतिहिं अनुसरनि।
जहाँ महीरुह राज विराजत, सदा फूल-फल फरनि।
तहाँ व्यास बसि ताप बुझायौ, अन्तरहित की जरनि॥[2]

यमुना-महिमा — कृष्ण लीला के उपकरणों में महत्वपूर्ण स्थान देते हुए व्यासजी [illegible]मुना को श्रीमद्भागवत के अनुसार कृष्ण-भामिनी कहा है—

जमुना जोरी जू की प्यारी।
जाकी वैभव कही भागवत, सुक सुदेव बिचारी।
मनिमय तटी, उभय पट-भूषण, भूषन पियहि सिंगारी।
सौरभ सुधा सलिल जनु राधा, मोहन की रस भारी।
सुरतरु-राज विराजत तीर कुटीर मनोहर सँवारी।
कुसुमित नलिन विविध सौरभ सौं प्रान समान मुरारी।
× × ×
व्यास स्वामिनी स्याम-भामिनी, वृन्दावन चद उजारी॥[3]

(२) रूपमाधुरी — किशोर कृष्ण की रूपमाधुरी का वर्णन व्यासजी ने तन्मयता से [illegible]ा है। एक उदाहरण देखिए

हरिमुख देखत ही सुख नैननि
निरखत रूप अनूप निमेष लगत हीं मैन कुचैननि।
वारें घर घर बाल बात सुनि, स्रवन मगन सुख बैननि।
हँस कोटि दामिनि प्रतिबिंबित बिम्बाधर रस ऐननि।
बिनु दामनि हौं मोल लई इनि स्याम छबीले सैननि।
भौंह धनुष तें चलत नयन-सर भेदत उरज दुरैननि।
रोम रोम की छवि पर वारौं, कोटि [illegible]
सहज मधुरता स्याम सन्द पै, कहत [illegible][4]

भक्तकवि व्यासजी (वाणी संकलन) पृ० २०२–२०६
वही, पृ० २०१
वही, पृ० १९८
वही, पृ० ३८२

वेणुमाधुरी—

मधुर मधुर धुनि आज बेनु बजावत ।
मुदित उदित तान बंधान रागनि के, रसिक कुँवर श्री राग अलापत ।
देत मुरलि मधुकर, मोर नाचत, विथकित चद मुदित घन गाजत ।
उलट बहुत सलिला भर उमगत, पुलकित वृन्दाबिपिन बिराजत ।
× × × ×
बरषत कुसुम मुदित नभ नाइक, जय जय धुनि मुनि सब ब्रज भ्राजत ॥[1]

(३) गोपी प्रेम—श्रीमद्भागवत में कृष्ण और गोपियों के रासविलास में जैसे पृथुल और मांसल चित्र दिये गये हैं, उनकी झलक व्यासजी के काव्य में देखी जा सकती है। गोपियों की रूपासक्ति और तन्मयतासक्ति विशेष रूप से द्रष्टव्य है —

तन्मयतासक्ति—

जो भावै सो लोगनि कहन दै ।
अवनि पिछौंडौं पाँव न दीजै, न्याव मेटि प्रीति निबहन दै ।
हौं जोवन मदमाती सखी री, मेरी छतियाँ पर मोहन रहन दै ।
नव निकुंज पिय अंग संग मिलि, सुरति पुंज रससिन्धु थहन दै ।
या सुख कारन व्यास आस कै, लोकवेद उपहास सहन दै ॥[2]

श्री हरिराम व्यास के समस्त भक्ति-काव्य पर श्रीमद्भागवत का इतना व्यक्त और अव्यक्त प्रभाव है कि सूर, परमानन्द, नन्ददास आदि कुछ कवियों को छोड़कर उनका ही स्थान आता है। इनके विषय में आचार्य शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि "इनकी रचना परिमाण में बहुत विस्तृत है और विषय-भेद के विचार से भी अधिकांश कृष्ण भक्तों की अपेक्षा व्यापक है।"[3] श्रीमद्भागवत की रासपंचाध्यायी के आधार पर व्यास जी ने रासपंचाध्यायी लिखा थी उसे भ्रमवश सूर कृत मानकर सूरसागर में सम्मिलित कर लिया गया। नागरी प्रचारिणी सभा काशी के सूरसागर के संस्करण में भी यह भूल मौजूद है।[4] आचार्य शुक्ल ने इस भ्रान्ति की ओर संकेत किया है।[5]

राधावल्लभ सम्प्रदाय के अन्य कवि

ऊपर हमने राधावल्लभ संप्रदाय प्रवर्तक श्रीहितहरिवंशजी के अतिरिक्त दो प्रतिनिधि कवियों पर श्रीमद्भागवत के प्रभाव का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त हमारे आलोच्य कालमें इस सम्प्रदाय के अनेक प्रसिद्ध कवि हैं जिन पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव है, किन्तु विस्तारभय से हम उनका उल्लेख करने में असमर्थ हैं। परम्परा तो महाकवि बिहारी को भी राधावल्लभ-सम्प्रदाय से सम्बद्ध करती है।[6] प्रसंगवश कुछ कवियों की चर्चा संक्षेप में की जा रही है।

१ भक्तकवि व्यासजी (श्रीवासुदेव गोस्वामी) पृ० ३११
२ वही पृ० २८४
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १६०
४ सूरसागर, पहला खण्ड पृ० ६६६ ६७३
५ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १६०
६ ब्रजमाधुरीसार, पृ० २८७

चतुर्भुजदास—(संवत् १५८३) हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में अष्टछाप के चतुर्भुजदास को अनेक बार भ्रमवश राधावल्लभ सम्प्रदाय के इन चतुर्भुजदास के रूप में उल्लिखित किया गया था। किन्तु डॉ० दीनदयालु गुप्त ने अपने प्रबन्ध में सर्वांगीण गवेषणात्मक दृष्टिकोण से विचार कर इस भ्रम का सदा के लिए उन्मूलन कर दिया है।[1] अस्तु। श्री चतुर्भुजदास ने श्रीमद्भागवत की भक्ति को स्वयं ही ग्रहण नहीं किया, अपितु [illegible] देश में उसका प्रचार किया और 'भक्ति-प्रताप-यश' नामक [illegible] प्रतिपादक ग्रंथ की रचना की। भक्तमाल के टीकाकार श्री प्रियादास ने चतुर्भुजदास द्वारा भागवत-कथा कहने और चमत्कार दिखाने का वर्णन किया है।[2] चतुर्भुजदास के ग्रंथों का संग्रह 'द्वादशयश' है। इनमें १२ पृथक् छोटे-छोटे ग्रंथ हैं। इनमें से 'भक्तिप्रताप' तथा 'हितजू को मंगल' काफी प्रसिद्ध हुए और पृथक् भी पुस्तकाकार मिलते हैं। 'द्वादश-यश' में मुख्यतया श्रीमद्भागवत की भक्ति और धर्म मत का निरूपण हुआ है। भक्ति की पापनाशिनी शक्ति, भक्ति का सर्वश्रेष्ठत्व, विषय-निन्दा, संसार का मिथ्यात्व निरूपण, स्त्री पुत्र धन धान्यादि का बन्धनकारी रूप, वर्णाश्रम धर्म निरूपण, भगवद्भक्ति सत्संग महिमा, भक्तजन महिमा, गुरु महिमा, श्रीकृष्ण का परम कारुणिकत्व, माया की प्रबलता और अनन्य प्रेमलक्षणाभक्ति आदि जो विषय श्रीमद्भागवत में प्रतिपादित हुए हैं, उन्हीं समस्त विषयों का निरूपण चतुर्भुजदास ने 'द्वादशयश' में किया है।

श्री ध्रुवदास—(सं० १६३०–१७००) अपनी भक्ति विषयक रचनाओं के अत्यन्त विस्तार के कारण हिन्दी कृष्णभक्ति साहित्य में ध्रुवदासजी का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने इन्हें राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्तों का व्याख्याता और भाष्यकार[3] कहा है, जो सर्वथा उचित है। इन्होंने वेद, पुराण, स्मृति-शास्त्रों का सार ग्रहण कर ब्यालीस छोटे बड़े ग्रंथों का प्रणयन किया जो 'ब्यालीस लीला' नाम से प्रख्यात हैं। कुछ स्फुट पद भी प्राप्त होते हैं। नाभाजी के भक्तमाल के समान इन्होंने 'भक्त नामावली' लिखी है। ध्रुवदास जी ने प्रमुखतया प्रेमलक्षणा मधुराभक्ति का ही अभिव्यंजन किया है। वैसे जीवन के आचार व्यवहार पक्ष और नैतिकता पर भी इनके विचार महत्त्वपूर्ण हैं। श्रीमद्भागवत की प्रेमाभक्ति और धर्म मत का इन पर पूर्ण प्रभाव है—

गोपी प्रेम—

नारदादि सनकादि ध्रुव, उद्धव शुक ब्रह्मादि।
गोपिनको सुख देखि किय, भजन आपुनें बादि।[4]

---

१ डॉ० दीनदयालु गुप्त, अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय पृ० [illegible]

२ भोग तै लगावैं, नाना संतनि लड़ावैं, कथा भागवत गावैं, [illegible]।
सुन्यौ बन लैकै कोऊ [illegible]।
निकसी पुरान बात, [illegible]
कहै या वचन मैं न [illegible]
[illegible]

३ राधावल्लभ सम्प्रदाय: [illegible]

४ ब्रजमाधुरी सार: ध्रुवदास, पृ० [illegible]

तिन गोपिन के दुरलभ माई। नित्य विहार सहज सुखदाई।
शिव श्रीपति जद्यपि ललचाहीं। मन प्रवेस तिनहूँ कौ नाहीं।[1]

श्री ध्रुवदास जी की समस्त भागवतीय भक्ति का सारांश उनके निम्नलिखित सवैये में अत्यन्त सुन्दरता से समाविष्ट है—

ऐसी करौ नवलाल रंगीले जू, चित्त न और कहूँ ललचाई।
जे सुखदुःख रहैं लगि देह सों, ते मिटि जाहिंऽरु लोक बडाई।
संगति साधु, वृन्दावन कानन, लो गुन गाननि माँझ बिहाई।
कुंज पगों में तिहारे बसौं, बस देहु यहै ध्रुव' कों ध्रुवताई।[2]

राधावल्लभ सम्प्रदाय के अन्य उल्लेखनीय कवियों में नेही नागरीदास (सं० १५९० विक्रमी) कल्याण पुजारी (सं० १६००) श्री अनन्यअली (सं १७४०) हमारे आलोच्य काल के अन्तर्गत हैं। जिन पर श्रीमद्भागवत की मधुर रस-भक्ति का पूर्ण प्रभाव है। नेही नागरीदास जी के सम्बन्ध में तो यह किम्वदन्ती है कि वे श्रीमद्भागवत के भी उन प्रसंगों में रुचि न रखते थे, जिनमें कृष्ण की मधुर लीला का वर्णन नहीं है।[3] वे केवल राधाकृष्ण की मधुर रासलीला के ध्यान में ही अहर्निश मग्न रहते थे।

३ स्वामी हरिदास के सखी सम्प्रदायानुयायी कवि

स्वामी हरिदासजी—(संवत् १५३७-१६३२) मूल रूप में प्राचीन निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी संगीत कला धुरीण स्वामी श्री हरिदास जी ने मधुरा भक्ति प्रधान अपना पृथक् सखी सम्प्रदाय चलाया था जिसकी साधना पद्धति का निम्बार्क सम्प्रदाय से मौलिक भेद है। सखी सम्प्रदाय में उपासक सखी भाव धारण करता है। स्वामी हरिदास वृन्दावन के 'टट्टी संस्थान' के संस्थापक थे। इनका जन्मस्थान अलीगढ़ जिले की कोल तहसील में बताया जाता है, जहाँ अब हरिदासपुर नामक ग्राम है। स्वामीजी का सम्प्रदाय रसोपासना को प्राधान्य देता है। इस दृष्टि से राधावल्लभ सम्प्रदाय से इनका मतैक्य है। स्वामी हरिदास ने युगल सरकार की निकुंज लीला का बहुत ही मर्मस्पर्शी और मधुर भाषा में वर्णन किया है। स्वामी जी अत्यन्त विरक्त महात्मा थे। अतः उनके सम्प्रदाय में वैराग्य का महत्त्व है। उनकी वाणी के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

अनन्य शरणागति (आत्मनिवेदन भक्ति)—

क ज्यौंही ज्यौंही तुम राखत हौ, त्यौंही त्यौंही रहियतु है हो हरि।
और अचरचै जाइ धरौं सु तौ कहौ कौन कें पेंड भरि।
जदपि हौं अपनौ भायौ कियौ चाहौं, कैसे करि सकौं सो तुम राखौ पकरि।
कहि 'हरिदास' पिंजरा के जनावर लौं तरफराइ रह्यौ उड़िबेकौं कितोउ करि।[4]

ख—काहू कौ बस नाहिं तुम्हारी कृपा तें सब होइ बिहारी बिहारिनि।
और मिथ्या प्रपंच काहे कौं भाषियै सु तो है हारनि॥

१ ब्रजमाधुरी सार: पृ० १६६
२ वही, पृ० १६४
३ राधावल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ४६६
४ ब्रजमाधुरी सार. पृ० ६६

जाहि तुमसौं हित ताहि तुम हित करौ सब सुख कारनि।
श्री 'हरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी, प्रानति के आधारनि॥[1]

वैराग्य (उद्बोधन)—

जौं लौं जीवै तौं लौं हरि भजु रे मन और बात सब बादि।
दिवस चारि को हला भला, तू कहा लेइगो लादि॥
माया मद गुन मद जोबन मद, भूल्यो नगर-बिवादि।
कहि हरिदास लोभ चरपट भयौ, काहू की लागैं फिराद॥[2]

लीलागान (रासलीला)—

अद्भुत गति उपजति अति नाचत, दोऊ मण्डल कुँवर किसोरी।
सकल सुघंग अंग भरि भोरी, पिय नृतति मुसकनि मुख मोरी॥
ताल धरैं ललिता मृदंग, चन्द्रावलि बात बजै थोरी थोरी।
मधुर भाव भाषा विचित्र अति, ललिता गीत गावैं चितचोरी॥
श्री वृन्दावन फूलनि फूल्यौ पूरन ससि समीर-मलि योगी।
गति विलास रस हास परस्पर, भूतल अद्भुत जोरी॥
श्री जमुनाजल विथकित पुहुपनि, छवि रति पति वारत तृन तोरी।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी जु की रस रचना कहूँ कोरी॥[3]

(२) श्री विट्ठल विपुल—(सं १५५०-१६३२) कहा जाता है कि ये स्वामी हरिदास जी के मामा तथा प्रधान शिष्य थे।[4] इन्होंने राधाकृष्ण की निकुञ्ज लीला के पद लिखे हैं। रासलीला का वर्णन किया है। किन्तु हिंडोला, झूलना आदि ब्रजभूमि में प्रचलित उल्लासमय क्रीडाओं को भी उसमें सम्मिलित किया है। 'हिंडोरे' के पद प्रायः सभी साम्प्रदायिक कृष्ण भक्त कवियों ने लिखे हैं। अष्ट छाप के कवि भी इसके अपवाद नहीं हैं। किन्तु विट्ठल विपुल के निकुंज लीला वर्णन में वातावरण वही भागवत के रास का है—

क सजनी नव निकुंज द्रुम फूले।
अलिकुल संकुल करत कुलाहल, सौरभ मन्मथ मूले।
हरषि हिंडोरे रसिक रासवर, जुगल परस्पर झूले।
श्री 'विट्ठल विपुल' विनोद देखि नभ देव विमानन भूले॥[5]

ख—नवल गरद की ओन्हे कयमली।
नव मलसाज सकल अँग सुन्दरि, नवल बदन पर अलक लमकली॥
श्री विट्ठल विपुल बिहारी के अंग लागि जी लहुक उर लगि॥[6]

१ ब्रजमाधुरीसार पृ० ६६
२ वही, पृ० ६८
३ हरि[illegible]
४ ब्रज[illegible]
५ हरिदा[illegible]
६ वही, पृ० [illegible]

३ विहारिनदास--(सं० १५६१-१६५६ वि०) हरिदासजी के सखी में बिहारिनदास जी का स्थान प्रमुख है। इनकी रचना भी परिमाण में अधिक है श्रीकृष्ण की निकुञ्ज लीला के गान के अतिरिक्त मानव जीवन के सामान्य आचार विचार और भगवद्भक्ति का माहात्म्य गान किया है।

भागवत कथन श्रवण की अनिवार्यता—इन्होंने भागवत कथन के ... का प्रतिपादन व्यर्थ का शारीरिक श्रम बताया है—

भक्ति बिना भागवत कहै, कठै सोखे काया दहै।
धर्म न जानै कर्म न करै, निगुरा यों सब काहू डरै॥[1]

श्रीमद्भागवत के श्रवण से समस्त सन्देहों का निराकरण हो जाता है परीक्षित् के उदाहरण से स्पष्ट है—

मान छौस निस्पृह सुक गायो।
राजा सुनि सन्देह नसायो।[2]

भागवत धर्म के मूलमंत्र अनन्य भक्ति का अवलम्बन किये बिना जीव सम्भव नहीं है—

बिना अनन्य न मर्म जानै। जाग जान गुन पिता पहिचाने।
भक्त सकाम वनिक हुट ठानै। ज्यौं त्यौं बीजु निज वेद बखाने।[3]

नवधाभक्ति—भगवान् की अनन्य प्रेमाभक्ति प्राप्त करने के लिए श्रवण कीर्तन आदि नवधाभक्ति द्वारा पहले विषय-विकार का नाश आवश्यक है-

यहै उपाय सुन्यौ सन्तन पै हरि सेवत सुख जीजै।
श्रवण कीर्तन भक्ति भागवत नौ प्रकार रति कीजै।
बिषय बिकार विरचि रचि मन क्रम, वचन रचन चित दीजै।
श्री विहारिनदास प्रभु सदा सजीवन वदन कमल रस पीजै।[4]

नाम महिमा—नाम की अमोघशक्ति का उल्लेख भागवत के अजामिल के नाम निर्देश पूर्वक इन्होंने किया है—

हरि जस गावत सब उघरे।
नीच अधम अकुलीन विमुख सब केते गर्नौ बुरे।
नाऊ छीपा जाट जुलाहा सन्मुख जाय जुरे।
× × ×
विवश असावधान सुत के हित ह्वै मखरा उघरे।
श्री बिहारीदास कोटि अजामिल से पतित पवित्र करे।[5]

---

१ हरिदासवंशानुचरित्र पृ० ६२
२ वही. पृ० ३५
३ वही. पृ० ३४
४ वही. पृ० ४६, ५७
५ वही. पृ० ५७

वैराग्य—मनुष्य की गृहासक्ति और भगवद् विमुखता की निन्दा करते हुए वे कहते हैं—

बहुत कुटुम्ब बढ़ा कह गेही। सब मृषा बिन स्याम सनेही।
मृतक समान ज्ञान बिनु प्रानी। तिहि धिक्कार कहो श्रीभवानी।[1]

लीलागान—इन्होंने केवल श्रीकृष्ण की निकुञ्ज-केलि-लीला को ही अपनी रस-साधना का परम ध्येय बनाया और वृन्दावन की माधुर्य लीला का गान किया—

नवल बसंत नवल वृन्दावन, नव पल्लव अलि गुंजत रहसि भन।
नव पराग अनुराग मगन मन नव बिहार बलि जात रसिक जन।[2]

श्री हरिदासी सम्प्रदाय के अन्य कवि—माधुर्योपासना के मार्ग को प्रशस्त करने वाले अनेक प्रसिद्ध कवि हरिदास के सम्प्रदाय में हुए हैं, जिनमें बिहारिनदास (जन्म सं० १६०० वि०) सरसदेव (जन्म सं० १६११ वि०) नरहरिदेव (जन्म सं० १६४० वि०) रसिकदेव (जन्म सं० १७६१ वि०) तथा ललितकिशोरीदेव (जन्म सं० १७३३ वि०) उल्लेखनीय हैं। इन्होंने श्रीमद्भागवत की मधुरा भक्ति के अतिरिक्त सामान्य भक्ति सिद्धान्तों का भी निरूपण किया है।[3]

४—चैतन्य सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त हिन्दी कवि

श्रीगदाधर भट्ट—(१६वीं शती विक्रमी का उत्तरार्ध) चैतन्य के समकालीन और उनके सम्प्रदाय में दीक्षित हिन्दी-कृष्ण-भक्त कवियों में श्रीगदाधर भट्ट का नाम उल्लेख्य है। क्योंकि चैतन्य सम्प्रदाय के अनेक भक्तों ने संस्कृत में ही अपनी काव्य रचना की है। भट्टजी स्वयं संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे, संस्कृत में रचना करते थे। उनकी हिन्दी रचना भी तत्सम संस्कृत पदावली युक्त समस्त शैली में हुआ करती थी। एक उदाहरण देखिए—

नमो नमो जय श्रीगोविन्द।
आनंदमय-ब्रज-सरस-सरोवर प्रकटित विमल-नील-अरविन्द।
जसुमति-नीर-नेह-नित-पोषित, नव नव-ललित-लाड़ सुखकन्द॥[4]

किन्तु दाक्षिणात्य ब्राह्मण होने पर भी अपने इष्टाराध्य की जन्मभूमि की भाषा (ब्रजभाषा) से इन्हें अनुराग था और ब्रजभाषा में अत्यन्त सरस पद रचना करते थे।

श्रीमद्भागवत-कथा-वाचन—श्री गदाधर भट्ट के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि वे महाप्रभु श्री चैतन्य को श्रीमद्भागवत की कथा सुनाया करते थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्तमाल के निम्नलिखित छप्पय के आधार पर इस बात का समर्थन किया है[5]—

---

१ हरिदासवंशानुचरित्र पृ० ६२
२ वही, पृ० ४६, ४७
३ द्रष्टव्य, हरिदास वंशानुचरित्र पृ० ६६–८८ तथा ललितप्रकाश (रचयिता सहचरि शरणदेव) द्वितीय उल्लास पृ० ९२–१०४
४ ब्रजमाधुरीसार, पृ० ८०, ८१
५ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८२

सज्जन सुहृद सुसील बचन आरज प्रतिपालै।
निरमत्सर निष्काम कृपा करुणा कौ आलै।
अनन्य भजन दृढ करन घरयौ वपु भक्तन काजै।
परम धरम कौ सेतु विदित वृन्दावन गाजै।
भागवत सुधा बरषै वदन, काहूकौ नाहिन दुखद।
गुण निकर गदाधर भट्ट अति सबहिन कौ लागै सुखद।[1]

अतः स्पष्ट है कि श्रीगदाधर भट्ट की भक्तिपरक रचनाओं पर श्रीमद्भागवत की भक्ति-पद्धति का प्रभाव पड़ा है। चैतन्य सम्प्रदाय में हरिनाम संकीर्तन का जो विधान है उसका आधार श्रीमद्भागवत है। इसीलिए गदाधर भट्ट ने भी नाम महिमा का गान किया है।

नाम महिमा—

क—हरि हरि हरि हरि रट रसना मम।
पीवत खाति रहति निधरक भइ, होत कहा तोकौं श्रम।
तैं तो सुनी कथा नहिं मो से उधरे अमित महाधम।
ग्यान ध्यान जप तप तीरथ व्रत, जोग जाग बिनु संजम।
हेम हरन द्विज द्रोह मान मद, अरु पर गुरुदारागम।
नाम प्रताप प्रबल पावक के होत बतात सलभ सम।
इहि कलिकाल कराल ब्याल विष, ज्वाल विषम भोये हम।
बिनु इहि मंत्र गदाधर को क्यौं, मिटि है मोहमहातम।[2]

ख—है हरि तैं हरिनाम बड़ेरो, ताकौं मूढ करत कत फेरो।
प्रगट दरस मुचकुंदहिं दीन्हौं, ताहू आयुसु भो तप केरो।
सुतहित नाम अजामिल लीन्हौं, या भवमें न कियौ फिरि फेरो।[3]

उक्त उद्धरणों में जहाँ एक ओर नाम की असीम अघौघनाशिनी शक्ति की ओर संकेत किया गया है, वहाँ दूसरी ओर श्रीमद्भागवत के मुचुकुन्द और अजामिल के उपाख्यानों के संकेत द्वारा श्रीहरि से भी श्रीहरि-नाम को श्रेष्ठतर बताया गया है।

लीलागान—श्रीमद्भागवत में अनेक पात्रों द्वारा श्रीकृष्ण की लीला के गान की चर्चा की गई है। गोपियाँ, गोप सभी अवकाश पाते ही—किं बहुना—सदैव ही—गृह-कर्म में संलग्न होने पर भी कृष्ण का गुणगान करते रहते हैं।[4] नन्द पत्नी यशोदा भी इसका अपवाद नहीं है। भागवत में अंकित यशोदा के निम्नांकित चित्र का गदाधर भट्ट ने पुनरंकन किया है। दोनों चित्र तुलनीय हैं। पहले श्रीमद्भागवत का चित्र देखिए—

यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च।
दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत।

---

१ भक्तमाल (भक्तिसुधास्वादतिलक) पृ० ५८६
२ व्रजमाधुरीसार, पृ० ८१
३ वही, पृ० ८२
४ श्रीमद्भागवत १०, ४४, १५

क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धम् ।
पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पं च सुभ्रूः ।
रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत् कंकणौ कुण्डले च ।
स्विन्नं वक्त्रं कबरविगलन्मालती निर्ममन्थ ॥[1]

अब श्रीगदाधर भट्ट द्वारा चित्रित यशोदा के दिव्य रूप की झाँकी ली कीजिए—

दधि मथत नंद नरिंद रानी करति सुत गुनगान ।
नील नीरद अंग दिव्य दुकूल वर परिधान ।
केस कुसुमनि गिरत मनि ताटंक झलकत कान ।
स्वेद कन मन बदन बिधु पर सुधा बिन्दु समान ।
नेत करषत हृदय बरषत बलय किंकिनि क्वान ।
पय पयोधर स्रवत बालक कृष्ण चिंतन निदान ।
सहस आनन कहि सकैं नहिं जासु भाग्य बखान ।
जयत धन्य गोविन्द-माता, गदाधर करि ध्यान ।[2]

बाललीला—कृष्ण की आकर्षक बाल-लीला का वर्णन भी भट्टजी ने किया है—

बारे तैं गोकुल गोपिन के सूने घर तुम डाटे हो ।
पठै तहाँ निसंक एक लौं दधि के भाजन चाटे हो ।
आपु कहाइ बड़ा को ढोटा भात कुचन लौं माँग्यो हो ।[3]

रासलीला—श्री गदाधर भट्ट ने श्रीमद्भागवत के अनुसार कृष्ण के शरद् रास वर्णन किया है—

आजु मोहन रची रास रस मण्डली ।
उदित पूरन निसानाथ निर्मल दिसा, देखि दिनकर सुता सुभग पुलिन स्थली ।
बीच हरि बीच हरिनाच्छि-माला बनी तरुनतापिच्छ जनु कनक कदली रली ।
× × × × ×
चरन बिन्यास कपूर कुंकुम धूरि, धूरि रहि चारि दिसि कुंजकन की गली ।
× × × × ×
गान रस तान के बान बेध्यौ बिस्व आन अभिमान मुनिध्यान गति गलबली ।[4]

यमुना-महिमा—कृष्ण लीला के उपकरणों में यमुना का माहात्म्य देखिए—

जमुना देवी को न बड़ाई ।
नाम रूप गुन लै हरि जू को, न्यारी अपनी भाव चलाई ।
अपबस देस कियो भ्राता को, उनहिं परसि कोउ तहाँ न जाई ।
जे तन तजत तीर तुम्हरे तें, दूत-किरन मैं सैल लगाई ।[5]

श्रीमद्भागवत १०. ९. २, ३
ब्रजमाधुरीसार, पृ० ८४
वही, पृ० ९१
वही, पृ० ८७
वही, पृ० ९०

रूपमाधुरी—मोहन बदन की सोभा।
जाहि देखत उठति सखि आनन्द की गोभा।
नैन धीर अधीर कछु कछु अभिलसित राते।
प्रिया आनन चंद्रिका मधुपान रस माते।
× × ×
ललित लोल कपोल, कुण्डल मधुर मकराकार।
जुगल सिसु सौदामिनी, जनु नचत नट चटसार।
× × ×
अरयौ मन ललचाइ तातैं टरत नहिं टार्यो।
अमित अद्भुत माधुरी पर 'गदाधर' वार्यो।[1]

संध्या समय गोचारण से लौटते हुए, वेणुवादनरत, गोरजच्छुरिमल गोप-बाल-मण्डली से अनुगत, दिव्य पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर के इस जीवन भी भट्ट जी श्रीमद्भागवत के ऋणी हैं —

आजु ब्रजराज कौ कुँवर बनतैं बन्यौ,
देखि, आवत मधुर अधर रंजित बेनु।
मधुर कल गान निज नाम सुनि स्रवन पुट,
परम प्रमुदित बदन फेरि, हूँकति धेनु।
मद बिघूर्णित नैन, मन्द बिहँसनि बैन,
कुटिल अलकावली ललित गोपद रेनु।
ग्वाल बालनि जाल करत कोलाहलनि,
सृंग दल ताल धुनि रचत संचत चैनु।
मुकुट की लटक, अरु चटक पटपीत की,
प्रकट अंकुरित गोपी मनहिं मैनु।
कहि 'गदाधर' जु इहि न्याय, ब्रज सुन्दरी,
बिमल बनमाल के बीच चाहतु ऐनु॥

तुलनीय—वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः।
कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः॥
उत्सवं श्रमरुचापि दृशीनामुन्नयन्खुररजश्छुरितस्रक्।
दित्सयैति सुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः॥
मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसुहृदां वनमाली।
बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन्कनककुण्डललक्ष्म्या॥[3]

१ ब्रजमाधुरीसार, पृ० ८०
२ वही, पृ० ८६
३ श्रीमद्भागवत १०. ३५. २२, २३, २४

वेणुमाधुरी—गदाधर भट्ट मुरली की विश्वमोहिनी स्वरमाधुरी का उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

अधर गिरिधरन के लागि कै अमृत-
निजयी भई माधुरी मुरलिका कामदी।[1]

श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व—परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्ण की महिमा को वेदातीत बताते हुए भट्टजी कहते हैं—

बरनौं कहा जथामति मेरी, बेदहु पार न पायौ हो।
भट्ट गदाधर प्रभु की महिमा गावत ही उर आवै हो।[2]

गोपी प्रेम—चैतन्य सम्प्रदाय की आधार भूमि ही गोपियों की मधुर-भक्ति-भावना है, अतः इस विषय के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, किन्तु यहाँ केवल रूपासक्ति एवं तन्मयतासक्ति का एक प्रसिद्ध उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है, जिसे सुनकर इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य श्री जीव-गोस्वामी मुग्ध हो गये थे—[3]

सखी हौं स्याम-रंग रँगी।
देखि बिकाय गयी वह मूरति, सूरति माँहि पगी।
संग हुतो अपनो सपनो सो, सोइ रही रस खोई।
जागेहुँ आगे दृष्टि परै सखि नेकु न न्यारो होई।
एक जु मेरी अँखियन में निसि द्यौस रह्यौ करि भौन।
गाइ चरावत जात सुन्यौ सखि, सो धौं कन्हैया कौन।
कासौं कहौं कौन पतियावै कौन करै बकवाद।
कैसे कै कहि जात 'गदाधर' गूँगे को गुर स्वाद।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीमद्भागवत के नित्य स्वाध्यायी और वक्ता पण्डित प्रवर श्रीगदाधर भट्ट की रचनाओं के अन्तराल में श्रीमद्भागवत की भाव-राशि निरन्तर मुखर हो रही है।

२—श्रीसूरदास मदनमोहन (रचनाकाल सम्वत् १५९०–१६००) चैतन्य सम्प्रदाय के द्वितीय प्रसिद्ध एवं उल्लेखनीय कृष्णभक्त हिन्दी कवि श्री सूरदास-मदनमोहन हैं। ये जाति ब्राह्मण थे और अकबर के शासनकाल में संडीले के अमीन थे। एक बार एक बड़ी धनराशि, जो अकबर के राज्यकोष में जमा होनी चाहिए थी, इन्होंने साधु-सत्कार में व्यय करदी और विरक्त होकर वृन्दावन चले आये। ये माधुर्यभक्ति के रसिक थे और तन्मयीभाव से कविता करते थे। इनके अनेक पद सूरसागर में मिल गए हैं। इनके इष्टदेव 'मदनमोहन' श्रीकृष्ण थे। अपने नाम 'सूरदास' के साथ इन्होंने [illegible] नाम इतना संलग्न कर लिया कि वह फिर एक ही नाम बन गया और [illegible]

१ ब्रजमाधुरीसार पृ० ८८
२ वही, पृ० ८२
३ वही, पृ० ७८
४ वही, पृ० ७७–७८

मदनमोहन' नाम से ही प्रख्यात हो गए।[1] इस मत का समर्थन श्री नाभाजी के इस छप्पय से होता है—

गान काव्य गुन रासि सुहृद सहचरि-अवतारी।
राधाकृष्ण उपासि, रहस-सुख के अधिकारी।
नव रस मुख्य सिंगार विविध भाँतिन करि गायौ।
बदन उच्चरत बेर सहस पायँन ह्वै धायौ।
अंगीकार रहि की अवधि ज्यों आख्या भ्राता जमल।
श्रीमदनमोहन सूरदास की नाम-सृंखला जुरि अटल॥[2]

उक्त छप्पय से सूरदास मदनमोहन की उपासना-पद्धति पर भी प्रकाश पड़ता है। चैतन्य सम्प्रदाय में शृंगार रस को 'उज्ज्वल रस' कह कर माधुर्य भक्ति में उसका विशेष उपयोग किया गया है, और सूरदास मदनमोहन ने भी इसी लिए श्रीमद्भागवत के दिव्य शृंगार-रस का विविध प्रकार से गान किया है। अनन्य शरणागति और इष्ट की महत्ता आदि सामान्य भक्ति सिद्धान्त भी इनके पदों में प्राप्त होते हैं—कतिपय उदाहरण देखिए—

अनन्य शरणागति—

मेरी गति तुमही अनेक तोष पाऊँ।
चरन कमल नखमनि पर बिषै-सुख बहाऊँ।
घर घर जो डोलौं तौ हरि तुम्हैं लजाऊँ।
तुम्हरौ कहाय कहौ कौन कौ कहाऊँ।
तुमसे प्रभु छाँड़ि कहा दीनन कों धाऊँ॥[3]

लीलागान (बाललीला)—भागवतीय बाललीला को कवि ने किस प्रकार आत्मसात् कर अनेक लीलाओं का संयुक्त रूप में चित्रण किया है, यह निम्नलिखित पद में द्रष्टव्य है—

खेलिए आँगन छगन मगन कीजिए कलेवा।
छींके ते सारी दधि उपरतें काढि धरी,
पहिरि लेउ अँगुली फेंटा बाँधि लेहु मेवा।
ग्वालन संग खेलन जाहु खेलन मिस भूषन ल्याहु,
कौन परी प्यारे निसदिन की टेवा।
सूरदास मदनमोहन घर में ही खेलो प्यारे ललन,
भौंरा चकडोर देहौं हंस चकोर परेवा।[4]

१ वही, पृ० १०२
२ भक्तमाल (भक्तिसुधास्वादतिलक) पृ०
३ व्रजमाधुरी सार, पृ० २०७
४ वही पृ० १०८

कर रहो है –

गौर गोविन्द नवलकिसोर कर्यो चितचोर,
ठाढ़े हैं कुंज की छहियाँ ।
अधर धरे मुरली ऊँचे सुर लिएँ सुनि लोहि बुलावत हैं
माई री तू कत काहिं माहियाँ ।[1]

रूपमाधुरी —श्रीकृष्ण की वेशभूषा और सौन्दर्य का यह चित्रण भी परम्परा-गत है—

मधु के मतवारे स्याम खोलो प्यारे पलकें ।
सीस मुकुट लटा छुटी और छुटी अलकें ।
सुर नर मुनि द्वार ठाढ़े दरस हेतु कलकें ।
नासिका के मोती सोहैं बीच लाल ललकें ।
कटि पीताम्बर मुरली कर स्रवन कुण्डल झलकें ।
'सूरदास मदनमोहन' दरस देहो भलकें ।[2]

वेणुमाधुरी —मुरली के इस विश्वविमोहन स्वर के श्रवण के लिए सूरदास मदन-मोहन ने अवश्य ही श्रीमद्भागवत का श्रवण किया होगा—

चलोगी मुरली सुनिए कान्ह बजाई जमुना तीर ।
तजि लोकलाज कुल की कानि गुरुजन की भीर ।
जमुना जल थकित भयो बछरा न पीवें छीर ।
सुरविमान चकित भए थकित कोकिल कीर ।
देह की सुधि बिसरि गई बिसरी तन की चीर ।
मात तात बिसरि गए बिसरे बालक बीर ।
मुरली धुनि मधुर बाजै ऊँचे कै धरी धीर ।
सूरदास मदनमोहन जानत हो पर पीर ।।[3]
(तुलनीय – श्रीमद्भागवत १० २१, वेणुगीत तथा १०, ३५ युगलगीत)

चैतन्य सम्प्रदाय में 'रसिक अनन्यमाल' के रचयिता [illegible] आदि अन्य कवि भी हुए हैं। विक्रमीय १६वीं शती के [illegible] दास हैं। यहाँ केवल [illegible] दर्शन के लिए ही [illegible] दिखाया गया है। अनेक कवियों का परिचय देना [illegible] भी नहीं है।

---

1 ब्रजमाधुरीसार, पृ० १०६
2 वही, पृ० १०८
3 वही, पृ० १०६

निष्कर्ष

कार वृन्दावन के प्रमुख वैष्णव सम्प्रदायों के मुख के उद्धरणों से श्रीमद्भागवत का प्रभाव-निरूपण किया ग स्पष्ट होता है कि श्रीमद्भागवत के सामान्य और विशिष्ट को तत्तद् कवियों ने अपनी भावना और रुचि के अनुसार अ विशिष्ट तत्वों का ही है। अष्टछाप के किन्हीं कवियों की में से माँ कई एक ने श्रीमद्भागवत के शब्दों, भावों और ज्यों ग्रहण किया है। यदि हम स्थानीय और कालान्त तत्वों को दूर करके—देश-काल निरपेक्ष होकर इन सम्प्रद भक्ति के तत्व को ही अपने पर्यालोचन की परिधि बनाएँ को ही उस वृत्त का केन्द्र-स्थानीय पाएँगे।

अष्टम अध्याय

श्रीमद्भागवत एवं सम्प्रदाय-मुक्त कृष्णभक्त हिन्दी कवि

विक्रम की सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध तक अनेक प्रसिद्ध वैष्णव आचार्यों एवं प्रख्यात भक्त कवियों द्वारा श्रीमद्भागवत को एक महान् भक्ति-ग्रंथ के रूप में पूर्ण प्रतिष्ठा दी जा चुकी थी। इस समय तक यह ग्रन्थ अपनी ख्याति की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। विशेषकर कृष्णभक्ति के प्रतिपादक के रूप में जो श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त किसी भी अन्य ग्रन्थ की इतनी मान्यता नहीं थी, यह पूर्व विवेचित सिद्धान्तों के आधार पर असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है। अपनी मधुर भावना पूर्ण विलक्षणीय तत्त्व राशि के कारण उस समय रामभक्ति की अपेक्षा कृष्णभक्ति का स्वर ही अधिक ऊँचा हो उठा था। इसका श्रेय कृष्ण-भक्ति के प्रचारक भावुक वैष्णव आचार्यों को है। मध्यकाल में रामानन्द के उपरान्त रामभक्ति का प्रचारक कोई उतना समर्थ वैष्णव आचार्य नहीं हुआ। इसके विपरीत कृष्णभक्ति के क्षेत्र में श्री वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, और हितहरिवंश ने अभूतपूर्व कार्य किया था। श्री सूरदास आदि अष्टछापी कवियों और श्री हरिदास आदि अनेक रसोपासक कृष्ण भक्त कवियों की जैसी दृढ़ परम्परा बहुत काल तक चलती रही, वैसी तुलसीदास जैसे समर्थ रामभक्त कवि की परम्परा नहीं चल सकी। कारण यह था कि तत्कालीन भारतवर्ष के समस्त वायुमण्डल में श्रीकृष्ण की प्रेमा भक्ति के प्रबल प्रतिपादक ग्रन्थ श्रीमद्भागवत का स्वर गूँज रहा था। आसेतु-हिमाचल और द्वारका से असम तक समस्त प्रादेशिक भारतीय भाषाओं में श्रीमद्भागवता-नुमोदित कृष्णभक्ति का साहित्य रचा जा रहा था। सामान्यतया तत्कालीन प्रत्येक कवि, जिसमें भक्ति का कुछ भी अंकुर विद्यमान था, श्रीमद्भागवत से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से परिचित था। जो कवि किसी वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं थे, किन्तु कृष्ण के उपासक थे, अथवा सामान्यतया भगवद्भक्त थे, उन्होंने भी भक्ति का आदर्श श्रीमद्भागवत से ही ग्रहण किया। सम्प्रदाय-मुक्त कवियों में से अनेक ने श्रीमद्भागवत के सामान्य धर्म-मत, ज्ञान, वैराग्य और प्रेम-तत्त्व को अपनाया। अनेक कवियों ने श्रीमद्-भागवत का अनुवाद अथवा उसके भक्ति स्वादक प्रसंगों का वर्णन किया। इसमें कृष्ण लीला प्रधान दशम स्कन्ध और सामान्य ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति प्रधान एकादश स्कन्धों के अनुवाद सबसे अधिक संख्या में हुए। स्फुट प्रसंगों में रासपंचाध्यायी, रुक्मिणीमंगल, प्रह्लादचरित, सुदामाचरित, ध्रुवचरित, गजेन्द्रमोक्ष, अजामिलोपाख्यान आदि उल्लेखनीय हैं। मीरां, रसखान आदि कवियों में तो गोपी प्रेम के माधुर्य का स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है। रूपासक्ति, तन्मयतासक्ति और परम विरहासक्ति के अनेक उदाहरण

प्रतिपादक उदाहरण भी पर्याप्त संख्या में प्राप्त होते हैं। आगामी पंक्तियों में हम कुछ प्रमुख कृष्णभक्त हिंदी कवियों की कतिपय रचनाएं प्रमाणस्वरूप उद्धृत कर रहे हैं। कवि-चयन में दृष्टिकोण आलोच्य काल के प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण कवियों को ही चुनने का रहा है।

मीरॉबाई—(सं० १५५५–१६०३ वि०) मध्यकालीन संत और भक्त कवियों की परम्परा में मीरॉं एक ऐसा विचित्र व्यक्तित्व रखती हैं, जिसका समानाधिकरण दुर्लभ है। उनमें जहाँ एक ओर निर्गुण और निराकार के ज्ञान की निष्ठा है, वहाँ सगुण और साकार की माधुर्य-भक्ति की तन्मयीअवस्था भी परम दर्शनीय है। उनके सगुण और साकार की उपासना वाले पद ही उनके व्यक्तित्व का अधिक प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका युग सगुण और साकार के आग्रह का युग था। वे महाप्रभु वल्लभाचार्य (सं० १५३५–१५८७) महाप्रभु चैतन्य (सं० १५४२–१५९०) श्रीहितहरिवंश (सं० १५५९–१६१०) और हरिराम व्यास (१५६७–१६३५) आदि समर्थ वैष्णव आचार्यों और सगुण भक्तों की समसामयिक थीं, जिनकी भक्ति का आधार श्रीमद्भागवत था। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक ही था कि मीरॉं जैसी परम उदार सारग्राहिणी वृत्ति की भक्ता उक्त महानुभावों से प्रभावित होतीं। विद्वानों ने इसकी सम्भावना पर सहमति प्रकट की है।[1] श्री नाभाजी, व्यासजी ध्रुवदासजी[2] और प्रियादासजी[3] ने मीरॉं की परम प्रेमरूपाभक्ति की चर्चा की है। नाभाजी ने तो स्पष्ट ही कह दिया है कि मीरॉं ने कलियुग में गोपी-प्रेम को प्रकट किया और विधि-निषेध की मर्यादा को पूर्णतया तिलांजलि दे दी।[4] श्रीमद्भागवत में परम भगवद्भक्त की जिस गलदश्रु दशा, भाव-विभोरता, भगवद्-विरह-व्यथा और संयोग के आनन्द का चित्रण मिलता है,[5] गिरिधरलाल की सन्निधि में पग में घुंघरू बाँधकर नाचती हुई मीरॉं के गीतों में स्पष्टतया उसकी झलक दिखाई देती है। कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं—

सामान्य-भक्ति—नाम जप, संकीर्तन, भगवद्गुणगान, सत्संग, आदि के विषय में मीरॉं के विचार भागवतानुमोदित हैं। उनका यह पद देखिए—

---

१ मीरॉंबाई की पदावली, (सम्पादक श्री परशुराम चतुर्वेदी) पृ० १६

२ भक्तमाल (भक्तिसुधास्वादतिलक), पृ० ७१३

३ वही, पृ० ७१४–७२२

४ सदृस गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायौ।
निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायौ।
दुष्टनि दोष विचारि मृत्यु को उद्दिम कीयौ।
बार न बाँकौ भयौ, गरल अमृत ज्यों पीयौ।
भक्ति निसान बजाय कैं, काहू तें नाहिन लजी।
लोक लाज कुल शृंखला, तजि मीरॉं गिरिधर भजी।

भक्तमाल (भक्तिसुधास्वादतिलक), पृ० ७१३

५ वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च, मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति। श्रीमद्भागवत ११ १४. २४

माई म्हाँ गोविन्द, गुण गास्याँ।
चरणाम्रित रो नेम सकारे नित उठ दरसण जास्याँ।
हरि मंदिर माँ निरत करावाँ घूँघर्‌याँ घमकास्याँ।
स्याम नाम रा झाँझ चलास्याँ भोसागर तर जास्याँ।
यो संसार बीड़ रो काँटो, मेल प्रीतम अटकास्याँ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, गुण गावाँ सुख पास्याँ।[1]

लीलागान — मीराँ ने कृष्ण की बाल-लीला, वृन्दावन की प्रेम लीला, कालिय-दमन, र हरण, वेणुवादन आदि का वर्णन किया है वातावरण यहाँ भागवत-परम्परागत है —

बाललीला —

जागो बंसीवारे ललना जागो मोरे प्यारे।
रजनी बीती भोर भयो है, घर-घर खुले किवारे।
गोपी दही मथत सुनियत है, कँगना के झनकारे।
उठो लालजी भोर भयो है, सुर नर ठाढ़े द्वारे।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, जय जय सबद उचारे।
माखन रोटी हाथ में लीन्हीं गउवन के रखवारे।
मीराँ के प्रभु गिरधर-नागर सरण आयाँ कूँ तारे।[2]

कालियदमन —

कमल दल लोचणां थे नाथ्यां काल भुजंग।
कालिंदी दह नाग नाथ्याँ, काल फण-फण निरत करत।
कूदाँ जल अन्तर णा डर्‌यो थें एक बाहु अनन्त।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर ब्रजबल्लभरो कंत।[3]

वृन्दावन-माहात्म्य - वृन्दा (तुलसी) के वन ब्रज की विशेषता है। श्रीमद्भागवत तुलसी का बहुत माहात्म्य है। मीराँ ने उसे पहचाना है —

आली म्हाणे लागाँ वृन्दावन नीको।
घर-घर तुलसी ठाकर पूजाँ, दरसण गोविन्द जी को।
निरमल नीर बह्या जमणाँ माँ, भोजण दूध दह्याँ को।
रतण सिंघासण आप बिराज्याँ मुगट धर्‌याँ तुलसी को।
कुंजन कुंजन फिर्‌याँ साँवरा, सबद सुण्याँ मुरली को।
मीराँ रे प्रभु गिरधर-नागर भजण बिणा नर फीको।[3]

रूपमाधुरी — मीराँ के काव्य में [illegible] सौन्दर्य [illegible] ामवर्ण, ललित अंग-विन्यास और वेश [illegible]
साँवरो नंद-नंदन दीठ [illegible]
डार्‌याँ सब लोकलाज कुल [illegible]

मीराँबाई की पदावली (सम्पादक, श्री परशुराम [illegible]) पृ० [illegible]
वही, पृ० १२०
वही, पृ० १४७

मोर चन्द्रका किरीट मुगट छब सोहाई।
केसर रो तिलक भाल, लोचन सुखदाई।
कुंडल झलकाँ कपोल अलकाँ लहराई।
मीणा तज सर वर ज्यों मकर मिलन धाई।
नटवर प्रभु भेष धर्‌याँ, रूप जग लोभाई।
गिरधर प्रभु अंग-अंग, मीराँ बलि जाई।[1]

श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व —मीराँ ने स्पष्टतया नन्द-यशोदा के पुण्य से पुत्र रूप में उत्पन्न विश्वविमोहन नरदेहधारी गोकुलनाथ ब्रजलीलानायक, ब्रजवनिताओं के प्राणाधार, कृष्ण को अविनाशी, परब्रह्म परमेश्वर माना है—

म्हारो गोकुल रो ब्रजवासी।
ब्रजलीला लख जण सुख पावाँ ब्रजवणताँ सुखरासी।
नाच्याँ गावाँ ताल बजावाँ पावाँ आँसाद हासी।
णंद जसोदा पुन्न री प्रगट्याँ प्रभु अबिनासी।
पीताम्बर कट उर बैजंतां, कर सोहाँ री बाँसी।
मीराँ रे प्रभु गिरधरनागर, दरसण दीज्यो दासी।[2]

गोपीप्रेम—मीराँ स्वयं गोपी-भाव से भावित हैं, अतः उनकी समस्त रचना ही एक प्रकार से कृष्ण-प्राणा गोपी का प्रेमोद्‌गार ही है। गोपियों की जिस रूपासक्ति, दास्या-सक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, परम विरहासक्ति आदि का उल्लेख पहले किया जा चुका है, वे सभी मीराँ के काव्य में प्रभूत मात्रा में विद्यमान हैं। सब प्रकार के लोक परलोक के विधि निषेध का त्याग गोपी-प्रेम का मूल-मंत्र है और मीराँ में यह भाव सर्वाधिक प्रबल है—

रूपासक्ति—

निपट बंकट छब अटके।
म्हारे नैणा निपट बंकट छब अटके।
देख्याँ रूप मदन-मोहन री, पियत पियूख न मटके।
बारिज भवाँ अलक मतवारी नैण रूप रस अटके।
टेढ्याँ कट टेढ़े करि मुरली, टेढ्याँ पाग लर लटके।
मीराँ प्रभुरे रूप लुभाणी, गिरिधर-नगर नट के।[3]

दास्यासक्ति—

हरि म्हारा जीवण प्राण अधार।
और आसिरो णा म्हारा थें बिण, तीनूँ लोक मँझार।

---

१ वही, पृ० १०४
२ वही, पृ० १०२
३ वही, पृ० १०३

थे बिण म्हारो जग णां सुहावां निरख्यां सब संसार।
मीरां रे प्रभु दासी रावली, लीज्यो नेक निहार॥[४]

आत्मनिवेदनासक्ति—

स्यामसुन्दर पर वारां जीवड़ा डारां।
थारे कारण जग जण त्याग्यां लोकलाज कुल डारां।
थें देख्यां बिण कल णा पड़तां नैणां चलतां धारां।
क्यासूं कहवां कोण बुझावां कठण बिरहरी धारां।
मीरां रे प्रभु दरसण दीज्यो थें चरणां आधारां।[५]

परमविरहासक्ति—

स्याम मिलण रो काज सखी, उर आरति जागी।
तलफ तलफ कल णा पड़ां बिरहानल लागी।
निसदिन पंथ निहारां पिव रो पलक णा पल भर लागी।
पीव पीव म्हां रटां रैण दिन लोक लाज कुल त्यागी।
बिरह भुवंगम डस्यो कालजा लहर हलाहल जागी।
मीरां व्याकुल अति अकुलाणी स्याम उमंग लागी।[६]

सम्प्रदाय-मुक्त कवियों में मीरां ही अनुपम कवयित्री हैं, जिनकी भक्तिभावना अत्यन्त व्यापक है और अपनी बहुश्रुतता एवं तत्कालीन वैष्णव भक्तों एवं आचार्यों के सत्संग से जिनको श्रीमद्भागवत का ज्ञान सम्यक्तया में प्राप्त हुआ था। प्रियादासजी ने मीरांबाई का श्री जीवगोस्वामी के सम्पर्क में आने का उल्लेख किया है।[७] गौड़ीय आचार्य श्रीमद्भागवत के कितने भक्त और उपासक थे, यह विद्वज्जनों से अविदित नहीं। उनके सम्पर्क से मीरां को भागवतीय-भक्ति एवं कृष्णलीला के उन प्रसंगों का ज्ञान प्राप्त होना सहज अनुमेय है। एक उदाहरण से यह और भी स्पष्ट हो जायगा कि भगवच्चरणारविन्दों की अनिर्वचनीय महिमा का स्थापन करने के लिए मीरां ने श्रीमद्भागवत के कृष्णलीला प्रसंगों एवं अन्य कथा प्रसंगों का किस कौशल के साथ उपयोग किया है—

मण थें परस हरि रे चरण।
सुभग सीतल कँवल कोमल, जगत ज्वाला हरण।
इण चरण प्रहलाद परस्यां इन्द्र पदवी धरण।
इण चरण ध्रुव अटल करस्यां सरण असरण सरण।
इण चरण ब्रह्मांड भेट्यां, नखसिखां सिरी भरण।
इण चरण कालियां नाथ्यां, गोपलीला करण।

---

४ वही, पृ० १०२
५ वही, पृ० १३०
६ वही, पृ० २२१
७ भक्तमाल (भक्तिसुधास्वादतिलक) पृ० ७२१, २२

इरण चरण गोवरधन धार्यो गरब मघवा हरण।
दासि मीराँ लाल गिरिधर, अगम तारण तरण।[२]

लालचदास—(विक्रमीय १६ वीं शती का पूर्वार्ध) यद्यपि लालचदास एक कृष्णभक्त कवि के रूप मे कोई प्रसिद्ध और विशेष उल्लेखनीय व्यक्ति नहीं हैं, तथापि हमारे आलोच्य काल में प्रसिद्ध अष्टछापी कवियों के समकालीन होने के कारण और उन्हीं के समान श्रीमद्भागवत की कृष्णलीला का गान करने के कारण महत्त्वपूर्ण है। लालचदास का महत्त्व एक अन्य कारण से भी है। इन्होंने कृष्णचरित ब्रजभाषा में न लिखकर अवधी भाषा में लिखा है। इनके दो ग्रन्थ उपलब्ध है—१—हरिचरित और २—'भागवत दशम-स्कन्ध भाषा' जो क्रमशः सं० १५८५ और सं० १५८७ में लिखे गये थे। फ्रांसीसी पंडित गार्सा द तासी ने लालचदास के ग्रंथ 'भागवत दशमस्कन्ध भाषा' का उल्लेख किया है और फ्रेंच भाषा में उसका अनुवाद होने की भी चर्चा की है।[१] निम्नांकित चौपाई से कवि के नाम, निवासस्थान और ग्रंथ-रचना-काल का पता लगता है—

पन्द्रह सौ सत्तासी जहिया। समय विलंबित बरनौं तहिया।
मास असाढ़ कथा अनुसारी। हरिबासर रजनी उजियारी।
सकल सन्त कँह नावौं माथा। बलिबलि जैहौं जादवनाथा।
रायबरेली बरनि अवासा। लालच रामनाम कै आसा।[२]

नरोत्तमदास—भागवतीय भक्तिभावना एवं कथावस्तु—(*स्थितिकाल वि० सं० १६०२*) अत्यन्त लोकप्रिय खण्ड-काव्य 'सुदामाचरित' के यशस्वी लेखक श्रीनरोत्तमदास का प्रधान उपजीव्य श्रीमद्भागवत ही है जैसा कि उनके काव्य की अन्तश्चेतना एवं बाह्य कथावस्तु से विदित होता है। कविने यह कथा श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध अध्याय ८०, एवं ८१ से ग्रहण की है। यद्यपि कविने अपनी सहज प्रतिभा एवं कविके सहज अधिकार—कल्पना—का पूर्ण प्रदर्शन किया है, तथापि एक भावुक भक्त और भगवान् श्रीकृष्ण के ऐश्वर्यचित्रण में कवि का आदर्श श्रीमद्भागवत ही ज्ञात होता है। विरक्तभाव से एक मात्र भगवद्भजन करना ही नरोत्तमदास को श्रेयस्कर लगा है।[३] श्रीमद्भागवत की अन्तश्चेतना को नरोत्तमदास ने कितनी गहराई से आत्मसात् किया था, इसका प्रमाण यह है कि भक्ति मार्ग पर चलने वाले और भगवदनुग्रहाकांक्षी व्यक्ति के लिए जिस दैन्य और निष्किंचनता की अनिवार्य आवश्यकता का विधान श्रीमद्-भागवत में किया गया है[४] नरोत्तमदास ने सुदामा जैसे निष्किंचन और दीन (किन्तु लोक

---

२ मीराँबाई की पदावली (सम्पादक श्री परशुराम चतुर्वेदी) पृ० १०१

६ हिन्दी साहित्य का इतिहास, (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल) पृ० १६८

७ वही. पृ० १६८

३ कह्यौ सुदामा वाम सुनु, वृथा और सब भोग।
सत्य भजन भगवान कौ धर्म सहित जप जोग।
सुदामाचरित (सम्पा० प्रेमनारायण टंडन) पृ० २१

४ नूनं मे भगवाँस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः।
येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः। श्रीमद्भाग० ११,२३,२८

के समक्ष नहीं, केवल अपने इष्टदेव के समक्ष ही दीन) भक्त भाव के कथन से स्पष्ट कर दिया है। सुदामा से कहलवा भी दिया है कि भगवान् की भक्ति-प्रदायिनी दीनता मुझे प्रिय है और सुरेश की प्रभुता भी, जो भगवत्प्रेम में सहायक न हो, मेरे किसी काम की नहीं—

दीनदयाल को ऐसोई द्वार है दीनन की सुधि लेत सदाई।
द्रौपदि तैं गज तैं, प्रह्लाद तैं जानिपरी न बिलम्ब लगाई।
याही तें भावति मो मन दीनता, जो निबहै निबही सब भाँई।
जो ब्रजराजसों प्रीति नहीं, केहि काज सुरेसहु की ठकुराई।[1]

भगवान् की भक्तानुग्रहकातरता—श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर भगवान् की भक्तानुग्रहकांक्षिणी वृत्ति और धनी, गर्विष्ठ एवं स्वजनसम्पन्न व्यक्ति के प्रति उदासीनता का परिचय मिलता है। भगवान् के इस स्वभाव को नरोत्तमदास ने ग्रहण किया है। विष्णु पार्षद जय विजय के रोकने पर भी सनकादिक के वैकुण्ठ धाम में प्रवेश पाने के श्रीमद्भागवत के उस प्रसंग[2] से इस परिस्थिति को मिलाइये—

भूले से भूप अनेक खरे रहैं ठाढ़े रहैं तिमि चक्कवै भारी।
देव गन्धर्व औ किन्नर जच्छ से रोके जे लोकन के अधिकारी।
अन्तरजामी ते आपुहीं जानिहैं, मानो यहै सिख आजु हमारी।
द्वारकानाथ के द्वारे गए, सब तें पहले सुधि लैहैं तिहारी।[3]

श्रीमद्भागवत के इसी जय विजय-पतन के प्रसंग में भगवान् की विप्र-प्रियता और उनके द्वारा ब्राह्मणों की पूजनीयता का कथन है।[4] नरोत्तमदास का कथन उसके अनुरूप हुआ है—

क—विप्र के भगत हरि, विदित जगत वन्दु,
लेत सबही की सुधि ऐसे महादानि हैं।[5]

ख—जिनके चरनन को सलिल, हरत जगत संताप।
पाँय सुदामा विप्र के, धोवत ते हरि आप।[6]

ग—भामिनी देहु दिखै सब लोक तजौ हठ मेरे यही मन भाई।
लोक चतुर्दश की सुख संपति लागति विप्र बिना दुखदाई।
जाय बसौं उनके गृह में करिहौं द्विज दम्पति की सेवकाई।
तो मन माँहि रुचै न रुचै, सो रुचै हमको वह ठौर सदाई।[7]

---

१ सुदामाचरित—पृ० २४
२ श्रीमद्भागवत, तृतीयस्कन्ध, अध्याय १५, १६
३ सुदामाचरित, पृ० २३
४ तद्वः प्रसादयाम्यद्य ब्रह्म दैवं परं हि मे।
तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये यत्स्वपुम्भिरसत्कृताः। श्रीमद्भागवत ३. १६. ४
५ सुदामाचरित, पृ० २४
६ वही, पृ० २७
७ वही, पृ० २५

द्वारकाधीश कृष्ण—नरोत्तमदास ने षडैश्वर्यसम्पन्न वैकुण्ठाधिपति को ही अपने काव्य में द्वारकाधीश कृष्ण के रूप में देखा है। श्रीमद्भागवत कथा के प्रसंग में विष्णु के जिस लोकमनोरम साकार विग्रह और उनके वैकुण्ठ का चित्रण है, वही पूर्णतया नरोत्तमदास के द्वारकाधीश कृष्ण वैभव चित्रण का प्रेरणा स्रोत है—

कृष्ण का चतुर्भुज स्वरूप—

लोचन कमल दुख मोचन तिलक भाल
सबननि कुण्डल मुकुट धरे माथ हैं
ओढ़े पीत बसन गरे मैं बैजयन्ती माल,
संख चक्र गदा और पद्म लिए हाथ हैं।
कहत 'नरोत्तम' संदीपन गुरू के पास
तुम ही कहत हम पढ़े एक साथ हैं
द्वारका के गऐं हरि दारिद हरैंगे पिय,
द्वारका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं।[१]

द्वारकाधीश का वैभव— विष्णु का व्यापी-वैकुण्ठ पृथ्वी पर द्वा अवतरित हुआ है—

दाहिने वेद पढ़ैं चतुरानन, सामुहैं ध्यान महेस धरयौ है।
बाएँ दुवौ कर जोरि सुसेवक देवन साथ सुरेस खरयौ है।
एतेई बीच अनेक लिए धन पायन आइ कुबेर परयौ है।
देखि बिभौ अपनौ सपनौ बपुरौ वह बाह्मन चौंकि परयौ है।[२]

उक्त उद्धरणों में श्रीमद्भागवत के निम्नांकित श्लोकों की भाव-रा झलक रहा है—

विष्णु-विग्रह—

प्रसन्नवदनाम्भोजं पद्मगर्भारुणेक्षणम्।
नीलोत्पलदलश्यामं शंखचक्रगदाधरम्॥
लसत्पंकजकिंजल्कपीतकौशेयवाससम्।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम्॥
मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया।
परार्ध्यहारवलयकिरीटांगदनूपुरम्॥[३]

वैकुण्ठधाम—

त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः।
ययुर्वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम्।
× × ×

---

१ वही, पृ० १२
२ वही, पृ० ११
३ श्रीमद्भागवत ३. २८. १३-१५

यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः।
सर्वर्तु श्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव मूर्तिमत्॥[1]

× × ×

वैमानिकाः सललनाश्चरितानि यत्र
गायन्ति लोकशमलक्षपणानि भर्तुः।
अन्तर्जलेऽनुविकसन्मधुमाधवीनां
गन्धेन खण्डितधियोऽप्यनिलं क्षिपन्तः॥[2]

द्वारका—श्रीमद्भागवत में इसी प्रकार का वर्णन द्वारका के लिए भी हुआ है।[3] जिसके आधार पर श्रीनरोत्तमदास ने लिखा है—

दीठि चकचौंधि गई देखत सुवर्न मई,
एक तें सरस एक द्वारका के भौन हैं।[4]

इस प्रकार उक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि भक्त कवि नरोत्तमदास अपनी अन्तः भावना और बाह्य वस्तु योजना, दोनों के लिए श्रीमद्भागवत को आदर्श रूप में ग्रहण करते हैं।

राठौड़राज प्रिथीराज (पृथ्वीराज)—(वि० सं० १६०६—१६५७) 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' जैसी माधुर्य-भक्ति-रसमयी अमर कृति के रचयिता, भक्त कविवर पृथ्वीराज राठौड़ अकबर के सम्मानित सामन्त थे। अकबर के सान्निध्य में रहते हुए भी इन्होंने महाराणा प्रताप को उसके विरुद्ध निरन्तर स्वातंत्र्य संग्राम जारी रखने के लिए प्रोत्साहित किया था। इनके व्यक्तित्व में एक देशभक्त वीर सैनिक, सच्चे भक्त और विद्वान् का अद्भुत सामंजस्य था। भक्त प्रवर नाभादासजी ने इनकी काव्य-निपुणता विद्वत्ता आदि गुणों का उल्लेख करते हुए श्रेष्ठ भक्तों में इनकी गणना की है।[5] वेलि क्रिसन रुकमणी री (रचनाकाल सं० १६३७) कुछ डिंगल गीत और ब्रजभाषा की कुछ कविताओं के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएँ भी बताई जाती हैं, जो केवल श्रुतिगोचर हुई हैं, दृष्टिगोचर नहीं।[6] किन्तु यदि महाराज पृथ्वीराज 'वेलि' के अतिरिक्त और कुछ भी

---

१ श्रीमद्भागवत ३. १५. १३. १६
२ वही, ३. १५. १७.
३ वही, १०. ५०. ५०—५३.
४ सुदामाचरित पृ० २६.
५ सवैया गीत श्लोक वेलि, दोहा गुन नवरस।
पिंगल काव्य प्रमान विविध विधि गायौ हरिजस॥
परदुख विदुष सलाध्य वचन रसना जु उचारै।
अर्थ विचित्रन मोल सबै सागर उद्धारै॥
रुकमनीलता बरनन अनूप बागीश बदन कल्यान सुव।
नरदेव उभै भाषा निपुन पृथीराज कविराज हुव॥
भक्तमाल (भक्तिसुधास्वाद तिलक), पृ० [illegible]
६ वेलि क्रिसन रुकमणी री, (सम्पा० डा० रामसिंह एवं पं० सूर्यकरण पारीक) भूमिका, पृ० [illegible]

न लिखते तो भी वे एक अमर भक्त-कवि के रूप में याद किये जाते। श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध अध्याय ५२, ५३, ५४ और ५५ की कथा पर आधृत उनकी यह कृति हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य का गौरव है।

श्रीमद्भागवत और वेलि किसन रुकमणी री—कवि ने स्वयं अपने काव्य का आधार श्रीमद्भागवत को स्वीकार किया है—

वल्ली तसु बीज भागवत वायौ
महि थाणौ पृथुदास मुख।
मूल ताल जड़ अरथ मण्डहे,
सुथिर करणि चढि छाँह सुख॥[1]

(अर्थात्, इस 'वेलि किसन रुकमणी री' रूपिणी लता का बीज श्रीमद्भागवत है। वह बीज भक्त पृथ्वीराज के मुखरूपी पृथ्वी के थाले (आलवाल) में बोया गया है। इसके दोहलों का मूलपाठ और उनको गाने की ताल इसकी जड़ें हैं और उन दोहलों के अर्थ रूपी सुदृढ़ मण्डप पर प्राणियों को सुखद छाया देने के लिए यह वल्लरी चढ़कर फैल गई है।) इसमें कोई सन्देह नहीं कि पृथ्वीराज ने 'वेलि' में अपनी सहज काव्य प्रतिभा और तज्जन्य मनोरम कल्पना का स्वच्छन्द उपयोग किया है तथापि श्रीमद्भागवत की मधुर भक्तिभावना और मूल कथा का अनुसरण उन्होंने बड़ी ही श्रद्धा से किया है। यद्यपि पृथ्वीराज ने रुक्मिणी द्वारा ब्राह्मण के हाथ एक पत्र भिजवाया है, और श्रीमद्भागवत में मौखिक सन्देश की चर्चा है तथापि पृथ्वीराज ने रुक्मिणी से पत्र में लिखवायी वही बात है। पत्र मात्र की कल्पना से श्रीमद्भागवत के आधार की अस्वीकृति नहीं होती। स्वयं कवि को भी वह अभीष्ट नहीं है। वह तो रुक्मिणी के शृंगार-सज्जा प्रसंग में बड़े ही श्रद्धा-गद्गद स्वर में श्रीमद्भागवत का श्लिष्टार्थ से उल्लेख करता है—

नासा अग्रि मुताहल निहसति।
भजति कि सुक मुख भागवत॥[2]

कथा सूत्र का अनुसरण—

वेलि—दक्खिण दिसि देस विदरभति दीपति पुर दीपति अति कुंदणपुर।
रावति एक भीखमक राजा सिरहर अहि नर असुर सुर॥
पंचपुत्र ताइ छठी सुपुत्री कूँअर रुकम कहि विमल कथ।
रुकमबाहु अनै रुकमाली, रुकमकेस नै रुकमरथ॥[3]

श्रीमद्भागवत—

राजासीद् भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान्।
तस्य पंचाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना॥

---

१ वेलि किसन रुकमणी री, दोहला २९१ (केवल मूलभाग) हिंदुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद.
२ वही, दोहला ९८.
३ वही, दोहला, १०, ११.

रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः ।
रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ।[1]

पृथ्वीराज ने श्रीमद्भागवत के आधार पर रुक्मिणी को लक्ष्मी का अवतार माना है—'रामा अवतार नाम ताइ रुक्मणि,'[2] पद का आधार श्रीमद्भागवत का यह श्लोक है—

भगवानपि गोविन्द उपयेमे कुरूद्वह ।
वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे ॥[3]

रुक्मिणी को गुण-श्रवण से श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग हो गया और कृष्ण गुणों का ध्यान कर श्रेष्ठ वर प्राप्ति की इच्छा प्रबल हो गई जिसके लिए उन्होंने हर-गौरि का वन्दन किया—

वेलि—

सांभलि अनुराग थयो मन स्यामा वर प्रापति वंछती वर ।
हरिगुण भणि ऊपनी जिका हर हर तिणि वन्दे गवरि हर ॥[4]

श्रीमद्भागवत—

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः ।
गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥[5]

इस प्रकार पृथ्वीराज द्वारा श्रीमद्भागवत के कथा-सूत्र का अनुसरण किया गया है। विस्तार भय से हम अधिक उदाहरण देने में असमर्थ हैं।

भाव ग्रहण—कविने अपने काव्य में श्रीमद्भागवत के कुछ सुन्दर भावों को ग्रहण किया है और अपनी प्रतिभा से उनको विस्तार एवं रंजकता प्रदान की है। रुक्मिणी ने कृष्ण के पास जो संदेश भेजा है उसमें कहा गया है—

बलि बन्धण मुझ स्याल सिंघ बलि प्रासै किरि बीजौ परणै ।
कपिल धेनु दिन पात्र कसाई तुलसी करि चंडाल तणै ॥[6]

अर्थात् 'हे बलि बन्धन ! (विष्णु कृष्ण) मुझसे यदि कोई अन्य पुरुष विवाह कर लेगा तो यों समझना चाहिए कि सिंह की बलिको सियार ग्रहण करेगा, कपिला गौ कसाई जैसे (कु) पात्र को दी जाएगी और तुलसी चाण्डाल के हाथ में होगी।' इन भावों का विशदीकरण श्रीमद्भागवत के निम्नलिखित श्लोक के आधार पर हुआ है—

तन्मे भवान्खलु वृतः पतिरंग जायामात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ।
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद् गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥[7]

---

१ श्रीमद्भागवत १० ५२, २१, २२
२ वेलि, दोहला, १२.
३ श्रीमद्भागवत १०, ५२. १६.
४ वेलि, दोहला, २६
५ श्रीमद्भागवत १०. ५२ २३.
६ वेलि, दोहला ५६.
७ श्रीमद्भागवत १०. ५२. ३६.

कुण्डिनपुर वासियों ने श्रीकृष्ण को देखकर परस्पर कहा-सुना था कि "अहा ! लो, यह रुक्मिणी का वर आ गया। अब दूसरे राजाओं को रुक्मिणी की इच्छा नहीं करनी चाहिए"—

वसुदेव कुमार तणौ मुख वीखे पुणै सुणै जण आप पर।
औ रुखमणी तणौ वर आयौ हर म करौ अनि रायहर ॥[1]

तुलनीय—

कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः।
आगत्य नेत्रांजलिभिः पपुस्तन्मुखपंकजम्॥
अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा।
असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः॥[2]

भक्तिभावना—कविवर पृथ्वीराज श्रीमद्भागवत की भक्ति भावना में आपाद-मस्तक निमग्न हैं। उनके आराध्य समग्र ऐश्वर्यों के एकमात्र निधान द्वारकाधीश कृष्ण हैं। कहते हैं कि अपनी 'वेलि' को लिखकर कवि उसे द्वारकाधीश के चरणों में समर्पित करने की इच्छा से द्वारका के लिए चल पड़ा था, किन्तु द्वारकाधीश ने उनके पहुँचने से पहले ही उन्हें दर्शन देकर तथा उनके मुख से 'वेलि' का श्रवण करके कृतार्थ कर दिया।[3] 'वेलि' में रुक्मिणी के मिष से श्रीमद्भागवत-सम्मत स्तुति के रूप में उनकी ही भक्तिभावना इन शब्दों में मुखर हो उठी है—

हरि हुए वराह हए हरिणाकस, हूँ ऊबरी पताल हूँ।
कहौ तदै करुणामै केसव, सीख दीव किण तुम्हाँ सूँ॥
माथे सुर असुर नाग नेत्रै नहि, राखिश्री जई मंदर रई।
महण मथे मूँ लीध महमहण, तुम्हाँ किणै सीखव्या तई॥
राम अवतारि वहे रणि रावण, किसी सीख करुणाकरण।
हूँ ऊवरी त्रिकूटगढ़ हूँती, हरि बन्धे वेला हरण॥
चौथीआ वार बाहर करि चत्रभुजा, संखचक्र धर गदा सरोज।
मुझ करि किसूँ कही जै माहव, अन्तरजामी सूँ आलोज॥[4]

अर्थात्—"हे हरि आपने वराहरूप होकर हिरण्याक्ष को, मार कर और पृथ्वी रूप मेरा पाताल से उद्धार किया। हे करुणामय केशव! कहिए उस समय (भक्तरक्षा के निमित्त) आपको किसने सीख दी थी? हे समुद्र-मथन! जब आपने देव-दानवों को एकत्र कर शेषनाग को मंथन-रज्जु और मंदराचल को मथन-दण्ड बना कर महार्णव को मथकर

१ वेलि, दोहला ७७.

२ श्रीमद्भागवत १०. ५३. ३६, ३७.

३ वेलि (सम्पा० डा० रामसिंह जी एवं पं० सूर्यकरण पारीक) भूमिका पृ० २६, २७, २८.

४ वेलि, दोहला, ६१-६४.

त्रिकूट गढ़ (लंका) से जो (सीता रूप में) लाये, वैसा उद्धार किसने कब, कौनसी शिक्षा थी ? हे शंख चक्र गदा पद्मधारी अनुग्रह करो ! क्या यह उचित अवसर है जब कि आपको रक्षा के लिए सन्नद्ध होना है ? हे माधव ! तुम अन्तर्यामी हो मन के भाव मुख से कैसे कहूँ ? (क्या यह तुम्हारा लक्ष्य नहीं है ?) स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत की अनेक स्तुतियों में, जिनका उल्लेख इस प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में किया जा चुका है, इस प्रकार की भक्तिभावना विद्यमान है।

कृष्ण का परब्रह्मत्व—पृथ्वीराज कृष्ण को मानव-मनुष्य अवतारी, अन्तर्यामी सगुण ब्रह्म ही मानते हैं। कृष्ण के कुण्डिनपुर पहुँचने पर वहाँ के लोगों ने उन्हें भिन्न भिन्न-भिन्न रूपों में देखा था, उन रूपों की कल्पना उन्हें श्रीमद्भागवत के उस प्रसंग से मिली जान पड़ती है जिस में श्रीकृष्ण के मथुरा पहुँचने पर कंस की रंगशाला में प्रवेश करने का वर्णन है। वहाँ दोनों ग्रंथों के उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाएगा—

वेलि—

> कामिणि कहि काम काल कहि केवी, नारायण कहि अवर नर।
> वेदारथ इम कहै वेदवंत जोगी तत जोगेस्वर॥[1]

अर्थात्—"श्रीकृष्ण को देखकर कामिनियाँ तो कहती हैं कि ये कामदेव हैं, कई (दुर्जन) कहते हैं कि ये काल हैं। दूसरे लोग (भक्तजन) कहते हैं कि ये नारायण हैं। वेदवेत्ता मनीषी जन कहते हैं कि ये प्रत्यक्ष वेदार्थ ही है और योगेश्वर गण कहते हैं कि ये मूर्तिमान् योगतत्त्व ही हैं।"

श्रीमद्भागवत—

> मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्।
> गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
> मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां।
> वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः॥[2]

वेलि क्रिसन रुकमणी री में इस प्रकार श्रीमद्भागवत के साथ अनेक तुलनीय स्थल विद्यमान हैं। अलमति विस्तरेण।

रसखान—(संवत् १६४०—१६८५ लगभग)[3] जिन मुसलमान हरिभक्तों पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कोटि-कोटि हिन्दुओं को निछावर करने की बात कही थी

---

१ वेलि, दोहला, ७६.

२ श्रीमद्भागवत १०. ४३. १७.

३ कविता कौमुदी (सम्पादक-पं० रामनरेश त्रिपाठी) [illegible]

उनमें प्रेमीभक्त रसखान भी सादर परिगणित हैं।[1] रसखान का जो वृत्तान्त 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में दिया हुआ है, उससे ज्ञात होता है कि वे एक निम्नस्तर के कामुक व्यक्ति थे किन्तु किसी वैष्णव के मार्मिक व्यंग्य से भगवदुन्मुख हो गये थे। फिर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के कृपापात्र शिष्य भी हो गये।[2] किन्तु रसखान ने जो प्रेमी हृदय पाया था वह किसी सम्प्रदाय विशेष के बन्धन में रह ही नहीं सकता था। उस हृदय को, जिसमें इश्क मजाजी—लौकिक प्रेम—लबालब भरा था, इश्क हकीकी-भगवत्प्रेम-की ओर सदा के लिए मोड़ देने वाली शक्ति थी, श्रीमद्भागवत। एक दिन जब ये श्रीमद्भागवत का फारसी अनुवाद पढ़ रहे थे तो उसमें कृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य और अलौकिक प्रेम-प्रसंग को देखकर कुछ ऐसे भक्तिविह्वल हो गये[3] कि अपनी लौकिक प्रेयसी को सदा के लिए तिलाञ्जलि देकर वृन्दावन आगये। तब से श्रीमद्भागवत की प्रेमाभक्ति इनका प्राणस्पन्दन बन गई। श्रीमद्भागवत में गोप शिशुओं की जिस सख्यभक्ति का वर्णन है, वह भी रसखान को प्रिय है।[4] किन्तु रसखान को प्रियतर है गोपियों की माधुर्यभक्ति। वहीं रसखान अपने सच्चे रूप में दिखाई देते हैं। आइए रसखान के काव्य में कुछ भागवतीय तत्त्वों का अनुसंधान करें—

प्रेमाभक्ति— रसखान ने अपने एक लघुकाय ग्रन्थ 'प्रेमवाटिका में प्रेम तत्त्व का जो पारमार्थिक रूप स्पष्ट किया है, वह बहुत कुछ श्रीमद्भागवत की ही प्रेमाभक्ति है—

लोक वेद मरजाद सब, लाज काज संदेह।
देत बहाए प्रेम करि, बिधि निषेध को नेह।
भले वृथा करि पचि मरौ, ज्ञान गरूर बढ़ाय।
बिना प्रेम फीकौ सबै, कोटिन किए उपाय।
जेहि बिनु जाने कछु नहीं, जान्यौ जात बिसेस।
सोइ प्रेम जेहि जानिकै, रहि न जात कछु सेस।।

---

१ अलीखान पठान सुता सह ब्रज रखवारे।
सेख नबी रसखान मीर अहमद हरि प्यारे।
निरमल दास कबीर ताजखाँ बेगम बारी।
तानसेन कृष्णदास बिजापुर नृपति दुलारी।
पिरजादी बीबी रास्ती पदरज नित सिर धारिए।
इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिंदुन वारिए।।
उद्धृत: भारतेन्दुकृत उत्तरार्ध भक्त-माल से 'रसखान और घनानन्द' पृ० ५ पर।

२ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता.

३ हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल) पृ० १९१.

४ दिल्ली नगर निवास बादसा बंस बिभाकर।
चित्र देखि मन हरो भरो पन प्रेम सुधाकर।
श्री गोबर्धन आय जबै दरसन नहिं पाए।
टेढ़े मेढ़े बचन रचन निर्भय ह्वै गाए।
तब आप आय सुमनाय करि सुश्रूषा महमान की।
कवि कौन मिताई कहि सकै श्रीनाथ साथ रसखान की।।
उद्धृत: श्री राधाचरण गोस्वामी कृत नव भक्तमाल से 'रसखान और घनानन्द' पृ० ५ पर.

ज्ञान ध्यान विद्या मती, मत बिस्वास बिवेक।
बिना प्रेम सब धूर है, अग जग एक अनेक॥
जेहि पाए बैकुंठ अरु, हरिहूँ की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि॥[1]

तुलनीय—

न किञ्चित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम।
वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्॥[2] इत्यादि।

गोपी प्रेम की सर्वश्रेष्ठता—भक्तप्रवर रसखान का मत है कि यद्यपि नन्द यशोदा आदि वात्सल्य भक्ति के पथिक और गोप ग्वालबालादि सख्यभक्ति के पथिक धन्य हैं, किन्तु अनन्य प्रेमाभक्ति—(माधुर्य भक्ति) को पराकाष्ठा पर पहुँचाने वाली गोपकुमारियाँ अद्वितीय हैं। उनकी कृपा से प्रेमाभक्ति का कुछ प्रसाद उद्धव को भी मिल गया था, पर अब क्या कोई दूसरा उसे पा सकता ?—

जदपि जसोदा नन्द अरु, ग्वाल बाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम की, गोपी भईं अनन्य।
वा रस की कछु माधुरी ऊधो लही सराहि।
पावै बहुरि मिठास अस, अब दूजो को आहि।[3]

लीलागान—रसखान ने कृष्णलीला के स्फुट प्रसंगों यथा माखन चोरी, गोचारण, वेणुवादन आदि का वर्णन किया है। बाललीला का यह सवैया देखिए—

बाललीला—

धूरि भरे अति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना पग पैंजनी बाजति पीरी कछोटी॥
वा छबि को रसखानि बिलोकत वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी॥[4]

रासलीला—

राधा माधव सखिन सँग, बिहरत कुंज कुटीर।
रसिक राज रसखानि, जहाँ कूजत कोइल कीर॥[5]

कुवलयापीड वध—

कंस के क्रोध की फैलि गई सगरी ब्रजमंडल बीच पुकार सी।
आइ गए तब हीं कछनी कसि कै नट नागर नन्द कुमार सी।
द्विरद को रद ऐंचि लियो रसखानि हिये मन आइ बिचार सी।
लागी कुठौर लई लखि तोर कलंक तमाल तें कीरति डार सी॥[6]

---

१ रसखान और घनानन्द (संकलन कर्ता स्व० बाबू अमीरसिंह) पृ० १२-१४
२ श्रीमद्भागवत ११. २०. ३४.
३ रसखान और घनानन्द, पृ० १८.
४ वही, पृ० २०
५ वही, पृ० १६
६ वही, पृ० ४०

रूपमाधुरी—कृष्ण की रूपमाधुरी का वर्णन रसखान का सबसे प्रिय विषय उनकी रचना में इसकी प्रधानता है। केवल एक उदाहरण देखिए—

कानन कुण्डल मोर पखा उर पै बनमाल बिराजति है।
मुरली कर में अधरा मुसकानि, तरंग महाछबि छाजति है।।
रसखानि लखै तन पीत पटा, सत दामिनि की दुति लाजति है।
वह बाँसुरी की धुनि कान परैं, कुल कानि हियो तजि भाजति है।।[१]

श्री कृष्ण का परब्रह्मत्व—रसखान श्रीमद्भागवत के मतानुसार श्रीकृष्ण परब्रह्म परमेश्वर मानते हैं। निम्नलिखित अति प्रसिद्ध सवैयों से वह प्रमाणित है—

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं।।
नारद से सुक ब्यास रटैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।।[२]
ब्रह्म मैं ढूँढ्यो पुरानन गानन, वेदरिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितूँ, वह कैसे सरूप औ' कैसे सुभायन।
टेरत हेरत हारि पर्‌यौ रसखानि, बतायो न लोग लुगायन।
देख्यौ दुर्‌यौ वह कुंज कुटीर में बैठ्यौ पलोटत राधिका पाँयन।।[३]

गोपीप्रेम—भक्त प्रवर रसखान गोपी प्रेम के तो मूर्तिमान् स्वरूप ही हैं। उ समस्त रचना में सर्वत्र गोपीप्रेम ही मुखरित और ध्वनित हो रहा है। गोपिय रूपासक्ति, तन्मयतासक्ति और परम विरहासक्ति के भाव उनके काव्य में विशेष शक्ति के साथ प्रकट हुए हैं, कतिपय उदाहरण लीजिए—

रूपासक्ति—

जादिन तें निरख्यौ नँद नन्दन कानि तजी घर बन्धन छूट्यो।
चारु बिलोकनि की निसिमार सम्हार गई मन मार ने लूट्यौ।।
सागर कों सरिता जिमि धावत रोकि रहे कुल को पुल टूट्यो।
मत्त भयो मन संग फिरै रसखानि सरूप सुधारस घूट्यो।।[४]
लोक की लाज तजी तबहीं जब देख्यौ सखी ब्रज चंद सलौनो।
खंजन मीन सरोजन की छबि गंजन नैन लला दिन होनो।
रसखानि निहारि सकै जु सम्हारि कै को तिय है वह रूप सुठौनो।
भौंह कमान सों जोहन को सर बेधत प्राननि नंद को छौनो।।[५]

१ वही, पृ० २२
२ वही, पृ० २३
३ वही, पृ० २२
४ वही, पृ० २१
५ वही, पृ० १६

तन्मयतासक्ति—

उनहीं के सनेहन सानी रहैं, उनहीं के जु नेह दिवानी रहैं।
उनहीं की सुनैं न औ बैन त्यौं सैन सों चैन अनेकन ठानी रहैं॥
उनहीं सँग डोलन में रसखानि सबै सुख सिंधु अघानी रहैं।
उनहीं बिन ज्यौं जलहीन ह्वै मीन सी आँखि मेरी अँसुवानी रहैं॥[1]

परम विरहासक्ति—एक सुन्दर रूपक बाँधकर भावुकतापूर्ण [illegible] में [illegible] गोपियों की विरह भावना को कवि इस प्रकार प्रकट करता है—

लाज के लेप चढ़ाइ कै अंग पची सब सीख को मंत्र सुनाइकै।
गारुड़ ह्वै ब्रजलोग थक्यौ करि औषद बेसक सौंह दिखाइकै।
ऊधौ सौं को रसखानि कहै जिन चित्त धरौ तुम एते उपाइकै।
कारे बिसारे को चाहैं उतार्यौ अरे विष बावरे राख लगाइकै॥[2]

वेणुमाधुरी—श्रीकृष्ण के वंशीवादन का गोपियों पर जो मोहक प्रभाव पड़ा है, उसकी उद्भावना में रसखान को असाधारण सफलता मिली है, किन्तु उनके भावों में जो व्यंग्य और वक्रिमा है, उसका मूल प्रेरणा स्रोत श्रीमद्भागवत है। वंशी के प्रति गोपियों का जो सापत्न्य भाव वहाँ व्यक्त हुआ है,[3] उसीका विशदीकरण इन पंक्तियों में देखा जा सकता है—

कान्ह भए बस बाँसुरी के अब कौन सखी हमकौं चहि है।
निसि द्यौस रहै सँग साथ लगी, यह सौतिन तापन क्यौं सहि है।
जिन मोहि लियौ मनमोहन कौं रसखानि सदा हमकौं दहि है।
मिलि आओ सबै सखि भागि चलैं अब तौ ब्रज में बँसुरी रहि है॥[4]

रहीम—(अब्दुर्रहीम खानखाना—सं० १६१०—१६८३ वि०) गोस्वामी तुलसीदास के परम मित्र और अकबर के एक प्रमुख सेनानी अब्दुर्रहीम खानखाना हिन्दी जगत् में अपनी भक्ति, नीति शृङ्गारमयी दोहावली एवं बरवै नायिका भेद आदि अन्य रचनाओं के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कवि के रूप में सम्मानित हैं। अपनी बहुश्रुतता एवं संस्कृत, फारसी और हिन्दी ज्ञान से इन्होंने न केवल संस्कृत-फारसी, संस्कृत-हिन्दी में मिश्रित रचना की, अपितु शुद्ध संस्कृत में भी श्लोक-रचना की है। संस्कृत-साहित्य से इनको उत्कट प्रेम था। अतः यह सहज अनुमेय है कि श्रीमद्भागवत जैसे लोक-विश्रुत भक्ति ज्ञान वैराग्य के विपुल भण्डार का अवलोकन या श्रवण इन्होंने किया था। इनका ग्रन्थ 'रास पंचाध्यायी' श्रीमद्भागवत को आधार मानकर रचा गया है। इसके अतिरिक्त इनकी कृष्ण-भक्ति-पूर्ण कविताओं में भागवतीय गोपियों की परम विरहासक्ति एवं रूपासक्ति की स्पष्ट झलक है। इनका यह सुन्दर पद देखिए—

---

१ वही, पृ० २३
२ वही, पृ० ३६
३ श्रीमद्भागवत, १०. २१. ९.
४ रसखान और घनानन्द, पृ० १८.

कमलदल नैननि की उनमानि।
बिसरति नाहिं सखी मो मन तें, मन्द-मन्द मुसकानि।
बसुधा को बस करी मधुरता, सुधा पगी बतरानि॥
मढ़ी रहै चित उर बिसाल की, मुकतमाल थहरानि।
नृत्य समय पीताम्बर हू की, फहर-फहर फहरानि॥
अनुदिन श्री वृन्दावन ब्रजतें, आवन आवन-जानि।
अब रहीम चित तें न टरति है, सकल स्याम की बानि॥[१]

उपर्युक्त पद में रहीम की 'अनुदिन श्री वृन्दावन ब्रज तें आवन आवन-जानि' श्रीमद्भागवत की 'वत्सलो ब्रजगवां, दिनान्ते दित्सयैति' आदि पंक्तियों श्रीमद्भागवत १०. ३५. २२–२४) की भावराशि का संकेत मिलता है।

श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन करते हुए रहीम गोपी-भाव से भावित हैं और उनके अधोलिखित पद में कृष्ण के वर्ण, अंगविन्यास, वेष-भूषा आदि का श्रीमद्भागवत में बहुधा वर्णित स्वरूप के अनुसार है

छबि आवन मोहनलाल की।
काछे काछनि कलित मुरलि कर, पीत पिछौरी साल की॥
बंक तिलक केसर को कीने दुति मानो बिधु बाल की।
बिसरत नाहिं सखी मो मन तें चितवनि नयन बिसाल की॥
नीकी हँसनि अधर सुधरनि की छबि छीनी सुमन गुलाल की।
जल सों डारि दियो पुरइन पर डोलनि मुकुतामाल की॥
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदन-गोपाल की।
यह सरूप निरखै सोइ जानै इस रहीम के हाल की॥[२]

रहीम की संस्कृत-हिन्दी-मिश्रित रचनाओं में एक छोटी सी रचना मदना उसमें शृङ्गार का जो वर्णन है, वह गोपियों के साथ उनके शरद्-रास की प्रस्तुत करता है—

शरद-निशि निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन-वन-निकुंजे कान्ह वंशी बजाई॥
रति, पति, सुत, निद्रा, साइयाँ छोड़ भागीं।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागीं॥[३]

---

१ रहीम रत्नावली (सम्पादक श्री मायाशंकर याज्ञिक) तृ० संस्करण, पृ० ६६

२ वही, पृ० ६६

३ वही, पृ० ६४

एवं प्रतिनिधि कवियों के काव्य पर ही श्रीमद्भागवत के प्रभाव का संक्षेप में निरूपण किया है। इसके आधार पर सुधीजन अन्य सम्प्रदायमुक्त हिन्दी कवियों के काव्य के भागवतीय तत्त्वों का अनुसन्धान कर सकेंगे। अलमतिविस्तरेण।

निष्कर्ष

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जायगा कि सम्प्रदाय-मुक्त कवियों के काव्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव पूर्वोक्त सम्प्रदायवर्ती कवियों पर अंकित होने वाले प्रभाव से कहीं अधिक सूक्ष्म और व्यापक है। जहाँ पूर्वोक्त कवियों ने कृष्ण की लीला को ही (चाहे वह बाललीला हो या मधुर किशोर लीला) अपना साध्य बनाया था, वहाँ सम्प्रदाय-मुक्त कवियों ने अधिकतर उससे भी सूक्ष्मतर अनुभव रूप 'कृष्ण-प्रेम' को अपना ध्येय बनाया। इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत की विचारधारा को इन स्वच्छन्द कवियों ने कहीं अधिक औदार्य और समग्रता के साथ आत्मसात् किया है।

उपसंहार

श्रीमद्भागवत एवं परवर्ती हिन्दी-भक्ति-साहित्य

श्रीमद्भागवत के तत्वज्ञान के आलोक में मध्ययुगीन हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य को देखने के उपरान्त अन्त में परवर्ती काव्य पर भी इस ग्रन्थ के प्रभाव का संक्षेप में उल्लेख करना असंगत न होगा।

जैसाकि पहले संकेत किया जा चुका है, श्रीमद्भागवत का प्रभाव केवल मध्य-कालीन भक्त कवियों तक ही सीमित नहीं है। रीतिकाल में भी निरन्तर एक भक्ति-धारा प्रवाहित रही जिसका उद्गमस्थल श्रीमद्भागवत था। सच तो यह है कि श्रीमद्भागवत पुराण के उदय से आज तक उसका प्रभाव अक्षुण्ण है और जब तक भगवद्भक्ति को एक श्रेष्ठ अध्यात्म-साधना-पद्धति माना जाता रहेगा, तब तक श्रीमद्भागवत का महत्त्व भी अक्षुण्ण रहेगा। सूरदास से लेकर आधुनिक युग के कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जगन्नाथदास रत्नाकर, हरिऔध, सत्यनारायण कविरत्न और मैथिलीशरण गुप्त तक श्रीमद्भागवत के गोपी-प्रेम-वर्णन की परम्परा अखण्ड रही है। रीतिकाल में श्रीमद्भागवत की प्रेम-भावना दो रूपों में व्यक्त हुई। प्रथम रूप में तो वह भागवतीय भावना से अविकृत, शुद्ध ईश्वर-भक्ति के रूप में ही दृष्टिगोचर होती है, किन्तु दूसरे रूप में उसने लौकिक प्रेम-भावना के मिश्रित रूप में विकसित होकर अभिव्यक्ति प्राप्त की। भागवतीय कृष्ण-लीला के अनेक विकसित रूप 'दानलीला', आदि के नाम से सामने आये। १७ वीं शताब्दी के उपरान्त भी श्रीमद्भागवत पर आधारित विपुल भक्ति-साहित्य की रचना होती रही। विभिन्न नामों से अनेकशः श्रीमद्भागवत को ही हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया गया। उदाहरणार्थ "आनन्दाम्बुनिधि" नाम से समस्त श्रीमद्भागवत की कथा को ही हरिवंश, महाभारत आदि के आख्यानों से उपबृंहित करके सं० १९११ वि० में रीवाँ नरेश महाराज रघुराजसिंह जू ने लिखा था।[1] खोज में प्राप्त अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ[2] श्रीमद्भागवत पर ही आधारित हैं। नीचे, कुछ अप्रसिद्ध कवियों की ऐसी रचनाओं की सूची दी जा रही है। जिन ग्रंथों का रचना काल अथवा लिपि काल ज्ञात हो सका है उनका समय भी दे दिया गया है—

अ—भागवतोक्त उपाख्यानों द्वारा भक्ति के व्यापक-ग्रन्थ

प्रह्लाद चरित—(रचयिता लोकीदास)

प्रह्लाद चरित्र - (रचयिता लछिमन) रचनाकाल, स० १९००

---

१ हस्तलिखित ग्रंथों का त्रयोदश वार्षिक विवरण (१९२६-२८) सं० डॉ० हीरालाल (ना० प्र० सभा काशी) पृ० ५३९.

२ देखिए, नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टें, सन् १९१२-१३, सन् १९२३-२५ तथा सन् १९२६-२८.

ध्रुवलीला —(रचयिता सुन्दर कवि) लिपिकाल, सं० १८९६

ध्रुवलीला —(रचयिता महादेव) लिपिकाल सं० १८६०

प्रेम प्रबोध (ध्रुव की भावमयी भक्ति) (रचयिता—अज्ञात) लिपिकाल सं० १७८७

दस अवतार (रचयिता—अज्ञात)

भगवान दसो अवतार (रचयिता—अज्ञात)

विष्णुपद (रचयिता—सेवादास)

आ—भागवतोक्त भक्ति एवं ज्ञान के व्यापक ग्रन्थ

भक्ति-पदारथ (रचयिता—चरनदास)

भक्ति-सागर (रचयिता—चरनदास)

ब्रह्मज्ञान-सागर (रचयिता—चरनदास)

प्रेम-बोध (भक्ति वर्णन) (रचयिता अज्ञात)

हृदय-प्रकाश (अन्तर्विद्या तथा सृष्टि) (रचयिता अज्ञात)

प्रेम दीपिका (रचयिता—अनन्य रसिक)

ज्ञान-सागर (रचयिता—अनन्य रसिक)

नाम महात्म्य (रचयिता—अनन्य रसिक)

ब्रह्म निरूपण (रचयिता—अनन्य रसिक)

प्रेम पच्चीसी (रचयिता—जीवराजसिंह चित्तुन)

भक्ति प्रकाश (रचयिता—लोकीदास)

भागवत गीतावली (रचयिता—लोकीदास)

गुरुमहिमा (रचयिता—मुरली)

इ—भागवतोक्त कृष्णलीलादि विशिष्ट तथ्यों के व्यापक ग्रन्थ

कृष्णलीला (रचयिता—बलदेव) रचनाकाल सं० १९०१.

कृष्णक्रीड़ा (रच०—कालिका चरन)

नन्दोत्सव लीला (रच० श्यामीदास, मथुरा) रचनाकाल सं० १९२२

संगीत गोवर्धनलीला (रच० कुँवरसेन कायस्थ, दिल्ली) रचनाकाल सं० १८२४

नागलीला (रच० चन्द कवि) रचनाकाल सं० १७७१

कृष्ण जू कौ नखसिख (रच०—ग्वाल कवि)

जमुना लहरी (रच०—ग्वाल कवि)

वृन्दावन साहस (कृष्ण प्रेमलीला) रच० अज्ञात

कालीदमन (रच० पं० रमानाथ)

गिरधरजी की मुरली (रच० हरदास) रचनाकाल सं० [illegible]

सरस-रास (रच० सूरति मिश्र)

रास-पंचाध्यायी (रच० नागरीदास) लिपिकाल सं० [illegible]

रासमालिका (रच० रामचरनदास)

गोपी पच्चीसी (रच० ग्वाल कवि)
भ्रमरगीत (रच० सेवादास)
गोपी विरह छन्दावली (रच० बैजनाथ) रचनाकाल सं० १९
गोपी विरह महात्म (रच० दानाराम) लिपिकाल सं० १९४८
कुबरी संग विहार बारामासी (रच० प्रेम सागर)
ज्ञानगीता (कृष्ण उद्धव सम्वाद, गोपी प्रेम) रच० जयसुख
रुकमणी विवाह (रच० सेवादास)
रुकमिणी मंगल (रच० विष्णुदास) लिपिकाल सं० १९१६
सुदामा चरित्र (रच० हलधर) रचनाकाल सं० १८००
सुदामा चरित्र (रच० महाराजदास) रचनाकाल सं० १९१
उषा चरित्र (रच० परशुराम। लिपिकाल, सं० १८७२

उपर्युक्त ग्रन्थो का नामोल्लेख केवल दिङ्मात्र दर्शन के उद्देश्य इनके अतिरिक्त सहस्रावधि ग्रन्थ अन्वेषरा मे प्राप्त हुए हैं जिनका है। ऊपर की सूची को देखने से विदित होगा कि प्रबन्ध मे सामान्यभक्ति तत्त्वों एवं विशिष्ट कृष्ण-भक्ति तत्त्वों को लेक कितने विपुल-साहित्य की सर्जना हुई है।

सहायक ग्रंथ सूची

संस्कृत-ग्रंथ

श्रीमद्भागवतम् (श्री वेदव्यास, संस्कृत की आठ विभिन्न टीकाओं से संवलित, सम्पादक श्री नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी) वृन्दावन, सं० १९६० वि०

श्रीमद्भागवत महापुराण (श्री वेदव्यास, अनुवादक श्री मुनिलाल) गीताप्रेस गोरखपुर, प्रथम संस्करण—सं० १९९७ वि० (इस शोध प्रबन्ध में मूल-उद्धरण इसी संस्करण से दिये गये हैं)

बृहद्भागवतामृत (श्री सनातन गोस्वामी)

लघुभागवतामृत (श्री रूप गोस्वामी)

सर्वमूलसंग्रह (श्री मध्वाचार्य के समस्त ग्रंथों का संग्रह निर्णयसागर प्रेस, बम्बई—१९१० ई०)

महाभारत (श्री वेदव्यास - गीता प्रेस, गोरखपुर—१९५५ ई०)

हरिवंश पुराण (श्री वेदव्यास—तेजकुमार बुकडिपो, लखनऊ)

स्कन्दपुराण (श्री वेदव्यास—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९१६)

बृहन्नारदीयपुराण (श्री वेदव्यास, एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल)

गीतगोविन्द (श्री जयदेव कवि)

मेघदूतम् (महाकवि कालिदास)

नारद भक्ति सूत्र (गीता प्रेस गोरखपुर १२ वाँ संस्करण, सं० २००६ वि०)

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र (गीता प्रेस गोरखपुर प्रथम संस्करण, सं० २००६ वि०)

पातंजल योग दर्शन (मूल—गीता प्रेस गोरखपुर, १२ वाँ संस्करण, सं० २००६ वि०)

हरिभक्तिरसामृतसिन्धु (श्री रूप गोस्वामी, विद्याविलास प्रेस काशी, प्रथम संस्करण, १९८८ ई०)

उज्ज्वलनीलमणि, (श्री रूप गोस्वामी निर्णयसागर प्रेस बम्बई, द्वि० संस्करण १९३२ ई०)

भक्तिरत्नावली (स्वामी विष्णुपुरी—विष्णु ग्रंथ माला, वृन्दावन, सं० १९९४ वि०)

नाट्यशास्त्र (भरत मुनि—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई द्वितीय संस्करण

रस गंगाधर (पंडितराज जगन्नाथ, हिन्दी अनुवाद, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, मुद्रक—इण्डियन प्रेस प्रयाग, सं० १९८६ वि०)

अमरकोष: (अमरसिंह, व्याख्या सुधा समेत, निर्णय सागर प्रेस बम्बई: तृतीय संस्करण सं० १९४४ वि०)

अग्निपुराण (श्री वेदव्यास, अंग्रेजी अनुवाद श्री एम० एन० दास)

अष्टादशपुराणदर्पण (श्री ज्वालाप्रसाद मिश्र)

विष्णुपुराण (श्रीवेदव्यास, संक्षिप्त संस्करण, गी० प्रे० गोरखपुर १९५४ ई०)
„ (निर्णय सागर प्रेस बम्बई १९०३ ई०)
पद्मचन्द्र कोष (श्रीगणेशदत्त शास्त्री) १९२५ ई०
षोडश ग्रन्थ (श्री वल्लभाचार्य,—मदनमोहन पुस्तकालय, काशी, द्वि० संस्करण २०१२ वि०
वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी (श्री भट्टोजि दीक्षित, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १८८७ ई०
मनुस्मृति (श्रीमनु,)
याज्ञवल्क्य स्मृति (आचाराध्याय, संपादक श्री भीमसेन शर्मा, ब्रह्मप्रेस, इटावा, चतुर्थ संस्करण १९२० ई०)
निरुक्त,
छान्दोग्य उपनिषद् (ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९१७ ई०)
शतपथ ब्राह्मण (रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, १९०३ ई०)
अर्थशास्त्र (कौटल्य, सम्पादक टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम् १९२१ ई०)
कात्यायन गृह्यसूत्र
ईशावास्योपनिषद् (ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, निर्णय सागर प्रेस बम्बई. १९१७ ई०)
स्कन्दपुराण (श्री वेदव्यास)
कूर्मपुराण (श्री वेदव्यास, सम्पादक श्री नीलमणि मुखोपाध्याय, कलकत्ता १८९० ई०)
बृहज्ज्योतिरत्नाकर (प्रकाशित—श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, १९५३ वि०)
दुर्गासप्तशती (प्रकाशक, गी० प्रेस, गोरखपुर प्र० संस्करण २००९ वि०)
वेदान्त शांकर भाष्यम् (प्रकाशित—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, द्वि० संस्करण १९२७ ई०)
श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम् (श्री वल्लभाचार्य, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९९२ वि०)
पारस्कर गृह्यसूत्र (सम्पादक—श्री महादेव शर्मा, बम्बई १९१० ई०)
श्रीभाष्यम् (श्री रामानुजाचार्य, एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, १८८८ ई०)
वेदान्त पारिजात सौरभ (श्री निम्बार्काचार्य, सम्पादक श्री नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी, वृन्दावन. १९६२ वि०)
शुक्ल यजुर्वेद
वाल्मीकीय रामायण
श्रीमद्भगवद्गीता

हिन्दी-ग्रन्थ

सूरसागर (सूरदास, २ खण्ड, ना० प्र० सभा काशी,) तृ० संस्करण, सं० २०१४ वि०

नन्ददास ग्रन्थावली (नन्ददास, संपा० श्री व्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा काशी) प्र० संस्करण सं० २००६ वि०

रासपंचाध्यायी भ्रमरगीत (नन्ददास, संपा० डॉ० उमाशंकर शुक्ल स्थान भारतीय निकेतन, इलाहाबाद)

गोविन्दस्वामी (सम्पा०, गो० व्रजभूषण शर्मा, विद्याविभाग कांकरौली) प्र० संस्करण सं० २००८ वि०

छीतस्वामी (सम्पा० गो० व्रजभूषण शर्मा, विद्याविभाग कांकरौली) प्र० संस्करण सं० २०१२ वि०

अष्टछाप परिचय (श्री प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा) द्वि० संस्करण सं० २००६ वि०

अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (डॉ० दीनदयालु गुप्त) प्र० संस्करण सं० २००४ वि०

अष्टछाप (सं० १६९७ की वार्ता और भावप्रकाश सम्पा० श्री कण्ठमणि शास्त्री कांकरौली,) द्वि० संस्करण सं०००६ वि०

अष्टसखान की वार्ता (सम्पा० श्री द्वारकादास परीख, अग्रवाल प्रेस, मथुरा) प्र० संस्करण सं० २००७ वि०

भक्तमाल (नाभादास जी, भक्तिसुधास्वाद तिलक व्याख्या समेत, तेजकुमार बुकडिपो, लखनऊ, तृ० संस्करण १९५१ ई०)

विद्यापति की पदावली (सम्पा० श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, पुस्तक भण्डार पटना,) द्वि० संस्करण

मीरांबाई की पदावली (सम्पा० श्री परशुराम चतुर्वेदी, हि० सा० सम्मेलन प्रयाग,) सप्तम संस्करण, सं० २०१४ वि०

रसखान और घनानन्द (सम्पा० स्व० बाबू अमीरसिंह, इ० प्रेस प्रयाग,) प्र० संस्करण, १९२९ ई०

रामचरितमानस, (गो० तुलसीदास मूल गुटका, गी० प्रेस गोरखपुर,) ४० संस्करण सं० १९९८ वि०

सुदामा चरित (श्री नरोत्तमदास, सम्पा० श्री प्रेमनारायण टण्डन,) विद्यामन्दिर रानी कटरा लखनऊ, १९५२ ई०

वेलि क्रिसन रुकमणी री (राठौड़ प्रिथीराज, सम्पा० ठा० [illegible] पारीक,) हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग, १९३१ ई०

वेलि क्रिसन रुकमणी री (राठौड़ प्रिथीराज, केवल मूल हिन्दुस्तानी एकेडेमी, [illegible], १९५० ई०

[illegible] पहला भाग, सम्पा० पं० रामनरेश त्रिपाठी) नार्दर्न इण्डिया, पब्लिशिंग [illegible]) सप्तम संस्करण १९४६ ई०

[illegible] (प्रकाशक स्वामी श्री नारायणदास, अलीगढ़) प्रथम संस्करण [illegible] वि०

[illegible] (संकलयिता एवं जीवनी लेखक, चौबे नवनीत कवि, मथुरा, ब्रह्म प्रेस [illegible] संस्करण सं० १९९७ वि०

[illegible] (श्री सहचरीशरणदेव, तालुकेदार प्रेस लखनऊ) सं० १९८७ वि०

[illegible] (सम्पा० श्री वियोगीहरि हि० सा० सं० प्रयाग) चतुर्थ संस्करण [illegible] वि०

[illegible] (श्री प्रभुदत्त, ब्रह्मचारी, गी० प्रेस गोरखपुर) तृतीय संस्करण [illegible] वि०

[illegible] सम्प्रदाय: सिद्धान्त और साहित्य (डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग [illegible]) प्र० संस्करण सं० २०१४ वि०

[illegible] क्रम विकास (डॉ० शशिभूषणदास गुप्त, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, [illegible] वाराणसी) प्र० संस्करण १९५६ ई०

[illegible] साधना और सूरसाहित्य (डॉ० मुंशीराम शर्मा सोम आचार्य शुक्ल साधना सदन, कानपुर) १९५३ ई०

सूर और [illegible] साहित्य (डॉ० हरवंशलाल शर्मा, भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़) [illegible]

[illegible] (सम्पादक, डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल, भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़) प्रथम संस्करण,

[illegible] (डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, अतरचन्द कपूर एण्ड संस, दिल्ली) १९५२ ई०

[illegible] धर्म साधना (डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन लि० इलाहाबाद) प्रथम संस्करण १९५२ ई०

[illegible] सम्प्रदाय (श्री बलदेव उपाध्याय, ना० प्र० सभाकाशी,) प्र० संस्करण सं० [illegible] वि०

[illegible] की पुरानी सभ्यता (डॉ० बेनीप्रसाद,) द्वि० संस्करण १९५० ई०

श्री [illegible] विमर्श (श्री भगीरथ झा, बालकृष्ण शुद्धाद्वैत महासभा सूरत,) [illegible] ई०

कबीर का रहस्यवाद डॉ० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य भवन प्रयाग,) षष्ठ संस्करण [illegible] ई०

[illegible] प्रेम साधना (श्री परशुरामचतुर्वेदी, साहित्य भवन लि० इलाहाबाद,) प्रथम संस्करण, १९५२ ई०

[illegible] (लोकमान्य बालगंगाधर तिलक हिन्दी अनुवाद, पूना) प्रथम संस्करण १९२६ ई०

[illegible] का सांस्कृतिक इतिहास (हरिदत्त वेदालंकार, आत्माराम एण्ड संस दिल्ली,) द्वि० संस्करण १९५२ ई०

१९५३ ई०

हिन्दी भक्ति-काव्य डॉ० रामरतन भटनागर किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९४८ ई०

हिन्दी के पौराणिक नाटकों का अध्ययन (डॉ० देवर्षि सनाढ्य) विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर

हिन्दी साहित्य का इतिहास (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, ना० प्र० सभा काशी) नवम संस्करण, सं० २००८ वि०

हिन्दी पुस्तक साहित्य (सम्पा० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९४५ ई०

राजस्थान का पिंगल साहित्य (श्री मोतीलाल मेनारिया, हिन्दी पुस्तक भण्डार, उदयपुर, १९५२ ई०

संस्कृत वाङ्मया चा त्रोटक इतिहास (मराठी, चिन्तामणि विनायक वैद्य,) प्र० संस्करण

कल्याण, भागवताङ्क (गी० प्रेस गोरखपुर) वर्ष १६

हस्तलिखित ग्रंथों के विवरण (ना० प्र० सभा काशी) १९२६–१९२८ ई०

अँग्रेजी-ग्रन्थ

A descriptive catalogue of the Sanskrit and Prakrit Mss. in the library of the University of Bombay, 1944.

Catalogue of the Sanskrit and Prakrit Mss. in the library of the India Office London.

Encyclopaedia Britannica, Fourth Edition

A History of Sanskrit Literature. (A.B. Keith) 1920, Oxford University Press, London. Ist Edition.

Contribution to the Science of Mythology. (Max Muller) 1897,

Custom and Myth (Andrew Lang,) London, 1884.

Sacred Books of the East, Series (Buhler) Vol. XIV.

Mythology of Aryan Nations (A. Cocks)

Oxford Dictionary (Fowler)

The Religions of India (Hopkins) Baston Guin Co., 1902.

Alberuni's India (Sachau)

Chambers's Twentieth Century Dictionary (Thomas Devidson)

New Popular Encyclopaedia. (Charles Annadle)

Journal of the Bomday Branch of Royal Asiatic Society, 1925.

Vaishnavism, Shaivism, and minor religious systems (R.G. Bhandarkar)

Ancient Indian Historical Tradition (Pargiter)

Outlines of the Religious Literature of India (Farquher)

Indian Literature (Winternitz)

New Indian Antiquary. 1838-39.

Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, 1932-33.

A Classical Dictionary of Hindu Mythology (John Dowson) London 1950.

Puranic Chronology (D.R. Mankad) Anand, Gujrat Ist Edition 1951

Life and Teachings of Madhva (Shri Padmanabhacharya) Nateson, Madras.

Ramkrishna Commemoration Volume.